पुराणों में पर्यावरण

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी.फिल. उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निदेशक
डॉ. हरिशंकर त्रिपाठी
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अनुसंधाता
मनोज सिंह
शोधचार्य, संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संस्कृत, पालि, प्राकृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
सन् 2002
प्राक्कथन

इश्वर की असीम अनुकूल्या से मैं अपना शोध प्रवन्ध 'पूराणों' में पर्यावरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। बन्ध के लेखन में कई प्रकार की कठिनाईयां मेरे समक्ष आई। लेकिन इश्वर के आशीर्वाद से मैं अपने साध्य को पाने में सफल रहा। शोध प्रवन्ध लिखने में मेरे इश्वर तुल्य निर्देशक प्रो. डा. हरिश्चंद्र कर विभागी जी का विशेष सहयोग रहा है नहीं तो इतने विलम्ब विषय पर शोधकार्य करना दुःखर कार्य था। वे हमेशा मुझे उत्साहित करते रहे हैं जिससे मेरा होंसला बना रहा। कभी-कभी मैं परेशान हो जाता कि प्रस्तुत शोध विषय पर कोई समाप्ति नहीं मिल रही है। इस पर मेरे गुरु जी सदैव मेरा उत्साहवर्धन करते रहे। जिनके उत्साहवर्धन के कारण में आज शोध-प्रवन्ध प्रस्तुत कर पा रहा हूँ।

मेरे शोध बन्ध के प्रणयन में डा. गृहुला त्रिपाठी, डा. राम किशोर शास्त्री, मनोज कुमार भिक्षा, संस्कृति विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डा. वाँडके विभारी श्रीवास्तव अध्यक्ष माध्यमिक शिक्षा चरण बोर्ड, डा. हरिवारायण दुर्गा सिंद्र प्राक २ इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डा. काली प्रसाद दुर्गा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, डा. योगेन्द्र प्रताप सिंह पूर्व विभागाध्यक्ष हिन्दी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डा. आरो सी० श्रीवास्तव प्रवक्ता वांडके विभाग सी० एन० पी०० डी० फार्म मलेश्वर इलाहाबाद, डा. जयशंकर प्रसर सिंह प्रवक्ता विभिन्न विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय का विशेष योगदान रहा। जिनके परामर्श को मैंने हमेशा आत्मसात किया।

(i)
शोध-प्रबन्ध के सन्दर्भ में मेरे समस्तों के निराकरण के लिए मेरे मित्रों में डॉ० अनिल कुमार सिंह भडोड़िया, परामश्काड़ा 30 प्र० राजपथ टंडन भवन विश्व विद्यालय, श्रीनमेबन सिंह, डॉ० अोपपूर सिंह, प्र० इतिहास अजय बहादुर सिंह अंतोजी विभाग, राजेन्द्र सिंह यादव, अगिरह श्रीवास्तव प्र० इतिहास (सभी सी। एम। 10 पी। 10 डिग्री कालेज) प्रमुख रहे।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने में मेरे पिता तुल्य श्री दल बहादुर सिंह जी मुझे समय-समय पर शोध प्रबन्ध लिखने के लिए उत्तराधिकारित करते रहे है जिसके कारण यह शोध प्रबन्ध आज मैं प्रस्तुत कर पा रहा हूँ।

सदेव अशीर्वाद प्रदान करने वालों में श्री सूरेंद्र सिंह, श्रीमती सरस्वती सिंह, श्री दल बहादुर सिंह, श्री श्याम सिंह वरिष्ठ वैज्ञानिक गण्ना अनुसंधान केन्द्र युवराजनगर, श्रीमती पारवती सिंह, श्री राजस्वली सिंह, रमेश सिंह, हंस कुमार सिंह, कुंवर भारत सिंह, श्री सी। पी। सिंह रिटायर्ड आई०जी (सी।आर।पी।एम।), श्री अमर जात सिंह भडोड़िया, श्रीमती गीता सिंह, आशा सिंह तोमर, श्री रघु दास भाता श्री विनेश सिंह एडवोकेट, कुंवर रंजन सिंह, प्राचार्य नारायण सरस्वती वाल विद्या मंदिर, बड़ी भारती श्रीमती जिर्नला सिंह, स्वामी सिंह, श्री शिवराम सिंह ज्येष्ठ प्रमुख शंकरवाल, अरुण कुमार भडोड़िया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मे अपने पूर्व पिता श्री राजकुमार सिंह एवं माता सरस्वती सिंह को समर्पित कर रहा हूँ। मेरी स्व। भगिनी श्रीमती प्रतिभा सिंह जिनका इस संसार में नाममात्र श्रेष्ठ है की आत्मा इस शोध के
प्रस्तुतीकरण से अवश्य ही आत्मवाद से शोक-प्रोत होगी। यदि वह जीवित होती तो ऐसे शुभ अवसर पर उसके आवाद का ठिकाना न होता।

गेरे शोध प्रवन्ध में गेरे छोटे भाई विद्याभासकर सिंह एडवोकेट हाईकोर्ट, आशुतोष सिंह, अबिल कुमार सिंह तोमर एवं भावुका कु. छाया सिंह का विशेष योगदान रहा जो मुझे समय-समय पर शोध सामग्री उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते रहे हैं जिससे मे उनके प्रति आभारी हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य में शिव वहादुर सिंह, पवन सिंह तोमर, पंकज सिंह भवीरिया, छोटी भाभी संभवा सिंह, रचना सिंह, उपमा सिंह, पुर्णनंद सिंह भौजा आशीष भवीरिया, दिया, शरद, रिशिर, श्रद्धा, मेरे प्रिय भतीजो तपन एवं तुषार, मुकुटा, आस्था एवं भांजी आदिति का सहयोग एवं रघुदर परावर मिलता रहा।

इस शोध प्रवन्ध के कम्प्यूटर टॉपर कार्य एवं सजा सज्जा के लिए जयलिंद्र कम्प्यूटर्स के निदेशक (आलोक श्रीवास्तव) का मे हद से आभारी हूँ एवं संस्था सहयोगी अतुल श्रीवास्तव, समर वहादुर सिंह का भी हमें भरपूर सहयोग मिला।

मनोज सिंह

मनोज सिंह
शोध-प्रवचन के सन्दर्भ में अंग्रेजी सिंह विभाग, परामर्शदाता 30 प्रो राजरिय रण्डल मुख्य विश्वविद्यालय, श्रीमती सिंह, डॉ ओपीरी सिंह, प्रो इतिहाश आजव वहाडुर सिंह अंबेजी विभाग, राजेन्द्र सिंह यादव, श्रीमती श्रीवास्तव प्रो इतिहाश (सभी सीएम पीपी डिग्री कालेज) प्रमुख रहे।

प्रस्तुत शोध प्रवचन प्रस्तुत करने में अंग्रेजी पिता तुल्य श्री दल बहादुर सिंह जो बुझे समय-समय पर शोध प्रवचन लिखने के लिए उल्लम्बित करते रहे हैं जिसके कारण यह शोध प्रवचन आज में प्रस्तुत कर पा रहा है।

संदेश आशीर्वाद प्रदान करने वालों में श्री सूबैदार सिंह, श्रीमती सरस्वती सिंह, श्री दल बहादुर सिंह, श्री ध्यान सिंह वरिष्ठ वैज्ञानिक गणना अनुसंधान केन्द्र कुशीनगर, श्रीमती पार्वती सिंह, श्री राजवरी रंथं, रेश्मा सिंह, हस कुमार सिंह, कुंवर भारत सिंह, श्री दीपा. पी. सिंह रिटायर आई.जी (सीआर.पी.एफ.), श्री अमर नाथ सिंह भरोडिया, श्रीमती गीता सिंह, आशा सिंह तोमर, अंद्रेय वागे श्रावण सिंह दिवेश सिंह एडवोकेट, कुंवर रंजन सिंह, प्राचार्य मा सरस्वती वाल विद्या मंजिल, वड़ी भाभी श्रीमती जिमला सिंह, द्वादशी सिंह, श्री शिवराज सिंह ज्येष्ठ प्रमुख शंकरगढ़, अरुण कुमार भरोडिया।

प्रस्तुत शोध प्रवचन को मैं अपने पूज्य पिता श्री राजकुमार सिंह एवं माता सरस्वती सिंह को समर्पित कर रहा हूँ। मेरी स्व. भगिनी श्रीमती प्रति वाणिज्य सिंह जिनका इस संसार में नामनाम शेष है की आत्मा इस शोध के
<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रमुख संख्या</th>
</tr>
</thead>
</table>
| प्रथम अध्याय | 1 - 6  
| प्रस्तावना |  
| द्वितीय अध्याय | 7 - 17  
| पर्यावरण क्या है? |  
| तृतीय अध्याय | 18 - 31  
| पशु पक्षी और पर्यावरण |  
| चतुर्थ अध्याय | 32 - 76  
| पंचभूत महाभूत एवं पर्यावरण |  
| तेज (सूर्य, चंद्र, अग्नि) | 32 - 47  
| वायु | 47 - 51  
| पृथ्वी | 51 - 67  
| जल | 67 - 76  
| पंचम अध्याय | 77 - 101  
| द्वन्द्व एवं पर्यावरण |  
| द्वन्द्वों का नामांकन | 83 - 84  
| द्वन्द्वों का तीर्थ रूप | 85 - 87  
| द्वन्द्वों में घटित विशिष्ट घटनायें | 89 - 92  

पुराणों में उदभिद्वित विषयक अवधारणा 95 - 97
पुराणों में वृक्ष के भेद 98
वृक्ष की व्यवहारिक उपकारिता 100-101

6. श्चेष्ट अध्याय 102 - 149
पर्यावरण एवं तीर्थ महत्त्व
तीर्थ यात्रा 104 - 118
जंगल 118 - 121
सारस्थली 121
प्रयाग 122
जगज्जाध 122 - 123
नर्वेदा 123 - 125
गोदावरी 125 - 127
पर्वत 129 - 132
अन्य तीर्थ स्थल 132 - 149

7. सप्तम अध्याय 151 - 179
पर्यावरण एवं आयुर्वेद
विभिन्न रोग तथा उसकी चिकित्सा 152 - 163
आयुर्वेदीय वृक्ष विज्ञान 163 - 164
वनोपध्य 164 - 166
8. अष्टम् अध्याय
पर्यावरण एवं अन्तर्द्वह

9. नवम् अध्याय
वास्तुशास्त्र पर्यावरण एवं ईश्वरपूर्त

10. परिशिष्ट
पर्यावरण एवं दृष्टि
पर्यावरण एवं कृषि का साहित्य
पर्यावरण एवं पर्यटन
सन्दर्भ वाक्य सूची
प्रथम - अध्याय

प्रस्तावना
पुराण भारत का सच्चा इतिहास है । पुराणों में भारतीय जीवन का आदर्श, भारत की सहबात, संस्कृति तथा भारत के विभा वैभव के उत्कृष्ट का वास्तविक झाँक प्राप्त ही सकता है ।

पुराण इस अविद्य सत्य के घोटक हैं कि भारत आदिवासी था । पुराण न केवल राजवंशों का इतिहास है अपितु उनमें विश्व-विश्वास्यकारी उन्नति का मार्ग भी प्रदर्शित किया जाया है।

वेदों की महिमा अपार है, पर उनकी शब्दात्मकी दुराधिक और प्रतिपादन प्रक्या पर्याप्त बूंद ताल है । वेदों को बड़ी कठिनता से ठीक-ठीक समझा जा सकता है परन्तु पुराण अकेले ही उनके समस्त अर्थों को सरल शब्दों में सामाजिक बुद्ध चाले पाठकों को दृष्टांगना करा देते हैं ।

पुराणों में वेदों की समस्त पद्धति सरल ठंडा से बताई गई है । इनमें भारतीय संस्कृति से सम्बन्ध संपूर्ण झाँक-विज्ञान और कल्याणकारी जानकारियाँ उपलब्ध हैं । यह पुराण-वांगत वर्तमान के समस्त विश्व-साहित्य की अपेक्षा सभी प्रकार से शुद्ध सच्चा भाषागुण, सुंदर कथाओं से समावेशित और मधुरतम पद विज्ञानों से समावेशित है।
संस्कृत वाद-भय में पुराणों का एक विशिष्ट स्थान है। इसमें वेदों के गुजारे के स्थानीयकरण की अपूर्व क्षमता है। अत: पुराण सर्वथा वेदानुकूल है। पुराणों का एक भी विषय वेद विरुद्ध नहीं है। और इसकी प्रमाणितता के प्रति भी संदेह नहीं है।

वेद पुराण-रमृति न्याय दर्शन आदि में पुराणों की अंति प्राचीनकाल सिद्ध की गयी है:

ऋचः समानि छन्दासि पुराणं यजुष्म सह।

उद्धिष्टान्तज्ञानिर्गीति सर्वे दिवि देवा दिविष्टता: || 24 ||

अर्थव्येद्वेद 11/7/24

इतिहासं पुराणं पंचमं वेदानां वेदतम् 1162।।

न्याय दर्शन 11/4/162
पुराण सर्वशास्त्राणां प्रथम वहस्मणा स्मृतम्।

अनन्तरं च वववेयं वेदास्तरं विनिर्गता।

मल्ल्य पुराण। 53/3

पुराण ' शब्द सुनले की जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि पुराण क्या है ? इसका अर्थ क्या - क्या है ? अनेक बल्लों में इसकी व्याख्या कैसे की गई है'।

' पुराण अर्थ नवं पुराणम् ' से वह प्रतीत होता है कि पुराण क्षोभ पर भी जो नवीन क्षर वह पुराण है। वायु पुराण के अनुसार :-

यस्मात् पुरा ह्यन्तादं पुराणं तेन तत स्मृतम्।

वायु। 1/1/83

जो पूर्व में सजीव था , वह पुराण कहा गया है। हमारे धर्म-शास्त्रों में पुराणों की बड़ी महिमा वर्णान किया गया है।
उज्जे साक्षात करि का रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत को आलोचित करने के लिए भगवान सूर्य के रूप में प्रकट लोकर वाह्यी अन्धकार को नष्ट कर देते हैं। उसी प्रकार हमारे हमदयान्धकर को दूर करने के लिए करि पुराण विश्वे धारण करते हैं।

वेदों की भौति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने जाये हैं और उनका सचित्ता कोई नहीं माना गया है लेकिन बाद में व्यवस्थित तंत्र से संकलन करता वेद व्यास को माना जाता है। इसकी प्राचीनता के विषय में इससे ही रूपस्त्र हो जाता है कि सूग्त करि बल्मी जी भी पुराणों का नमन करते हैं।

पुराण सर्वशास्त्राणां प्रथम बदलमणा समूहूऽ

पुराण विधा महारथियों का साधन है। 20वीं तथा 21वीं शताब्दी जिसे विज्ञान का मध्यान्त्र काल माना जाता है, किंतु जितने भी ज्ञान विज्ञान आज तक उच्च भूमि पर पहुंच चुके हैं, जितने अभी अधूरे तथा अभी गर्म में ही हैं। उनमें से एक
भी ऐसा नहीं है, जिसके सम्बन्ध में पुराणों में कोई उल्लेख न गिलता हो। कहारे वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों को इन सब बातों का ज्ञान था, जो आज के ज्ञान-विज्ञान में हैं अथवा नहीं हैं।

राजनीति, धर्म-नीति, इतिहास, समाज-विज्ञान, ग्रह-नक्षत्र, विज्ञान, आयुर्वेद, भूगोल, ज्योतिष आदि समस्त विचारों का प्रतिपादन पुराणों में हुआ है। पहले हम समझते थे कि पुराणों में कथायें ही होगी परन्तु जब हमने इसका अध्ययन किया तब तो हम चकित रह गये। संसार का ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो पुराणों में न हो। वेदों का जो है मुख्य प्रतिपाद विषय यह है वही पुराणों का मुख्य विषय लोकवृत्त (चरित्र) है। लोकवृत्तीय समाज में प्रमुख स्थान मानव का होता है।

समस्त जीवों का मूलाधार जल, वायु, सूर्य तथा पृथ्वी है। अतः इसी लिए पुराणों में इसके संरक्षण की बात कही गयी है। वैसे पुराणों के समय में पद्यावली जैसी कोई समस्या की बात नहीं कही गयी है।
पुराणों के समय में पर्यावरण जैसी कोई समस्या नहीं थी फिर भी पुराणों में इसके सरक्षण को धर्म वताया गया है। अतः इससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में हमारे ऋषि पर्यावरण के संरक्षण तथा पर्याप्त संतुलन बनाए रखने की बात पर बल देते थे। यह तथ्य आज के परिदृश्य को देखते हुए भी अति प्राचीन और सर्वथा वर्तमान में मानव विज्ञान तथा उसके अंतर बनाए गए संतोषों पर आधारित होता जा रहा है। जिससे न केवल पर्यावरण असंतुलित हो रहा है अपितु प्रदूषित भी होता जा रहा है। यहीं पर यह चरक प्रश्न भी हमारे सामने आता है कि वर्तमान वातावरण में जीवन शैली को अपना कर के आज का मानव फिर से धर्म में प्रणति कर रहा है? क्या इस प्रकार की असंतुलित सोच से हम संपूर्ण मानव जाति का ही अर्थत्त्व तो खतरे में नहीं डाल रहे हैं? इन प्रश्नों से उपजी दस्तावेजों का समाधान केवल पुराणों में दर्शित तथा ऋषभाओं द्वारा दिए गए प्राचीन विद्वानों पर चल कर ही प्राप्त हो सकता है। अतः समस्त मानव जाति को पुराणों में दिए गए सुविचार प्रवर्णों तथा पर्याप्त ध्यान देना चाहिए तथा अपनी जीवन शैली को पर्यावरण के अनुशूल बनाना चाहिए ताकि हम अपनी आत्मा से तक्रारी पीढ़ी को एक स्वच्छ तथा संतुलित पर्यावरण प्रदान कर सकें।
पयावरण क्या है?

सर्वप्रथम के वृद्धाश्चात् का अर्थ है आवृत फलना, जो भूमंडल को पश्चिम आवृत करे वही पयावरण है। पयावरण की परिधि में सभी सुष्ठ गुणी है। वैदिक वृत्त ही अवेश्ता में वैंशेख (warrenth) आग्रेजी में वीदर (Weather) को ज्ञाया है।

पयावरण शब्द ' परि ' और आवरण से मिलकर बना है। इसके अन्तर्गत हमारे चारों ओर का विस्तृत बायावरण आता है जिसमें सभी जीवित एवं निरीक्ष वस्तुएं और पदार्थ सम्पूर्ण जट ओर चेतन जगत रहित है। पृथ्वी के चारों ओर प्रकृति तथा गाजव निर्मित प्रगत दृश्य या अदृश्य पदार्थ पयावरण के अंग हैं। हमारे चारों ओर का बायावरण और उसमें पाये जाने वाले प्रकृतिकः अप्रकृतिक जट तथा चेतन जगत सभी का मिला गुणा नाम पयावरण है और उसके पारस्परिक तालमेल तथा अन्योन्य किया व पारस्परिक प्रभाव को पयावरण सम्बन्ध समझा जाता है।
पार्वतिय अनेकः कारकः का समिख्याः है, अर्थांतः ताप-कद, प्रकाश्, जल्, मिट्टी इत्यादि। कोई वास्तव वर्तमान पदार्थ या रिश्ती जो किसी भी प्रकार फिक्की प्राणीः के जीवन को प्रभावित करती है उसे पार्वतिय का कारक माना जाता है।

हमारा पार्वतियः, हमारे साथ और का समय वातावरण है जिसमें जल्, वायु, स्तर-पोधे, मिट्टी और प्रकृति के अन्य तत्त्व तथा जीव-जन्तु आदि शामिल हैं। हमारे साथ और का वातावरण एवं परिवेश जिसमें हम आप और अन्य जीवधारी रहते हैं, सब मिलकर पार्वतिय का निर्माण करते हैं। पार्वतिय का तत्त्व उस समृद्धी भौतिक जैविक व्यवस्था से भी है जिसमें समस्त जीवधारी रहते हैं, स्वभाविक विकास करते हैं तथा फलते-फूलते हैं। इस तरह वो अपनी स्वभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते हैं। ऐसा पुरावह में दिए गए उद्देश्यों से भी स्पष्ट होता है।
किसी भी जीव के पर्यावरण में वे सभी भौतिक व
जैविक घटक सम्बन्धित होते हैं। पृथ्वी से कोरोना भील दूर
होते हुए भी जीवों के पर्यावरण के लिए सूर्य का प्रकाश उत्तरना
की महत्त्वपूर्ण है जितना जल, वायु तथा भिदुटी आदि।
पर्यावरण के सभी घटक और कारक एक दूसरे को प्रभावित
करते हैं। जैसे - सूर्य-उर्जा से जल व वायु गर्म होती है
जिससे वाष्प बनती है और वायु उपर उठती है, वायु के बहने
के साथ वाष्प बादलों के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान
तक जाती है। बादलों द्वारा सूर्य की उर्जा को पृथ्वी तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न होती है। जिससे जल वर्षा है फिर
पेड़-पौधे पनपते हैं। अतः, सपन्ध है कि पर्यावरण के किसी
भी कारक के बिना अन्य कारक प्रभावित नहीं हो सकते हैं
वर्तुत: पर्यावरण के कारक आपस में इस तरह नैन्थ होते हैं
जैसे जल का ताता बाना।

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है, सीधे शब्दों में हम कह
सकते हैं कि पर्यावरण है तो नहीं हैं, इसके बिना किसी भी
प्राणी अथवा वनस्पति का कोई भी अस्तित्व नहीं है। जल,
थल और यायुमण्डल किसी भी स्थान के पर्यावरण के गुरुवर्ग अन्य होते हैं। इसके साथ भागिक की शीर्षण फिराओं को प्रत्येक या अप्रत्येक रूप से प्रभावित करने वाले सभी भौतिक तत्त्वों तथा अन्य जीवों का भी पर्यावरण के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। पर्यावरण में समस्त अनुसार परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। जीवों तथा बनस्पतियों के विकास का सीधा सम्बन्ध पर्यावरण से है। इसलिए एक निश्चित सीमा तक प्राकृतिक परिवर्तनों को तथा वारिश, अकाल, झाँखावत, बाढ़ तथा भूकंप आदि का सामना करने का तथा उससे बचाव का उपाय इत्यादि करते हुए जीवों के प्राकृति के ही अनुसार बदलने के लिए सामस्त रचन जीव पर्यावरण ही प्रदान करता है। ऐसा वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। जैसे कि चार्ल्स डाविन का प्राकृतिक चयन का सिद्धान्त जिसके अनुसार प्रत्येक जीव की अधिक तथा विकसित प्रजाति के रूप में जन्म का कारण प्राकृतिक घटनाओं तथा पारिस्थितिकी से उसका संघर्ष है। अतः इस धरातल पर विभिन्न प्रकार के जीव जन्मताओं तथा बनस्पतियों में पाई जाने वाली विभिन्नताओं का अप्रत्येक कारण पर्यावरण ही है।
पृथ्वी का धरातल और उसकी सारी प्राकृतिक दशाओं- प्राकृतिक संशाधन, भूभाग, जल, पर्वत, मेदान, पाथर्ष समूह पृथ्वी जगत, जो पृथ्वी पर विघ्नमाल होकर मानव को प्रभावित करती है। ये पर्यावरण के अन्तर्गत आती हैं।

पर्यावरण का स्वच्छ होना समूह मानवता के लिए अति आवश्यक है। व्यक्ति, क्षेत्र देश की राष्ट्रीय संस्थान पर्यावरण के संरक्षण के अनुरूप ही रही है। पृथ्वीक जीव की पर्यावरण के कारकों के प्रति एक निश्चित सहहरितता होती है। सहहरितता की सीमा से अधिकता के कारण मानवीय जीवन कियों के विश्वसनीय प्रभाव पड़ता है। ऐसा पौराणिक धर्म व्यक्तों में वर्णित है।

पर्यावरण के घटक पारस्परिक ताल-मेल नहीं रहते तो पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति व्याप्त को जाती है। इसी लिए पारिस्थितिक संतुलन को बनावे रखने के लिए क्षेत्र प्राचीन मनोरिण तपासक पर्यावरण के उपादनों पर देवीय रूपों का प्रत्यावरण किया है। इसी लिए पर्यावरण के सहायक तत्त्वों
के सम्बन्धन के प्रति अधि भार काफी उत्साहित दिखाई है तथा पर्यावरण के विकास के तत्त्वों के धर्म तथा धार्मिक कियाओ से जोड़कर आम जनता को इसकी (पर्यावरण) महत्ता का दर्शन कराया। जिससे आम जनता भी पर्यावरण के विकास में अपना योगदान दे सके। पौराणिक कृतियाँ साहित्यकार शुद्धि ने अपने प्रसिद्ध सरस्वति नाटक 'मृदुलकौटिकम' में भी तरह तरह के पर्यावरण पर आधारित उल्लेख जैसे वसन्तोत्सव, शरदोत्सव, आदि का दर्शन किया। तत्कालीन नगरों में भाषा जानने का जिक्र किया है जिसमें आम जनता भी बड़ी चाह कर भाषा लेती थी। इससे यह सिद्ध होता है कि पौराणिक सामाजिक विषयों से नगरीय समाज पर्यावरण के संबंध में प्रति जागरूक था।

पौराणिक कालीन सरस्वत साहित्य के महाकथित कालिकास के लगभग समस्त नाटकों में प्राकृतिक सौंदर्य का विश्वास तथा मनोहारी चर्चा है जिससे यह पता चला है कि
जीवन के प्रत्येक रत ऐसा वह साहित्य यूज्य हो या फिर धार्मिक किया का संपादन हो , पौराणिक समाज पर्यावरण के संबंध में उद्धत संदर्भ बनाए रखने के प्रति सचेष्ट था।

हमारा पर्यावरण हमारे चारों ओर का सम्झा वातावरण है जिसमें शामिल है जल,वायु ,पेड-पोधे , मिट्टी और प्रकृति के अन्य तत्व जीव-जन्तु आदि। पर्यावरण के सभी तत्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मानव-स्वास्थ्य और मानव कल्याण को प्रभावित करते हैं।

अतः पर्यावरण के मुख्य घटकों पृथ्वी , जल , वायु , अभिन तथा सूर्य आदि का हमारे प्राचीन धर्मसंग्रहों में विशद वर्णन है। जिनके संरक्षण तथा संवर्धन की बात हमारे प्राचीन धर्मसंग्रहों ( वेद,उपनिषद तथा पुराणों ) में की गई है।

तथा पर्यावरण के सभी घटकों की पूजा की बात स्वीकार की जाती है।

आयों के मूल देश उत्तरी ध्रुव और उसके आस पास उपलब्ध प्रपात ( अलाला गिरना ) होने के कारण वृत
अर्थात वर्तमान के शतु मान लिया गया है व्यावहारिक वह मानवता के लिए अनुपयोगी और घातक था। उल्लेख युवाओं में छ: महिला की रात और छ: महिला का दिन होता है, इसी के रामायण में कुम्भकरण की संज्ञा दी गयी है। उपल्ल प्रातः बहुत ईरान में वर्ष में 10 महीने तक सूर्य नहीं दिखाई पड़ता था। इस अंतु दैत्य को दसमुख - दशकंपन्हर रावण की संज्ञा दी गयी है। इस पर्व का बुध पक्ष माना जा सकता है। इसी लिए नैनवीकृत इन तीनों को (अंदु, रावण और कुम्भकरण) मानवता का विरोधी राक्षस कहा गया है। जिससे मानवता का हिन्द होता है, फलतः होता है और जो मानवता के लिए उपयोगी हो, पर्वत रावण का वही रूप देखता है तथा वन्दनीय है। भारत आध्यात्मिक भक्त आयाँ को प्रकृति सुकदर्तन रूप में प्राप्त हुई थी। प्रकृति का हर रूप शोभनीय था, सुहावना था, विलायक्ष्म एवं उपयोगी था।

उसने (प्रकृति) आयाँ के मन को मोह, उन्होंने (आयाँ) प्रकृति के इस रूप पर अपने को ज्योंकावर कर दिया
था । प्रकृति का हर अंग मानवता के लिए उपयोगी था, प्रेरणा प्रद था , मननोदक एवं चित्ताकर्षक था । उन्होंने इन सब की प्रशस्ता की और उनका (प्रकृति) स्तवन किया ।

यह ‘ प्रकृति पूजा ’ ही भारतीय आदर का वृहद धर्म बन गया । जो प्राणियों को धारण करे , मानवता को धारण करे , उसके लिए सुखद होे , शोभनीय हो तथा उपयोगी हो वही धर्म है और वही अनुकरणीय है । वैदिक ऋषियों ने इसे ही धर्म की सज्जा दी है । परशु बाद में चलकर यही गत विकृत हो गया तथा यह माना जाने लगा कि सामाजिक व्यवस्था के लिए जिसे मानव धारण करे , वही धर्म कहलाने योग्य है । यही धर्म मानवता के प्रति हो सकता है , देश , जाति और राष्ट्र के प्रति हो सकता है । प्रकृति के प्रति हो सकता है , समय प्राणियों के प्रति हो सकता है । यही पर्वतर्फ धर्म का सार तत्त्व है । वेद ज्ञान राशि है , साक्षात्कृत धर्म है , ऋषियों के मुख से निकले सहज उद्धार हैं ।

ऋषियों का मन प्रकृति के अंग - प्रत्यांग में अघु-अघु में रम गया था , उसमें समा गया था इसी कारण वेद प्रकृति पूजा का उद्धार है ।
उत्सवका उद्घोष है, वर्तुत: प्रकृति पूजा की धर्म है।
प्रकृति की जीवन का आधार है, समस्त प्राणियों का जीवन
बिना सूर्य के विषय नहीं है। सूर्य का जगत की आत्मा कहा
गया है:–

सूर्य आत्मा जगत: वर्तुतमाह।

समस्त ब्रह्माण्ड में सूर्य की एक मात्र चालना का आधार
है। वह प्रकाश का आदि देव है। प्रकाश के बिना जीवन
असम्भव है। सूर्य ही ‘सतिन्त’ है। सचित्र का अर्थ है प्रेरणा
- देव। सचित्र मानवों का प्रात: क्रमों में प्रवृत्त करता है।
संस्कृत वैदिक में सचित्र ही कार्य से मिलते हो गृहों में विश्राम
करता है। सचित्र की प्रेरणा से समस्त प्राणी अनुप्राणित हैं।
देव सचित्र का जागरुक गंत्र समस्त भारतीयों के प्राप्ति का
श्रेष्ठतम धर्म है। सूर्य का एक रूप पूजन है। यह खोजे,
गहर ध्वनि पशुशाखा का प्राप्त देव है, यह मान्य से भटके जनों
का पद – प्रदर्शक है। सूर्य का ही एक रूप मित्र है। यह
मानवों का सच्चा रूप है, पृथ्वी का जो भाग सूर्य की ओर है
उसका अधिकारा मित्र है जो अन्धकार की ओर है उसका
अधिष्ठाता वरण है । दिलि ईरान भूमि है और भारत अदिति
'भूमि' है । अदिति के पुत्र आदित्य है । द्वादश रूप सूर्य
भारत भूमि अदिति के पुत्र कहे गये हैं।

आर्य कभी उत्तरी ध्रुव ने निवास करते थे, वहों की

छ: महीने का रात और छ: महीने का दिन खुशकरण है ,
ईरान में 10 महीने का का उपल प्रपात दशमुख रावण है।
राम आयार के निवास और प्रसार का देवता है । वह दुर्दशक
दशमुख को आदित्य ढूढ़ के पाठ से समाप्त करता है । राम
आदित्य ढूढ़ के स्थात से रावण को मारते हैं।

सूर्य जो ईरान के 10 महीने के उपल प्रपात को नष्ट
करके पर्यावरण के अनुकूल तथा भान्व के रहने योग्य क्षेत्र
बनाया। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि आयार का जो
प्रसार हुआ उसमें पर्यावरण का मुख्य योगदान रहा है।
क्योंकि उत्तरी ध्रुव का वातावरण अच्छा नहीं था। वहों
जीवन कंप साध्य था अतः वातावरण की उपज में आयार का
प्रसार भारत भूमि में हुआ। इससे स्पष्ट है कि पर्यावरण का
जो सुखद पक्ष था उसे ही आयार ने चुना।

1. समुद्र मंडन- प्रो. हरिपंकर त्रिपाठी
वृतीय - अध्याय
पशु पक्षी एवं पत्तिशरण
पशु पक्षी एवं पर्यावरण

पर्यावरण की सुरक्षा में पशुओं का विशेष स्थान है, 
ऋग्वेद में गो, अश्व, बुुष्ट, अज, अणि, भेड़, श्वान 
आदि का पर्यावरण वर्णन है। जहाँ कृषि के लिए गो तथा बुुष्ट 
का उपयोग था, वहीं बुलड़ के लिए अश्व का था। प्रारम्भिक 
अवस्था में श्वान का मानव समाज में अत्याधिक उपयोग 
था। ऋग्वेद में यम के श्वानों का उल्लेख है:

अति दय सरस्नेयो श्वानो चतुरश्री शबलो साधुना यथा।

अथा पितृन्युगिदिः उपेषि यमने वे सत्यमान 
भवन्ति।

हे सघोमृत (जीव), चार नयन वाले, चित्रित शरीर के 
जो दो पुत्र श्वान हें; वो लुम्बु दिखाई पड़ेगे। उनके द्वारा 
प्रदर्शित अच्छे मार्ग से अत्यंत शीघ्र गमन करं। अबक्तर 
यमराज के साथ एक ही पंथ में प्रसन्नता से जो अज्ञानदि 
उपयोग कर लेते हें। उन अपने अत्यंत उदार पिताओं के पास 
उपदेश देंगे जाए।
इस श्लेष्मा में हाल में नृत्य व्यक्तियों को उपदेश दिया गया है कि उचित मार्ग से आगे बढ़कर सभी बाधाओं को क्षत्रियों द्वारा जाने वाले दो संस्कार शवाणों के पास वह जल्द आ पहुँचे।

ये ते शवाणों यजम रक्षितारी परिचर्की वृद्धकोसी।

लाम्यानेन परि देहि राजन्त्वति चार्म्मा अम्मीव।

च देहि //अर्येण्द 10-14-11//

हे यजराज! मनव्य मात्रों पर ध्यान रखने वाले, घार नयन वाले तथा मार्ग के संस्कार ये जो तुम्हारे दो रक्षक शवाण हैं। उनके अर्थीन इसे कर दो तथा कल्याण और आरोग्य इसे प्राप्त कर दो।

उरुवासासातरा उद्धे यमस्य दूतों चरनों जना अनु।।

तावस्म्भृत्य दृश्ये सूर्यायु पुनरतिष्ठितसुमद्धेऽभवम् //12//

ऋग्वेद-10-14 -12
विशाल नासिका युक्त (महुर्स लोगों के) प्राण अपने अधिकार में रखने वाले महापराक्रमी राम के दो दूत मर्त्यलोक में श्रमण करते रहते हैं। वे आज हमारे मन्त्रमंत्र प्राण फिर प्रत्यापित कर दें। ताकि हमें नित्य सूर्य दर्शन हो सके।

जगद्विदीय शर्मापणी संवाद में पणियों द्वारा चुराई गयी पशु संपत्ति का पता लगाने शर्मा नाम की कुलिया पणियों के पास गई थी। उसने चुराई गयी नायी का पता लाकर इन्द्र को सूचित किया था। इसी तरह अश्वधारी दुर्गल देवता का नाम अर्नि पदा। अवेस्ता में पृथ्वी गो रूप धारण कर अहुर के पास जाती है और उस पर कोई वाले अत्याचार की सूचना अहुर को देती है। पौराणिक साहित्य में भी पृथ्वी गो रूप धारण कर विष्णु से अपनी रक्षा की मांग करती है। भगवान कृष्ण तो चर्चाय गोपाल है। उनका समर्पण किया। कलाप गो, गोप-गोपियों के लिए समर्पित है। बलराम का आयुष्ठ ही है, इसीलिए वे दलधर कहलाते हैं।

राम कथा में वानर और रीश्व यदी दोनों सहायक हैं। राम कथा में राम बिवास का देवता है, यायु रूप हनुमान पर्यावरण है। सीता भृषि संपत्ति है।
सीता के परित्याग करने पर लव-कुश अर्थात लता और कुश की उत्पत्ति होती है।

इसी प्रकार सम और कृष्ण पर्यावरण से संबंध हैं। पौराणिक देवताओं में गणेश कृष्ण भगवान् हैं, उनका वाहन चूहा है, गंगा का मकर है, सरस्वती का मनोहर, दुर्गा का वाहन सिंह, शिव का वाहन घृणा है, विष्णु का वाहन गणेश, लक्ष्मी का वाहन कंगुल और उज्जौक, शिवलिंग का गर्दम, कृष्ण का श्वान, स्तन्द्र का मनोहर हैं। दुर्गा उपासना में शंकर शिव हो बलि देने का विधान है। पितृ पश्च में कौनों को खीर खिलाने का विधान है। चीटियों और मछलियों को चारा देने की परंपरा है। इस के अतिरिक्त कृष्ण, मल्लय, वाराह, नृसिंह को परम ब्रह्म विष्णु का अवतार माना गया है। जैसा कि ऋग्वेद में उद्देश्य है।

वास्तविकता प्रति जानाइये समाक्ष्यवाचेतो अनन्यीयो भवानि।

यत्वमहे प्रति तन्नो जुपस्व शं वो भवं शं

वचनुपदे / / 1 / / (56) (7.54) ऋग्वेदतसती ऋग्वेद 7.54.1
क्यों वास्तवतः मुझसे आत्मीयता रखो, सुन्दर निवास
वाले और हमारे लिए रोग रहित होंगे (रखे) जो तुम्हें हम
समर्पित करते हैं उससे प्रसन्न होंगे। हमारे द्विपाद और
चतुष्पाद प्राणियों के लिए कल्याण पद हो। (होंगे)

वास्तवतः प्रतरणा व काधि जयस्फानो जोभिरशेवशिन्दो।

अजयस्ते सम्म भयते पितेश पुनर्ण्यति नौ
जुषस्व। १२।। 
ऋवसुपूर्वसति (ऋग्भूद) ७.५४.२

क्यों वास्तवतः! हमारे लिए सुन्दर, विपत्ति पार करने
वाला होंगे। गायों और अश्वों से घर को समृद्ध करने
वाला होंगे। तुम्हारी भिन्नता के लिए हम जरा रहित रहें।
जैसे पिता - पुत्र के प्रति प्रेम रखता है उसी प्रकार हमारे प्रेम
रखो।

वास्तवतः श्रमणाय संसदा ते समीक्षनगः रणवया
गातुमत्या।

याहि क्षेम उन्हे योगे उन्हे योगे वरे नो गुणं पाल
स्वस्थिति: सदा न: १३।। ऋवसुपूर्वसति (ऋग्भूद) ७.५४.३
इस प्रकार सभी देवता कहीं न कहीं पशुओं से संबंध दिखाई देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पशु-पक्षी पर्यावरण के संबंधक थे क्योंकि सभी देवता किसी न किसी रूप में पशु-पक्षियों से संबंध दिखाई पड़ते हैं अतः इससे यह ज्ञात होता है कि पशु पक्षी पर्यावरण के अभिन्न अंग थे।

मानव और पशु-पक्षियों का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही अति घनिष्ट रहा है। क्योंकि ये कहीं न कहीं एक दूसरे के सहायक अवस्थ में हैं। अतः सभ्यता के इतिहास में इसे कम करने के लिए जो कोई नहीं सकता है। पशु-पक्षी भी पर्यावरण के अभिन्न घटक होते हैं। इस लिए पुराणों आदि में इसके संरक्षण की बात कही गयी है। इसी लिए इन्हें देवताओं के साथ जोड़ा गया है क्योंकि प्राकृतिक संरचना बनाते रखने के लिए इनका संरक्षण अति आवश्यक है। इसी लिए हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रों में पशु पक्षियों को कहीं दैवीय रूप में तो कहीं दैवीय शक्ति के सहायक के रूप में स्वीकार किया गया है। जैसा कि अंबिपुराण के
जाँचे अध्याय में सम्पाति, हनुमान, सुगीव का जिक्र आया है। मूवलः ने सबसे पशु वर्ग से संबंधित हैं लेकिन मानव समाज तथा पर्यावरण में अपने योगदान के कारण अद्वितीय हैं तथा इन्हें पोत्सिमनिक मान्यताओं के अनुसार देवताओं में स्थान मिला है। इससे यह स्वतंत्र होता है कि प्राचीन समाज के पुजारितमान में पशु-पक्षी का, जो कि पर्यावरण के अभिनव अंग माने जाते हैं, महत्वपूर्ण योगदान रखा है।

प्राचीन धर्मशास्त्रों जैसे वेद, पुराण तथा पुराणोत्तर साहित्यों में पशु-पक्षीयों में मानवी-कल्याण का प्रत्यारोपण किया गया है जैसे रामायण में सुगीव, हनुमान, जाग्यान, जंगल-प्ररु, अद्वितीय तथा रामचंद्र की मानव कल्याण के प्रयासों में अपना योगदान प्रदान किये थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि पशु-पक्षी मानवता के कल्याण के लिए सदेव तत्पर रहे हैं। पर्यावरण के संतुलन में पशु-पक्षी सदा ही मानव के साथ रहे हैं लेकिन आज का मानव अपनी शुद्ध लिपियों के कारण उन्हें वस्त्र कर रहा है जो कि आज के पर्यावरण के लिए चुनौती है।
बहुत से पशु पक्षी अपने वंश रक्षा के लिए मानव समाज का मूँह तक रहे हैं।

बहुत से पशु-पक्षी की प्रजातियों मानव के कुलित स्वार्थ के कारण विलुप्त हो गई हैं और कई प्रजातियों विलुप्त होने की कगार पर हैं। अतः पर्यावरण के प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने के लिए इनका संरक्षण जरुरी है।

पुराणकालीन समाज में ऐसे कई उदाहरण आए हैं जहाँ पशु-पक्षी के संरक्षण के लिए मानव समाज को उचित दिशा निर्देश दिए गए हैं। इसके लिए वैदिक समाज तथा पौराणिक समाज ने धर्म का सहारा तथा मार्गदर्शन लिया और इनके प्रति हिंसा को प्रतिबंधित किया है इससे यह सपना होता है कि तत्कालीन समाज में पर्यावरण की समस्या न होते हुए भी हमारे ऋषिगण पर्यावरण संतुलन के प्रति सचेत बने जैसा कि अभिन पुराण के 231 अध्याय में दिया भी गया है कि-

गोविश्वोद्दधर्मभवान: सारिका गृहरथिका।

चट्टका भासकूर्मता: कथिता चामवासिनः।।111।।
गाय, घोड़ा, उड़, गधा, कुत्ता, मैना, छिपकली, गोरेवा, भास; पक्षी - विशेषतः तथा कम्प्युटर इत्यादि आमवासी पक्षी कहलाते हैं इनका वथ निषिध माना गया है।

कुछ पशुओं को छोड़कर इनमें ऐसे भी पशु-पक्षी हैं जिनका मानव समाज में कोई योगदान नहीं है फिर भी इनके सरक्षण की बात करना हमारे ऋषियों के उच्च वैदिक जागरूकता का प्रतीक है। इससे यह स्पष्ट है कि वे पर्यावरण के संतुलन के प्रति सजज्ञ दिखाई पड़ते हैं।

अज्ञातिशुककनानेन्द्रः कोले महिषदायसि।

आन्यारण्या दिनिर्दिष्टा: सर्वोत्तं वनगोचरः।

अभिपुराणः / 231-12 /

माजरसुबुकुटो आन्यो तौ चैत वनगोचरी।

तत्योभवति विज्ञानं नित्यं वे रूपशंदेत: / 13 /
बकरी, भेड़, ताता, हाथी, सुकर, मशिष्ट तथा कोआ ये जीव यान्य और अरण्य दोनों के जीव कहे गए हैं। विलाय और मुर्गा यान्य जीव होते हुए भी वन में देखे जा सकते हैं। रूप भेद से इनकी पहचान का निश्चय किया जाता है कि कोन्ह अरण्य के पशु हैं और कोन्ह यान्य के पशु हैं।

सौंप, मऊर, चक्रवाक, गधा, हारिल, कुलाल, जंगली
मुर्गा, बाज, गीदड़, खंजन, बिचु, गोरेया, श्यामा, नीलकंठ, जलकांक, तोता, सारस, कुकुर, भरदल पक्षी और सारण दीवार जीव हैं। // अभिनव पुराण / 1231-14, 15, 16 //

वाणुर्युक्त शरणशक्तिवाचा: शशकककटणा: //

लोमालिका: पिंगलालिका: कथिता रात्रिपुजोचरा: //17//

वाणुरी, उल्लूक, शरम, कोैच, कक्कण, भन्गली, पिंगंके ये रात्रिचर जीव हैं। //अभिनवपुराण-237-17//

हंसाशु कृम्मनार्मणकुलकर्तशुजागमा: //

बृक्षारितिसंहत्यायोद्हामार्गोरुकर मानुषा: //18//
श्यामद्वन्द्व्योगापापुककोकिलसारसा: ।

तुरंतको जोधा हैहुँभवचारिनः । ॥ १९ ॥

//अभिज्ञुराण-२३१ अध्याय

हंस, मृग, विलाद, नेवला, रीछ, सर्प, खुला, सिह, बाघ, उंट, बाग्ना
शूकर, मनुष्य, साही, बैल, गीदड़, धेड़या, कोयल, सारस, पीनर और
गोध उभयचर जानी हैं ।

उपरोक्त सबसे पशु - पक्षी पर्यावरण के विधायक पक्ष
माने गए हैं क्योंकि इनमें से बहुत से पशु- पक्षी मानव द्वारा
उद्भव पदार्थ तथा मरे हुए पशुओं का भक्षण करने वालों
को लुप्त होते हैं । जिससे पर्यावरण हमारे रहने के अनुकूल
होता है । अतः सुझाव है कि उपरोक्त पशु-पक्षी पर्यावरण के
अभिज्ञ अंगज माने जाये हैं । इससे ज्ञात होता है कि जलचर
थलचर तथा उभयचर जीव पर्यावरण के सहायक तत्व होते हैं
इसलिए पुराणों में इन पशु-पक्षियों के संस्करण के लिए
धर्म का सहारा लिया गया है । इसमें तथागत पशु-पक्षी ऐसे
है कि जिससे हमें लगता है कि हमारे लिए इनकी कोई उपादेयता नहीं है लेकिन फिर भी पर्यावरण के लिए इनका विशिष्ट योगदान है। इसीलिए इनका संरक्षण मानवता के लिए ही नहीं अपने समस्त प्रकृति के लिए इनका संरक्षण जरूरी है। ये हमारे पर्यावरण के लिए उपयोगी नहीं हैं बल्कि हमारे आर्थिक उपयोगों में भी इनका विशेष महत्व है।

वर्तमान समय में तमाम विकास घाटियाँ तथा राष्ट्रीय पार्कों में चलाए जा रहे संरक्षण अभियानों में पौधों की सहायता में वर्णित आदेशों का पालन आवश्यक प्रतीत होता है। इससे पर्यटन का भी विकास होता है तथा इन जीवों का संरक्षण भी हो रहा है।

लेकिन वर्तमान समय में जनों की बेटहाशा कटाई तथा पौधों वृक्षों में आपके खेतीनाशकों का प्रयोग तथा अदृश्य शिकार की चर्चा से बहुत से पशु-पक्षी अपने अर्थित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। उनमें से कई प्रजातियाँ विलुप्त होने की कगार पर हैं तथा इन प्रजातियों को बचाए रखने के लिए और इनकी जनसंख्या वृद्धि के लिए सरकार को प्रयत्नशील होना चाहिए क्योंकि सभी पशु-पक्षियों का मानव
जीवन के साथ परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से घनिष्ठ संबंध रहा है। जैसे- मिथुन, शृंगाल, कच्चा आदि पशु-पक्षी नरे हुए जानवरों का खातर पर्यावरण को प्रभावित होने से बचाते हैं लेकिन मानव द्वारा अपने उपभोग के लिए इन पशु-पक्षियों का विनाश कर रहे हैं। अतः इन्हीं सब कारणों से सरकार ने 1980 तथा 1988 में बन संरक्षण बीति पारित किया। इन अधिनियमों के तहत पर्यावरण के स्थाई बचाव के लिए विशेष बल दिया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात 1960 ई. में पशु कृत्या अधिनियम पारित किया गया जिनमें कुछ पशु-पक्षियों को पूरी तरह अवैध घोषित कर दिया गया है। अतः जो इन पशु-पक्षियों का शिकार करेगा उसे सरकार अपराधी मानकर दंड देंगे।

वर्तमान समय में जो पशु-पक्षियों के असरित्व पर खतरा है उसका जिम्मेदार मनुष्य है। इन पशु-पक्षियों का पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि सबी जीव-जन्तु पर्यावरण के प्रमुख घटक होते हैं। इस लिए इनका संरक्षण अति आवश्यक है। इन पशु-पक्षियों की उपादेयता
को देखते हुए प्राचीन कालीन धर्मविश्वासों में इन्हें किसी न किसी देवता से जोड़ दिया गया है। जिससे आम जनता इनके प्रति सद्व्यवहार करे, तथा इनके संस्क्रमण के प्रति समर्पित रहे। पुराणों में पर्यावरण के संतुलन के प्रति विशेष ध्यान दिखाया क्योंकि यह सदृश वितरित है कि उस समय पर्यावरण का कोई संकट नहीं था फिर भी उनका दृष्टिकोण इसके प्रति सकारात्मक था क्योंकि निजी से निजी पशु-पक्षी का देवी देवताओं से संबंध जोड़कर उने मानव की दृष्टि में सम्मान दिलाना था इसकी जानकारी हमें लगभग सभी पुराणों में मिलती है।

अतः इन पशु-पक्षियों की प्रजातियों का विकल्प होना पर्यावरण के लिए बहुत ही जिक्तनीय है क्योंकि यह पारिस्थितिक क्षेत्र को दर्शाता है अतः इनके संस्क्रमण उनके लिए न ही कोई मानवता के संस्क्रमण के लिए है। इसलिए इनका संस्क्रमण निर्तात आवश्यक है। पारिस्थितिक तत्त्व के संतुलन को बनाए रखने के लिए इनका विकास जरूरी है। पशु-पक्षी हमारे जैविक वातावरण के महत्वपूर्ण अंग हैं। मानव कल्याण के हित में इस वर्ष का संस्क्रमण निर्तात जरूरी है।
चतुर्थ - अध्याय

पंच महाभूत एवं पर्यावरण
पर्यावरण एवं पंचमहाभूत।

पर्यावरण के मुख्य घटक पंचमहाभूत हैं जिसके अन्तर्गत पृथ्वी, जल, वायु, आकाश तथा सूर्य हैं। यह पर्यावरण के मुख्य स्रोत हैं इन्हीं के अन्तर्गत समस्त सृष्टि का निर्माण होता है। इसके बिना सृष्टि की कल्पना करना बेमानी होगी। ऐसा गोपालानी तुलसीदास के रामचरितमानस में लिखा भी है कि शिति, जल, पावक, गणन, समीर से पंचभूत का निर्माण होता है।

पंचमहाभूत के निम्न अंगों का विवरण पुराण्कालीन स्रोतों के अनुसार निम्न है।

तेज

तेज के अन्तर्गत सूर्य, अभिज्ञ तथा चंद्रमा आते हैं।
सूर्य

सूर्य प्रकृति की महत्वपूर्ण शक्ति का घोटक है, जगत और जीवन का मूलभूत है। इसलिए आदिकाल से मनुष्य के हृदय में सूर्य के प्रति अपार भक्ति का भाव रखा है। विश्व के सभी धर्मों एवं संस्कृतियों में सूर्य को एक सम्मानीय देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। ऋग्वेद में सूर्य को एक प्रधान देवता के रूप में स्वीकार किया गया है।

वैदिक वाचन-नियम के प्रमुख ग्रंथों रामायण, महाभारत, पुराणों तथा उपपुराणों में सूर्य देवता की उपासना के विशद प्रमाण उपलब्ध हैं। सर्वत्र की उनके स्तवण और युग्मणान में अनेक मंत्रों तथा श्लोकों की रचना की गई है।

पुराणों में वर्णित सौतंत्रियों से सौरसंप्रदाय की व्यापकता का ज्ञान होता है। भविष्य पुराण और साम्बर्पुराण जैसे परस्परी सूर्य पुराणों से सौर संप्रदाय का विस्तृत परिचय मिलता है। यहाँ प्रत्यक्ष देवता सूर्य रूप में सर्वांशित वीर्य देवता है।

प्रत्यक्ष देवता सूर्यों जनधवकुश्तिवाचकः।
शिव भक्तिना पर आधारित पुराण को सूर्यपुराण नाम देने से प्रकट होता है कि सौर उपासना पर शिव नजर का प्रभाव पड़ा। पौराणिक सौरपारंपरिक वस्तुतः वैदिक तथा उत्तरपौराणिक सूर्यपारंपरिक के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है। पुराणों में सूर्य देवता के स्वरूप में परिवर्तन आया है। जहाँ वैदिक काल में प्रकृति का प्रमुख देवता होकर सभी जीवों तथा वन्नतियां का प्राण रूप था, वही पुराणों के समय सूर्य को एक देवता के रूप में ही स्वीकार किया गया है। इससे यह रुपरेखा होता है कि सूर्य का प्रकृति देवताओं में प्रमुख स्थान था यद्यपि सूर्य की परम्पराओं का प्रमुख कारक है व्याख्यात वही समस्त पर्यावरणीय जीविविधियाँ का आधार नियामक है।

सूर्य उपासना का स्वरूपिता काल गुप्तों के शासनकाल के बाद से मध्यकाल तक था सम्भवतः भविष्य स्तंभ, ब्रह्म, वाराह, विषुधमन्तर तथा साम्भ आदि पुराणों का प्रणयण हुआ। इसमें सूर्य को प्रमुख देवता के रूप में स्वीकार किया गया है तथा उस समय के कुछ राजवंशों को सूर्य वंश से जोड़ा गया है।
सातवीं शताब्दी में सूर्यभवत मद्युर ने सूर्य शतक की रचना की। जनश्रृंगि के अनुसार मद्युर को भयंकर कुछ रोग था जो सूर्य के प्रभाव से रोग मुक्त हुए थे जिसके फलस्वरूप उन्होंने सूर्य की महिमा में सूर्यशतक की रचना की। उन्होंने बताया है कि सूर्य के स्तवन तथा अर्चन से उन्हे भयंकर रोग से घुटकारा मिला। इसलिए उन्होंने सूर्य की महिमा का वर्णन किया।

सूर्य का जितना महत्त्व धार्मिक दृष्टि से है उससे अधिक महत्त्व प्राकृतिक, आयुर्वेदिक तथा परावर्तनीय दृष्टि से है। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है कि 'सूर्य आलम जगतस्तस्तस्तुजय' कहकर ऋग्वेदिक ऋषियों ने जगत में सूर्य को सर्वाधिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया। पुराणों में सूर्य का रोग निवारण तथा स्वास्थ्य लाभ के लिए विश्वास विवरण मिलता है। सूर्य परावर्तन का सबसे प्रादेशिक अंग है वर्तमान में सूर्य के उदय होने से ही जीवन का जीवनचक शुरु होता है और सूर्य के अस्त होने से ही जीवनचक रुक जाता है। सूर्य का एकमात्र प्रकाश का स्रोत सूर्य ही है।

प्रारंभिक पुराणों में अधिकतर सूर्य के उपकारी रूप का विचार है। सूर्य को वर्षक अन्नभिस्फोक्त और हिमप्रदाता के रूप में स्वीकृत की गई है।
जगत का उद्भासक सूर्य अपनी तीव्रता रशिम द्वारा जल गहवर करते हैं। सूर्य का जलशोषण लोक कल्याण के लिए है क्योंकि सूर्य की गर्मी से पृथ्वी का जल वाष्प बनकर बादल के रूप में संगमित होता है। पुनः सूर्य के प्रभाव से जल बरसाता है। सूर्य अपनी किरणों के द्वारा ही वर्षण कार्य करते हैं।

एष भासि तपत्येष गभस्तिभिः।

// ब्रह्म पुराण ।।३०-१०।। साम्ब पुराण ।।१२-१०।।

सूर्य अपनी सहस्र रशिमयों से धार सोर रशिमयों के द्वारा वर्षा करता है।

---

1. मत्सय पुराण १२८/१९-२०
2. ब्रह्म पुराण २४/२६-३०
3. श्रवणिक पुराण ५/७८/२१-२४
4. साम्ब पुराण ७/४६-४८
5. हिंदु पुराण ५९/२४-२८
सूर्य की मेघ गृहित नमस्तकरणीय है। सूर्यावस्था इस वेयानिक तथ्य से परिचित है। सूर्य ही मेघों की उत्पत्ति का कारण और वर्षा का मूलाधार है।

वर्तनादमुद्योत्पल्योरिम्यावर्षणसम्भवः।

धर्मेतत्तमुरानः। 1/30/7

सूर्य एवं तू, यृद्वीरां, सम्प्रभु समुपदिश्यते।

मतम्य पुराणः। 125/27 वायु पुराणः। 1151/51
पकाता है इति इलाह सूर्य के बिना तृण से लेकर के आवश्यक तक कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। सूर्य के ही द्वारा अजन्य की उत्पत्ति होती है जिससे प्राणियों का जीवन चलता है।

इसलिए सूर्य वन्दनीय है। 11111

1. मतम्य पुराणः। 125/27-35 वायुपुराणः। 1/51/51-53, 1/52/39-42
विष्णु पुराणः। 2/19/12-23 ब्रह्म पुराणः। 122/57-59
इतना ही नहीं सूर्य आयु और आरोग्य के स्वामी हैं।
उनकी कृपा से ही मनुष्य इसके प्राप्त कर सकता है। उनके
स्तोत्र का जप करने वाला मनुष्य सी वर्ष तक जीता है।

जपनामस्य निश्चित जीवेच्छा शरदां शतम्।

मार्कण्डेय पुराण में दर्शित है कि सूर्य की कृपा से राजा
राज्यवर्धन की आयु बढ़ी थी। स्कंद पुराण में दर्शित है कि
सूर्य के प्रभाव से भी वारद आपनवित कुमारवस्था को छोड़कर
कुमारवस्था को प्राप्त किया। अन्य देवों की अर्पणी सूर्य से
आरोग्य की वारदा अधिक की गई है। पौराणिक सूर्य देव
के स्वरूप का एक महत्त्वपूर्ण पश्च है उनका अविश्वास्यक
और लोगों को नहीं प्राप्त करता है।

1. स्कंद पुराण 15/1132/64
सूर्य राष्ट्रों में सूर्य को रोगानुष्ठान देवता के रूप में उद्दीपित किया गया है। पुराणों में ऐसी मान्यता है कि सूर्य देव का कुछ विशेष रोगों को दूर करने के लिए आह्वान किया जाता था। जैसे चार्मरोग/1।

जब व्याधिवस्तु कुछ रोग से अभिभूत जीव देह वाला मनुष्य माता-पिता,बन्धुओं द्वारा त्याग दिया जाता है तब सूर्य ही उसकी रक्षा करते हैं। ऐसा स्कंद पुराण में वर्णित है/1/2/51/71। कुछ के विनाश के लिए सूर्य देव विशेष रूप से प्रार्थनायी है।

सूर्य ने स्वयं अपनी पूजा करने से 18 प्रकार के कुछों, सभी प्रकार के पापों तथा रोगों से वगैरह संबंध बनाई है।

सूर्य दिनों को नापते हैं, अल. के दिनों को बढ़ाते हैं, दीमारी और प्रत्येक प्रकार के दुःखों का नाश करते हैं। जीवन का अर्थ ही सूर्यादय का दर्शन है/3।

1. स्कंद पुराण 7/1/322/25
2. ऋग्वेद 10/37/4
3. ऋग्वेद 4/25/4
सभी प्राणी सूर्य पर अवलम्बित है क्योंकि प्रकृति में सत्तुलन के लिए पर्यावरण और जल का शुद्ध होना अबिवार्य है। क्योंकि सूर्य के प्रकाश से ही जल की अशुद्धता दूर होती है। प्रकाश की अबिवार्यता से जल में रहने वाले कीटाणु अपने आप मृत हो जाते हैं। पुराणों में सूर्य स्तोत्रों की जो कल्पनाएं मिलती हैं वह धार्मिक होने के साथ साथ देवाशिक धरातल पर भी खारी उत्तरस्त हैं। देवाशिक दृष्टि से सूर्य के सत्त अथवा सूर्य किरणों के सत्त प्रकाश या सूर्य किरणों में विघमान सत्त रंग हैं। आरोग्य के लिए सूर्य प्रकाश की महत्ता को आरुणिय्वेद में देवाशिक इसे देवाशिक दृष्टि से इसे जोड़ते हुए इसे अनेक रोगों का नाशक बताया है। सूर्य प्रकाश से श्याम रोग, पिलिया, नेत्र दोष, बच्चों का सूखा रोग, त्वचा संबंधी रोग दूर होते हैं। अतः पुराणों में इसे लिए सूर्य की स्वति रोगनिवारण के लिए की गई है। आज भी सूर्य स्त्रान को आरोग्य का कारण माना जाता है। सूर्य किरण चिकित्सा को जानकर ही पुराणों में सूर्य की स्वति का विधान है।

चन्द्र

तेज के अन्तर्गत दूसरा प्रमुख स्थान चन्द्रमा का है। चन्द्र का अर्थ है आहलादक और गा धातु का अर्थ मापन है। उत्तरदायित्व सायन का अर्थ मापन है। चन्द्रमास का अर्थ आहलाद मापक काल
से है। आहलाद काल मापक चन्द्रमा का विधान करता है। यह दिन रात का विधायक है चन्द्रमा की पन्ध्र कलायें हैं।

भारतीय साहित्य में चन्द्रमा सोम है। चन्द्रमा में अमृत के सदभाव की कल्पना है। चन्द्रमा आकाशीय है। इसीलिए स्वर्ग से अमृत की धारा अलायल की कथा है। समुद्र मध्यन में चन्द्रमा की कथा का वृत्तात्त्व है। शिव ने समुद्रोब्धत विष का पान किया। विषधमन के लिए चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किया। समुद्रमध्यन में महर्जन था। सर्परन्जु था। देव दर्शन पुछ की तस्फ था। असुर दर्शन मुख की ओर थे। असुर सर्प की लौंग से मुक्तित थे। विषु ने अमृत को देवों में बुंदा। इस घटना से ईरान के असुरोपासक बाबेरशासक अहे के अध्वाचारों की गल्धि मिलती है।

इस प्रकार असुर राप्तमलन विष रूप में उभयविधि सोम को लेकर के अवतरित हुआ। इस प्रकार सोम शिव से सर्वथा संबंध भंग ही है। चन्द्रमा के साथ सोम का समीक्षण, उसकी शीतलशास्त्रगुणितता के कारण है। सोम की पंचार्द कलायें हैं। वे पंचार्द वित्ताभिषक्य है।

उनमें हास तथा बृह्द है। प्रतिपदा से एक एक कला कम होते अग्नि को सर्वसं: कला का आभाव होता है और पुनः प्रतिपदा को एक कला उदित होती है और पुण्यगाढ़ को पंचदश कलायें दृढ़ हो उठती हैं। अग्नि की कला शून्यता में प्रतिपदा को एक कला की उत्पत्ति के 1.

1. दशपूर्णमासाय वाल्ये- प्रो हरिश्चंद्र त्रिपाठी
कारण त्वकुर धन्य त्वकुर कला के अतिरिक्त अमा और प्रतिप्रष्ट के मध्य श्रोधरी कला की कल्पना की गई है। यही निम्त्य कला है,अमृता है, सुक्ष्मा है, इसी अदृश्या श्रोधरी से समस्त कलाओं का विकास हुआ है। इसी का आरोपण चरक और सुक्ष्म हेल प्रोग पर किया है।

सोनो ज्ञानोपधि राजः पंचदशिक्षां सोम इवहीयते बर्धते च।

सोम ज्ञान औषधि राज है, यह पंचदश पर्व वाला है। चक्रवर्त्ता की भौति घटने बढ़ते वाला है।

सर्वेषभवेन सोमानं प्रत्रदि दशपंच च।

ताति शुक्ले च कृष्णे जायते निग्न्तते च।

एकेक जायते पत्रं सोमस्यादहरस्त्र था।

शुक्लस्य प्रत्रगृहाया तु भवेत पंचदशचछदः //

शीर्षों दत्तोकं दिवसले दिवसे पुलः //

कृष्णप्रकाशः चापि लता भवति केवलः 112।

1. चरक 16: 4: 7

2. सुक्ष्म 4/129/120-22
समय सोम के पंचदश पर्व होते हैं। वे पर्व शुरुल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष 
में उत्पन्न होते हैं और क्षरित होते हैं। सोम का एक पत्र प्रतिदिन 
उत्पन्न होता है। शुरुल पक्ष की पूर्णिमा को यह पंचदश हो जाता है। 
पुनः एक-एक दिन एक-एक पत्र क्षरित होता है। कृष्ण पक्ष के क्षय 
होने पर केवल लता शेष बचती है।

यही सोमोपासना वशपूर्णमास में व्यक्त है। यही तत्त विधा में 
श्रीविधा है, पंचदशी है,पोडसी है। श्रीविधा सोमोपासना का परवर्ती 
पिकास है।

सोम अपनी शीतलता के लिए प्रसिद्ध है। इसके प्रकाश में 
प्राणी का चित्र शान्त रहता है क्योंकि शीतलता दुःख को बढ़ाती है। 
इसीलिए पुराणों में चन्द्र की उपासना प्रचलित हुई और इसकी महत्ता 
की वजह से तमाम राजवंशों में अपने को चन्द्रवंश से जोड़ा इससे 
रूपस्त होता है कि पुराणों में पर्यावरण के साथ चन्द्रमा को जोड़ा गया 
है।

अभिन

संस्कृत की अज धातु का अर्थ प्रकाशित करना है इसी से 
अभिन पद निर्माता है इसका लेटिन और ऑर्गल रूप इग्निस (Egnis)
है। इसी से ऑग्निक इनाला, इनालाईट (Ignite) और इनालीफाइर (Ignify) किया जाता है। इनका अर्थ प्रकाशित करना है। अभिज्ञ द्वारा बनाना शुरू होता है। द्वारा नाम नाम द्वारा भोजनाशी का परीक्षण करने वाला है। उद्योगी और प्रकाश देने वाला, भोजनण्ड का परिपक्ष करने वाला है।
इसलिए ईरानी और भारतीय आयों का अभिज्ञ को देखता रूप में स्वीकार है। अवेस्ता में इसे वेरोजन्ध कहा गया है। इसी को आतर विभाग संस्कृति का अध्ययन भी कहा गया है। अवेस्ता में अभिज्ञ के द्वारा भारतीय आयों की कल्पना की गई है। उपलब्ध देखकर ईरान में अभिज्ञ ही मानवता का मुख्य रक्षक था। भारतीय आयों के भी सम्मान यात्रिक किया और आधार अभिज्ञ को ही माना है।

लवमस्त्रेण धुमिस्त्वमायुधुशुक्रणি: लवमदशस्तमनस्त्यरिः

लवन्यस्त्वमोर्भिम्यस्त्वंकुणाः गृहते आयसे शुधिः।।

है अभिज्ञ! तुमं दिवस के साथ उत्पन्न होते हो, तुम शीघ्र प्रकाश रोशनी में चलते हो, तुमं जलाते हो उत्पन्न होते हो, तुमं पाषाण और मेघों से उत्पन्न होते हो तथा तुमं तक्ष के उत्पन्न होते हो, तुमं आपसी उत्पन्न होते हो, तुम औषधियों से उत्पन्न होते हो। भगवान के विशेष तुमं प्रकाश को भी उत्पन्न करते हो। ऋग्वेद में अभिज्ञ का स्तवन सर्वार्थिक है इसके पुरोहित ऋतिक होता है और इस सात देवता कहा गया है। यह प्राचीन और गूढ़ समय स मिश्रित व्याख्या प्राप्त गया है।
है।यह वीरचतम, यशस और प्रोपण को देने वाला है। इसकी महत्ता के संबंध में दो मंत्र उद्देशीय हैं।

1. अणिनहोतां कणिकेतु: सत्यशिवशंकरस्तमुः देवो देवोभिरार्गमत।

2. यददंग दाधुरत्वमुः। गदेः। अरव दाधुरत्वमुः।

अभ्ये भद्रं करिष्यसि। अभ्ये भद्रम। करिष्यसि।

तवेत्तलत्वमिदिकरा। तवं दुस्रहः। तत सत्यम अविद्रः।

अणिन होता नामक पुरोहित है। कविकुल है। सत्य भूत है और सत्याधिक विषिद्र यशोरुपात है। वह देव अणिन देवताओं के साथ यहाँ में आते हैं। वे अणिन तुम हविष्णु प्रदाता के लिए जो कल्यण करोगे। वह वन्दनीय है।

वैदिक ऋषि दिन रात अणिन के स्तवम में निरंत्र हैं। अणिन यज्ञों पर शासन करने वाला, यज्ञों पर आधिपत्य करने वाला है। ऋत का रक्षक है। प्रकाशक है। यज्ञ गृहों में विरंज्तर प्रज्वलित रहने वाला है। इसीलिए ऋषियों ने इसकी प्रार्थना की है।

स न: पितेव सुपदेवप्रसे सूयायणो भवं। सच्चास्या न: स्वस्ततर्वेः।
है अपने जैसे पुत्र के लिए पिता सुलभ होता है उसी प्रकार तुम पिता के समान मेरे लिए सुलभ रहो। हमारे कर्मयान के लिए सदैव साथ रहो।

अभिज्ञ भूत प्रेतालमाओं आदि को दूर करने वाला है। गृहस्थों के सारे के सारे कर्मों का साक्षी है। जब से लेकर के मृत्यु तक सभी संस्कारों में अभिज्ञ की उपस्थिति अविवाह द्वारा होती है। प्रसूतिगृह में दरतनाओं से रक्षा के लिए अभिज्ञ प्रज्वलित रहती है। समस्त गृह कामों में अभिज्ञ दीप रूप में और अपने वास्तविक रूप में विधामान रहता है। यह लोकिक अभिज्ञ सूर्य रूप अभिज्ञ का ही रूपान्तर भाव है। अभिज्ञ का गुरुवत्व कार्य अंतर्कार को दूर भगाता है। जब आर्य उत्तरी धुब कर्मयान सागर तुरान; रशियन तुर्किस्तानज्ञ हैरती विरजितति; सुमेर या अलबुर्ज्ञ के पास था। उस समय घोर उपवन-प्रपात होता था। ऐसे में जीवन दूरसर होने के कारण स्वभाविक ही अभिज्ञ का महत्त्व बढ़ जाता है। इसीलिए आर्य जन अभिज्ञ के प्रति कोटिश: नत हैं और अभिज्ञ को सर्वस्त मानने वाले हैं।

अतः: ऋग्वेदिक समाज में वर्णित पद्मावरण के कष्टमय जीवन से अभिज्ञ मनुष्य की रक्षा करता है क्योंकि यह वेदों में वर्णित तेज रूप सूर्य और चन्द्र का ती हृदयांतर है। अभिज्ञ से ही वैदिक आयों का कष्टमय जीवन दूर होता था इसीलिए अभिज्ञ की सर्वाधिक पूजा
का उक्ति मिलता है। पौराणिक काल में अभिन देव रूप में पूजित हो गया है। यह परंपरा कालान्तर में लगातार जारी रही। पुराणों में तो इसकी भूरिम भूरि प्रशंसा की गई है।

वायु

वैदिक देवता रुद्र झंघत्रत का दैवीकृत रूप है, मरुतों को रुद्र का पुत्र कहा गया है। जो अदिति के गर्भ से उत्पन्न है और इन्द्र द्वारा सत्त्वा विभाजित है। यह पृथ्वी ही अदिति है, अंतरिक्ष पृथ्वी का उदर है और सत्त्व, मरुत लघु दायुरुप खण्ड है। इस प्रकार रुद्र और मरुत दोनों आधिप्रद हैं। मरुत की स्तुति इस प्रकार है।

या वो श्रेष्ठा मरुत: शृवीलि या रात्मा वृषणो या मनोधु।

यानि मनुष्यिला पिता कस ता श च होष्ठ रुदस्य परिन।।

हे मरुतों जो तुम्हारी शुद्ध आधिप्रद हैं। जो रोग को शान्त करने वाली हैं। जो रुद्रप्रद हैं। जिसको कि हमारे पूर्वपुरुष मनु ने चुना था उन आधिप्रद को प्रदान करो। में उन आधिप्रद को चाहता हूँ। रुद्र की रोगशंकरता और रोगविद्वृत्तता को चाहता हूँ।
रामकथा में हनुमान अवेस्तीय वायु का रूपांतर है। वह वानर रूप है। वायु वृक्षों पर व्यक्त होता है। और वानर ही वृक्षों पर रहता है इसीलिए वानर रूपी हनुमान वायु ही है। किन्तु कालान्तर में इन्हें वायु रूपी कह दिया गया है।

हमारी पुष्पी के चारों ओर वायु है। वस्तुतः हमारे चारों ओर हवा का एक समुद्र फैला गया है। हम उसकी तली में उसी प्रकार रहते हैं जैसे जल में प्राणी। प्राणी की जीविता के लिए वायु आवश्यक है। इस प्राणदायक वायु के बिना क्षण भर भी जीवित रहना असंभव है। इसीलिए वायु की शुद्धता पर प्राचीन काल से ही जोर दिया जा रहा है। वायु पर्यावरण का एक प्रमुख अंग है क्योंकि इसके प्रतिकूल प्रभाव से मनुष्य का जीवन संकटमय हो जाता है।

वैदिक समाज में तथा पुराणकालीन समाज में जो यज्ञ की संकल्पना थी वह वायु की शुद्धता से ही संबंधित थी। यज्ञ में जो हविष्य ढाले जाते थे वे वातावरण को शुद्ध बनाते थे क्योंकि यज्ञ में जो समिधा प्रयोग की जाती है उग्रे तनाम तरह के रासायनिक गुण होते हैं जो यज्ञ में पड़कर पर्यावरण को स्वच्छ बना देते हैं। प्राचीन काल में यज्ञ को धर्म से जोड़कर वातावरण को शुद्ध बनाने का एक वैज्ञानिक प्रयास था क्योंकि प्राचीन ऋषियों का मुख्य उद्देश्य लोकिक जीवन के प्रति था अतः उन्होंने लोकिक जीवन के साथ - साथ
भौतिक जीवन के प्रति सचेत्न के इसलिए वे वायु, जल आदि की शुद्धता पर विशेष बल देते थे। उनका मानना था कि वातावरण में बहुत से सूक्ष्म जीव होते हैं जो मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रतिकूल होते थे। इससे बचने के लिए यज्ञ का विधान किया था।

रमणीदेव में वायु और वात को पृथ्वी पृथ्वी रूप में स्वीकार किया गया है तथा इनका स्तवन किया गया है। 'वात' श्रेष्ठ गुण युक्त और जीवनप्रद है। वह साक्षर प्राण ही है। प्राण से ही समस्त प्राणी अवयवप्राप्त हैं। प्राण; वायुचक अभाव ही मृत्यु है। इसलिए वायु अभाव का देवता है तथा इसे समस्त शुद्धक का राजा कहा गया है। वायु का उप रूप गर्भवायुकत संहारयुक्त है। इसकी प्रशंसा में एक मंत्र उद्धरणीय है।

आत्मा देवान्यं श्रुवनस्य गर्भोयथवांशिश्रविति देवावः।

धोषा इदम्य सृणिद्वे न रूपं तस्यं वातायं हविषा विषेन।।

---

सैदिक रीडर आधार ऐथोनी मेक्डोनल

(बात पूरं 218, श्लोक-4)
यह देव वाते देवों की आल्पा है, भुजन का जर्मन है और स्वेच्छा से विचारण करता है। इसकी गर्वना सुनाई पड़ती है। इसका रूप दिखाई नहीं पड़ता, हन्ना इस वात के लिए ‘हविष्य’ (पुजा) विचारण करें।

इसके विषय में पुराणों में भी विशद चर्चा की गई है तथा इसके संरक्षण की वात कही गई है। वैदिक आन्ध्र को इसके स्तव से भरे पड़े हैं।

1. झुंडिनो वालो आ सिद्धोता परायत:।

दक्ष ते अन्य आ वातु पशुव्रो वातु चंद्रप:।/2।

आ वात वाहि भेष्जं चि वात वाहि चंद्रप:।

तवं हि विश्वभेष्जो देवानां दूत ईसे।/3।

आ त्यजनं शंतातिभिरथो अभिष्ठंतातिभि:।

दक्ष ते भद्रानाभरं पर दक्षं सुधामि ते।/4।

आप: इद्वा उ भेष्जनीरत्सो अमजोचातलरे।

आप: सर्वस्य भेष्जनीस्तास्ते कृप्यवन्तु भेष्ज्य।/5।

ऋग्वेद 10/134
इससे स्पष्ट होता है कि वायु पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंश है।
इसी की शुद्धता के लिए धर्मशास्त्रो में यज्ञ का विधान था जिससे आम जन पर्यावरण को शुद्ध बनाए रखें यह हमारे जीवन का कल्याण का प्रतीक है। पुराणों में तो वायु को अत्यधिक महत्व दिया गया है तथा इसके पूजा तथा स्तवण का विधान बताया गया है जो यज्ञ के रूप में होता था।

पृथ्वी

घावा पृथ्वी पर्यावरण की आधारभूमि है। क्रष्णवेद के प्रथम मण्डल के 160 सूक्त में इसकी स्तुति की गई है। घाव में धातु को अर्थ है चमकना, दिव के दिवस पद का घोस हो गया। घाव का नेतृत्व रमरे इसे घोस का पिता कहा गया है। घोस खित का लेन्नखित है। पृथ्वी तूं समर्पित कि भी है। प्रवृत्त प्रसंग में घाव पृथ्वी की स्तुति की गई है। घाव पृथ्वी के अब्दर ही समाहित है।
वायु, जल, मानव, पशु-पक्षी, वनस्पति सब पृथ्वी पर ही स्थित हैं। घाव पृथ्वी की स्तुति में एक मंत्र उद्दरणीय है।

ते हि घावा पृथ्वी विश्वासभूत अत्तारी रजसो धारसत्तकी।

सुनन्ननी प्रिणण अन्तरियते देवी देवी धर्मणा सूर्यः श्रुचि। । । ।

श्लोक संख्या-1 पृथ्वी देविक रीढ़, आधर ऐस्थोनी नेकडोनल
यह धावा पृथ्वी सबके लिए कल्याणकारी है। व्रत का पालन करने वाली है। वायु को धारण करने वाली, सुन्दर जन्म पद है।

इसके मध्य देव सूर्य नियमानुसार विचरण करता है।

उर्वर्च्छा महिनी असंघता पिता माता च भूवनाविणि रक्षति।।

सुधृष्टमने वचुष्टिवेल रोदसं पिता यत्सीमभि रुपख्रासपत।।

धावा पृथ्वी,पिता और माता के रूप में सम्पूर्ण भूवन की रक्षा करती है। ये दोनों परस्पर न मिलने वाली विशाल और विस्तृत हैं।

ये दोनों (अत्याधिक स्वाभिमान युक्त और सुन्दर हैं) पिता इन दोनों को सौन्दर्य से धक देश है।

प्रकृति ने चारों और सौन्दर्य है, ईश्वर ने चारों और प्रकृति का सौन्दर्य विख्यात है। स्थान-स्थान पर पर्वत हैं। नदियों का जल विचार है।

पृथ्वी पर सर्वत्र हरितिमा का सामान्य है, वन है,उपवन हैं।

तदान है, सब प्रकृति की छटा के अंग हैं। इन सब की समावेश पर्यावरण है। पर्यावरण के क्षरण से प्राणियों की हानि है। इसी लिए

तो वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण के विभिन्न रूपों को देवता के रूप में

स्वीकार किया है।
वाचु- ढाविनो वाती वात आ सिन्धोया परावतः।

dक्षं ते अन्य आ वातु परावयो वातु यद्रपः।।2।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।

तवं हि विश्वभोजजो देवानां दूत ईयसे।।3।।

आ त्वागमं शंतातिष्ठितं अश्टिष्ठतानन्दिणि।

dक्षं ते भद्रामाभाप्ष्ट पर यक्षमं सुवायि ते।।4।।

आप इत्या उ भेषजीरायो अमावन्दातन्त्रो।

आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृपावन्तु भेषजः।।5।।

ऋग्वेदं।।10-134 पृथ्वी सूक्त

अथवेदं के ज्ञादश काण्ड में भूमि सूक्त संकलित हैं। इस सूक्त में 62 मंत्र हैं। इसमें पृथ्वी के समब्र ऐश्वयों विशेषताओं एवं विभूतियों का वर्णन है।

एक ऋषि कहता है-
गाता भूगि: पुनरोहन्त्व प्रारंभत्या।

भूगि गोरी गो है, जै उसका पुत्र है। यह सूचना राष्ट्रीयता की दृष्टि से प्रमाणण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। यह धारा पृथ्वी विभिन्न संपत्ति औषधियों को धारण करने चाहती है।

वाण्य वीर्या औषधीयां विभिन्न पृथ्वीविना: प्रथता साध्यतामण।

पृथ्वी के स्वरूप के वर्णन में कुछ मात्र उद्देश्य हैं:

सत्यं वृहद्वृत्तमुखे दीक्षा तपो बहम यज्ञः पृथ्विदी धारणति।

स्स जो भूतस्य भवस्य पत्थुरं लोकं पृथ्विवी जः कृष्णोतु॥१॥

अध्यर्क्षेद द्वादश काण्ड

सत्यं वृहद रूपोऽणं श्रवण्य दीक्षा, तपः, बहम और यज्ञः को पृथ्वी धारण करती है। यह उत्पन्न और उद्देश्यान्तर जीवों की स्वामित्व पृथ्वी हमारे लिए इस लोक का विस्तार करती है।

यस्यं पूर्वं पूर्वपञ्चक्ष्यितकं यस्यं देवता असुदानाभवत्तर्त्वल।

गदानश्चवां वृहस्पति विष्ठा भग्नं वर्णः पृथ्विदी जो दधातु॥१५॥

अध्यर्क्षेद द्वादश काण्ड
जिसमें पहले पूर्व पुरुषों ने विचारण; घूम-टहलन्द्र जिसमें देवों ने अनुभव को प्रत्यावर्तित किया। जायें, अश्वयो, पक्षियों आदि की आधार रूप पृथ्वी हमें भग जा ऐसवय, दर्शन प्रदान किया है।

असंवादम बध्यतो मानवाणां; यस्या उद्यतः प्रवतः समं बहुः

मानाचीयां औषधीयां विभिन्त पृथ्वी वः प्रथतत्ता राध्यतां

जः 1211

अथर्ववेदः द्वादश काण्डः पृथ्वी सूक्तः

यस्यां समुद्र उत्त सिद्धार्थाय यस्याण्य कृदथः संवशुचः

यस्याितं जिन्वति प्राणिवेदज अ नो भूमि: पूवपेये

पथातु 1311

पृथ्वी सूक्तः द्वादश काण्डः अथर्ववेदः

जिसमें बद्धियाँ हैं, समुद्र हैं, जल हैं। जिसमें बद्धियाँ हैं, जिसमें मानव उत्पन्न हुए हैं। जिसके बीततर स्वास लेता हुआ और विचारण करता हुआ प्राणि जगत्र प्रसन्न रहता है। वह भूमि हमें पूर्वपेय के सम्बन्ध में स्थित करे।
विश्वमर्य वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो जीवेशनी।

वैश्वनारं विश्वती शून्यमर्यमन्द्रक्षिप्ष्या दरियों नो दिरातु। 16।।

यह पृथ्वी, विश्वमर्य सत्त्वका पोषण करने वाली है। वसुधानी
विद्याओं को धारण करने वाली है। यह जीवों की प्रतिष्ठाज्ञा आधार
रूप है। यह हिरण्यवक्षा

स्वर्णिभ उरोज वाली है। जगतोविवोधनीज़ा जगत को विश्वास
देने वाली है। वैश्वनार अभिज्ञ को धारण करने वाली है इन्द्र जिसका
स्वाभाविक है यह पृथ्वी हमें धन-धार्मिक से स्थिरत करे।

वस्त्रासाप: परिचारः समाजीरोहानो अप्रनादं क्षरत्रित।

सा नो शून्यमर्यमिधारः पधो दुहामयो उष्कतु वर्षसा। 1।।

जिसमें जल समान रूप से विघटकील है और दिन-रात विना
प्रवास किये बहते रहते हैं। अनेक जल धाराओं वाली शून्यि हमारे
लिए पवसा दूध और जल का दोहन करे और वर्षस (कांति) से
अभिसिंधित करें।

इन्द्रो यां च आत्महेतजात्रां श्रद्धापति:।

सा नो शून्यिनि सृजनां माता पुष्पम में पयः।।10।।
शरीरीति इन्द्र ने जिसको अपने लिए भिन्न युक्त बनाया। वह भूमि हमारे लिए उसी प्रकार पयस का सृजन करे जैसे माता पुत्र के लिए पयस; दुःख तो सृजन करती है।

. वर्ष कृष्णा रोहिणी विश्वरुपा था। भूमि पृथिवीमिन्द्रगापाम्।

अजीतोहतो अक्षतोधवय्यां पृथिवीमहें। 11।।

हे पृथिवी। तुनहारे मिरि सभूप वर्ष युक्त एवं हिमयुक्त रहे।
तुनहारे अरण्य सुफ़ाकर हो। में वर्ष; भूरिंद्र वर्णा, कुल्ल वर्णा विश्वरुपा रिष्ठर धृष्टा; रिष्ठर विस्वस्त फैली हुई इन्द्र झारा रक्षिता भूमि पर अविष्ट आधार सहित और अक्षत होकर, में पृथ्वी पर स्थित रहें।

यत ते मध्य पृथिवी यथा राधा वास्त उज्ज्वल वंशक्षेत्र संबिन्धूः।

तासु नो शेहयाबि न: यवस्त माता भूमि: प्रमो अहम पृथिव्या:।

प्रज्ञयः पिता स उ नः पिपर्त।।12।।

हे पृथिवी। जो तुनहारा मध्य भाग है, जो तुनहारा नाबि स्थान है, जो तुनहारे उज्ज्वस्त; वल्लत युक्त है, शरीर से उत्पन्न है, उन स्थानों
पर हमें स्थापित करो। हमारे लिए वायु को प्रवाहित करों। भूमि मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूं। पर्वत (अथ) हमारे पिता है, वह हमें कष्ट से पार लगायें।

यस्ते गन्धः पृथ्विदी संवध्वू म्य विश्वर्योधयो यमावः ।

यं गन्धार्ज अपसरसश्च भैजिरे तेन मा सुरशिं कृणु मा जो

द्रिक्षत कश्चन। । । ।

हे पृथ्वी! जो तुनहरी सुणवध उत्तप्त है जिसे औषधियियों धारण करती हैं। जिसे जल धारण करते हैं, जिसे गन्धार्ज एवं अपसराओं गे प्राप्त किया, उस गन्ध से मुझे सुणवधित करो। मुझसे कोई देब न करे।

शिला भूमिरश्च पांसु: सा भूमि: संवध्वा हृद्वह।

तस्ये हिरण्यवक्षसे पृथिविच्या अर्ज्यार्जं नमः । । । ।

शिला भूमि पापाण पांसु; धूलिवः इन स्वर्गसे भूमि धारण की गयी है। उस स्वर्णिये उरोज वाली पृथ्वी को प्रशान करता हूं।

यस्यां वृक्षा वाणस्पत्या धूलामिच्छिष्टविश्वद्वाः।

पृथिवी विश्वान्यासं धृतानि चतुर्दासिः। । । ।
जिसमें वनस्पतियों जातीय वृक्ष प्रतिदिन रिश्वर रूप से रिश्वर है। उस विष्क का पोषण करने वाली, धारण करने वाली पृथ्वी को स्तवजन करता है।

व्रीणस्ते भूमे वर्षाणि शरद्येमन्तः शिष्थिरो वसन्तः ।

ऋतवरस्ते विहिता हायकरिहाराचे पृथिवी जो हुहातान्। ॥36॥

हे भूमे! व्रीणि शरद शिष्र हेमन्त वसन्त से चुकत तुम्हारे वर्ष हैं। वार्षिक अंतु , तुम्हे अंतु विहित हैं।रात- दिन विहित है। हे पृथिवी तुम्हारे लिए दोहण करें।

यस्मां गायत्रि वृत्यवति भूम्यां मत्या व्योलिः।

मध्यन्ते यस्मानाकाण्डे यस्मां बदलि दुःशुकः।

सा जो भूमि: प्र पुदतां सपलाभस्पल्लि ना पृथिवी
कृष्णोत्। ॥41॥

जिस भूमि पर मानव जाखते,जाते,एवं चुक्र करते हैं और जिस पर निवास करने वाली दुःशुक बजती है। वह भूमि हमारे शत्रुओं को दूर कर दे। पृथिवी हमें शत्रु रहित बना दे।
ये त आरण्यः पशवो मृणा चने हितः व्याघः पुरुषाद्वेशवरक्ति।

उल्लं यूकं पृथिवीं दुःखुः जाति तक्षीकं रक्षे अपवाध्यास्नात्। 149।

हे पृथ्वी! जो दुःखहारे अरण्य पशु हैं, जो बन में रिस्थत पशु है, जो नरभक्षी सिंह और व्याघ विचरण कर रहे हैं। उन उल्लं यूक को हिंसेशुका, दुःखाविना राक्षसों को हमसे दूर करे।

या रक्षक्यस्वप्त विश्वदानी देवा भूमि पृथिवीमनव्रगाधयम्।

सा नो मधु प्रियं दुःखनधों उक्षतु वर्षसा। 17।

जिस विश्व दायिनी अतिविश्वसने भूमि को न साने बाले, देवतालोक प्रभाद रहित होकर रक्षा करते हैं। वह हमें प्रिय मधु का दोहन करें और वर्षस; कालिक ग्राहे अभिविचित करें।

रस्या हदयं परमे व्यैगिकस्तयेनावृतमङ्गृतं पृथिव्यः।

सा नो भूमिस्तिथ्यां बलं राष्ट्रे ददातुलने। 18।
जिस पृथिवी का हदय परम व्योम है अर्थात पर्यावरण में।
इसका अमृत तत्व सत्य से ठहर गया है। वह शून्य में उलझा राख ने में
दृश्य; तेजथ्र प्रदान करे।

तमेच पृथिवी पाँच च्व भागो वेत्तन ज्योतिर्गृह मत्वेभ्य उधव्यूर्यो
रसिमभिग्लातनोति।।।

हे पृथ्वी! गानव तुर्गों से उत्पत्ति हुए हैं। तुर्गारे उपर ही
विचरण करते हैं, तुर्ग मो घर पाले और चार घर पालो को धारण
करती है। आपों की पञ्च जातियों तुर्गारी हैं। जिनके लिए उदित
होता हुआ सूर्य अमृत ज्योति का पिन्चन (फलना) करता है।

विश्वस्यं मातामोपाध्यायं शुचं पृथिवीं धर्मणा धृताम।

शिवां स्वयोगान्यु चरमं विश्ववह।।।

समस्य ओंखश्चियों की नाता धृता प्रभिता प्राकृतिक नियमों से
धारण की गयी, शिवा कल्याणकारी शियोगानायुक्तः प्रतिदिन हन
पर विचरण करें।
भूमे उन सबको मुझमें संयुक्त करो। मुझसे कोई खेल न करे।

दस्यामण्ड्र ब्रीहित्यदी दस्या हमारा: प्र-च कृष्टः।।

भुज्ये पर्यायत्त जमोस्तुते वर्षनेद्वसे।।42।।

जिसमें ब्रीहि यज आदि अज्जिन है। जिसमें ये आयतों की पौंच
जातियाँ हैं। उस वर्ष से आदर्शवर्जन्य की पतली भूमि को लिए नक्सकार
है।

विनिधि विश्वती बहुधा गुहा वसु मणि हिरण्य पृथ्वी ददातु में।

वसुवि ने वसुवा रासमाना देवी ददातु ददातु में।

बहुधा विधि को धारण करने वाली पृथ्वी हमें
गुह्यवधन,मणि,हिरण्य प्रदानं करे। धन दायनी सोमवस्तु धनप्रदा
सोमवस्तु भाव गुहता देवी पृथ्वी हमें धन दें।

जनं विश्वती बहुधाविचारं गाणाधननिष्ठं पृथ्वी वधाक्षसम।

सहस्रं धात्र द्विवस्तु में दुहान धरेव धेनुर्परपुरुषती।।45।।
विविध भाषाओं वाले विविध धर्मों वाले यथा विवास स्थान
स्थित जनाओं

को बहुधा धारण करने वाली पृथिवी धन की सहस्र धाराओं
को मेरे लिए दोहन करें। जैसे सिध्दर न हिलने-हुलने वाली दुःख का
दोहन करती है।

ये यामा यदवण्व या: सभा अधि भूभाम्।

ये संधामा: सतितयस्तेशु चारु बदेग ते। 156।

जो याम है, अरण्य है और पृथ्वी पर जो जन सभायें हैं। जो
संधाम है जो तुम्हारी समिटियों हैं उनमें हम मधुर शब्द बोलें।

भूमि सूक्त का ऋषि अर्थवा की कामना है- या विश्वति बहुधा
प्राणदबूजद सालोभूमि: गोसु अषि अन्ने ददातु। जो श्वसन (प्राणन)
करते हुए गतिशील प्राणियों को धारण करती है। वह भूमि हमें
पशुओं के मध्य और अन्य के मध्य स्थित करें।

वह भूमि अविद्या है,माता है,बहुधा विभाबासं जनं विश्वती-
विविध भाषा भाषी जन धारणि है। नामाध्यमा जनधारापति - विविध
धर्मों को धारण करने वाली है। गवाम अश्वलां दयसार्य विषया-
गायों, अश्वों और पक्षियों को आश्रय प्रदान करती है। यह विश्वभरा है, वसुधार्मी है, प्रतिष्ठा है, हिरण्यवक्ष है।

जगतों द्विवेशनी त्र विश्राम दायनी है।

विश्वरुपा, शुचा, कृष्णा, रोहणी है। यह औपज्जनी माता है, ड्रिपद चतुष्पद-धारणी, धर्मणाधृता है, शिवा और स्वयं है, विश्वछाया है, विभूतिव्यक्ति क्षणा है, उर्जा पूर्ण विश्वती त्र शक्ति और पोषक तत्व धारणी है, प्रतिशीतस्वी है, यह पर्यन्त पल्ली है, वसुध तुम्मस्य व्यमाना रासमाना है, यह वरहेण सविधाना, वरह झारा रक्षिता है। वर्षणध्रुता त्र वृद्धि से आपृता है,

प्रथमाना है, यद्यवनी है, सुरभिमवी, गंधमवी है, कामदुहा है, जनाना आयपवनी है, पृथिवी इन्द्रपुरा है, इन्द्रभूषणा है, जाना दीर्घा-पूर्णी धारिणी है, प्राणदेवताप्रणी धारिणी है। यह प्रिय है, यह मधु दुहाय है, त्यह कारणी है, वर्षस से अभिभिव-चेनकारियः है। यह भूरिदारापव चत है, अभिभ मासा है।

अष्ट भूमि विरुसज्जता माता पुनःर्म में पयः कह कर कामना क्षुद्र है। 'माता भूमि पुनः धुषिव: कह कर अभिभववन क्षुद्र है। न: प्रजा संदुहतामृ समधावाच: मधु देकि पहनमु कहकर प्राध्यना क्षुद्र है।
जरदारि: पृष्ठची ना कणोत, प्राणामागुर्दशातु सर्वसंज्ञ: \\

प्रृष्ठदरि तुल मा सुरभि कृण, वस्त्रमवः पुरुषेणु, स्त्रीषु तेन मा 
सुरभिवं कृणु उदीर्णव उतासीवासितवः प्रकरमतः \\

पद्भा दक्षिण सत्याब्धा मा स्थिधानं हभ्यानु ।

यही ऋषि की कामना है।

' शुद्ध जा आपातस्तवे क्षर्णु' यह भी कामना है।

'स्वरूपि भूमे जो भय ना विद्वन् परिपरिपिरिन्' यह भी 
कामनाकृति है।' मा हिस्सिस्तवः भूमे सर्वस्य विनितियरि ' यह कामना 
है।

'बन्ते भूमे विश्वनिभि श्विंवं तदप्रोहवतः-

हे भूमे। तुम्हारे जिन्स को उखाता हूँ, नहीं यथे और उन्हें,

'भाते मर्म विवृतिदरि मा ते हदयमृतियम्'

- तो मर्म स्थल को, हदय को जा कुचले, यह ऋषि का उदात्त 
भाव है, ऋषि का यह कथन पर्यावरण का सार है। उसकी आल्मा है,
समगरस: सप्त है, वही त्रत है, त्रत सत्ता है और त्रत सत्ता का प्रमाण है।

जल

ऋग्भदेव में, वरुण का जल का शास्त्र बताया गया है उन्होंने ही सरिताओं को प्रवाहित किया है। ये सरिताएं वरुण के त्रत का अनुश्रुमन करती हुई सत्ता प्रवाहित होती रहती है।

प्र सीमादिव्यो असुमुक्तिर्भक्ति । त्रतं सिंधुदा वरुणस्य यन्त्रैः

प श्राम्यं लिङ्ग य वे म-चन्द्यर्ये । । । ।

ऋग्भदेव(2-28-4)

वरुण की गाथा के बल से ही सरिताएं, दीव गति से समुद्र में गिरकर भी उसे भर नहीं पाती। वरुण और नदी सरिताओं के मित्र हैं। ऋग्भादिक साहित्य से वरुण का तादाल्य समुद्र से भी स्थापित किया जा सकता है क्योंकि ऋग्भदेव में एक जगह आया है कि सातों नदियों वरुण के गुरुधा में गिरती हैं। वस्तुता: अंतरिक्षस्थ जल से भी संबंधित होता है।
गनुष्यों के सत्य और अनृत का अवेक्षण करते हुए स्वच्छ एवं मधु वर्षाने वाले वरुण जल में विचरण करते हैं। वरुण के वेशभूषा जल है। वरुण और भित्र उन देवताओं में से हैं जो जल बरसाते हैं।

वरुण (बादल की) गम्भीर से घुलोक,पृथ्वी और अंतरिक्ष में पानी फिलहाल हैं।।।

1. नीचीज्यादारं वरुणः कबनथं प्र सरसंज सोदसी अन्तरिक्षम् /क्र05-85-3

संभवतः सतिल एवं वर्षा के साथ सम्बन्ध होने को कारण वरुण को विघटक के पौंचे काण्ड में घुलोकस्थ एवं अन्तरिक्षस्थ देवताओं में निवास करता है। त्रिवेद में वरुण को बौद्ध वास्तव का जीवाणुक के देवता माना गया है। इससे रुपरेखा होता है कि त्रिवेदक काल में जल को देवता के रूप में माना गया है। यह उसकी पर्यावरणीय उपादेयता के कारण ही था।

सारे जीव जन्तुओं तथा मनुष्यों का जीवन जल के बिना शुद्ध है। संसार की सभी चीजें जल से ही बनी हैं। जल के बिना न तो कोई जीवधारी जीवित रह सकता है। न तो कोई वजनपति। आदि कालीन भारत अपना निवास स्थान वहीं बनाया जहाँ जल के स्रोत उपलब्ध थे। बड़ी-बड़ी सम्बन्धताएं नदियों के किनारे ही विकसित हुई।
जल जीवन का आधार है। जीवन की प्रत्येक किया में जल भाग लेता है, शरीर का दो तिहाई भाग किसी न किसी रूप में जल से निर्मित है। इस पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी पदार्थों का 75% जल ही है चाहे वो फल हों, पौधे हों या अन्य प्राणी। प्रत्येक प्राणी को अपनी जीविता के लिए जल की आवश्यकता होती है। और इस पृथ्वी पर जल का आधिक्य है। जल पर्यावरण का प्रमुख घटक होता है। इसीलिए प्राचीन काल से आज तक इसके संरक्षण की बात कही गई है तथा जल ही जीवन है कहकर इसकी महत्ता सिख ली गई है।

इससे संरक्षण की बात कही गयी है तथा हमारे पौराणिक धर्मवाच्यों में जल देवता के रूप में जल पूजा का विधान है। पुराणों में तो जल संरक्षण तथा तालाबों आदि के निर्माण का अति पुण्य कार्य वताया गया है।

पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जितना पुण्य करोड़ों अश्वमेध यज्ञ करने से प्राप्त होता है। उताना पुण्य मात्र एक तालाब बनवाने से होता है।

ऋग्वेद से लेकर आज तक जल के साहित्य में जल को देवता के रूप में माना गया है। पुराणों में तो जल संरक्षण तथा तालाबों
आदि के निमित्त को अति पुण्य कार्य बतलाया गया है क्योंकि जितना पुण्य करोड़ो अवश्य जल को करने पर होता है, उतना पुण्य मात्र एक तालाब बनवाने से होता है, इससे जल की महत्ता सिद्ध हो जाती है। ऋग्भुद में तो जल को देवता रूप माना गया है तथा जल के उपर बहुत से सूरत लिखे गये हैं।

समुद्र जल राशि का अगाध स्रोत है अतः इसके विषय में लिखा गया है।

समुद्रज्येष्ठ: सलिलस्य मध्यात्म्याया चक्षुचिनिविश्बान्या। ।

इन्द्रो या वच्चे बृषभो रशद ता आपो देवीरिद्ध मामवन्धु।।।।।

वशिष्ठो मेन्त्रावरुणिः आपं त्रिपुष सातवं मं-49

समुद्र जिनका अनुज न है, ऐसी पवित्र करने वाली, विश्वास न करने वाली जल देवियों जिनके शक्तिशाली बङ्गुरुष इन्द्र नेक्षोजा है। वे मेहरी रक्षा करें।

या आपो दिल्ल्या उत व सवन्ति सन्तनिः उत वा या:

स्वयंज्ञा: ।

समुदार्था या: सुचयः पादकास्ता आपो देवीरिद्ध मामवन्धु।।।।

वशिष्ठो मेन्त्रावरुणिः आपं त्रिपुष जल 55 सातवं मं-49
जो आकाशीय जल है अथवा जो खोदी गई नदियों के जल हैं
अथवा जो स्वयंभू जल है, जो शुद्ध हैं और निर्मल हैं। वे जलदेवियों
में रहें रक्षा करें।

यासु राजा वरुणे, यासु सोमे विष्णु देवा यासुर्ज मन्दित।

वैश्वानरो व्यस्तनिर्धारितो प्रियविक्ष्टता आपो देवीरिह नामवन्तु। 14।।

वशिष्ठे मैत्रेयरुणः आपः त्रिषुप सातवः मं-०४९
जिन जलों का राजा यरुम है, जिनमें सोना स्थित है, जिसमें स्थित संग्रह देव उर्म से हरित हैं जिनमें वैश्वात अभिक्रिया हैं वे जल देवियों ने मेरी रक्षा करें।

उपरोक्त वैदिक सूत्रों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन ऋषि जल की शुद्धता के प्रति कितने सचेत थे। उनका जलीय पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण बड़ा ही विस्तृत था। इसीलिए इन्होंने जल के देवी भाषा कर अपनी रक्षा के लिए आह्वाहन किया है।

अभिज्ञ पुराण के सातदशोष्ठाय: श्लोक सं 7 में आया है कि ईश्वर ने सूर्य के निमित्त सर्वप्रथम जल की सूचि की है:

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूच:।

अथवा तस्य ता: पूर्वे ते नारायण: स्मृतः।।

जल से ही सूचि विश्वामिरिता धर्म की उत्पत्ति हुई। जल के शुद्ध रक्षण के लिए सर्दियों सभी पुराणों में चर्चा हुई है क्योंकि शुद्ध जल पीने से किसी भी प्रकार का रोग नहीं होता है। जैसा कि वर्तमान समय की विज्ञान रिपोर्ट भी यह वताती है कि 80% बीमारी प्रदूषित जल से होती है।
अतः पुराणों के समय में जल प्रदूषण न होते हुए भी जल पर विशेष ध्यान दिया गया है। मार्कण्डेय पुराण के ३१ वें अध्याय में कहा गया है कि-

नाप्नु मूृं पुरीशं वा निषीदं न समाचरेऽ। १२५।।

अर्थात जल में किसी भी प्रकार की गंदगी न करने का पुराणों में निर्देश दिया गया है। जल की महत्ता की वजह से वर्ण का देवताओं की कोटि में विशेष स्थान प्राप्त हुआ है क्योंकि जल पर्यावरण का प्रमुख अंग होता है और जल से ही समस्त जीवस्थापन तथा अन्न उत्पादित होता है।

जल, दया तथा दोस्ती हृदयों रूपों में पाया जाता है। तीनों रूपों का पर्यावरणीय संतुलन के लिए सामाजिक समृद्धि जरूरी है। वर्तमान समय में विशेष के साथ जो ग्लोबल वार्मिंग के बारे में जो बातें उठ रही है वह जल के इसी भायावह रूप की कल्पना की गई है क्योंकि वातावरण जब गर्म होगा तब उस अवस्था में जल का ठोस रूप पिपलेगा जिससे समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा जिससे समुद्र के किनारे के कई देश जलमण्डल होकर अपना अविनाश समाप्त कर देगे। जो मानवता ही इसी पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने वाले जीव जंतु तथा वनस्पतियों भी नष्ट हो जाएंगी। तथा इसी प्रकार वैज्ञानिक जल भी बादल के रूप में भयानक वर्षा करने लगने तो भी
समस्त जीव जाति तथा वनस्पतियों का अस्तित्व खतरे में आ जायगा।
आज तक जो धर्मयज्ञों में प्रलय के विषय में अवधारणा भिड़ती है
वह जल प्रलय की ही भिड़ती है। अतः सृष्टि के विवाह में जल की
अवधारणा को स्वीकार किया गया है।

जब सृष्टि का सबसे भयंकर तथा सबसे सुन्दर रूप जल है तो
इसे स्वच्छ बनाए रखना मानवता का प्रथम कर्तव्य है इन्हीं सब
कारणों से हमारे समस्त धर्मयज्ञों में जल को देवी तथा देवताओं के
रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

पर्जन्य (मेघ)

पर्जन्य वादल का रूप होता है। यह भी जल का एक स्रोत है।
कुश धातु का अर्थ है आर्द्र करणा। कुश का एक रूप स्प्रिंकल
(sprinkle) या आर्द्र भी है। पर्जन्य धातु कुश धातु से निर्मित है।
पर्जन्य वैदिक देवताओं में महत्वपूर्ण है। यह सृष्टि का देवता है।
पर्जन्य पर समस्त प्रकृति की सल्ला विभार है यह सृष्टिक पद है।
वृष्टि से ही यह जल वनस्पतियों तथा अभूतपूर्वों की उत्पत्ति संभव है।
जल जीवन है इसलिए मेघ जीवन पद है। गृह धातु का अर्थ है
घृषणा, अंबोजी में यह move है। इसी से मोटीवेट(motivate),
न्यूटेट (mutate), मोमन्ट (moment), रिमोट (remote),
डिमोट (demote), प्रमोट (promote) आदि पद है।

जल रूप के साथ, जल को लेकर धूमने के कारण भेद को जीवनृत्त = जीवन दिया गया है। नदी, समुद्र, जलाशय की सत्ता भेद या परजन्य पर विशेष रहता है। इतना ही नहीं कृषि व्यापार पशु-पालन सारे कार्यों में जल संबंधित मूल में है।

मंडूकों को भेद (परजन्य) का दूत कहा गया है। इसीलिए इस संदर्भ में ऋग्वेद के 7वें मण्डल का 103वें सूत्र में मंडूकों की स्तुति है-

‘देवरिति जुगुपुर्द्रादशश्रुण तत्रु नटो न प्र मितन्त्यते’

‘संवत्स्रो प्राकृत्याण्वतायं तत्ता धर्मा अश्सुत्तो विसर्गम।।’

इस संवत्सर- बारहवे-मास- के बारे में देवों द्वारा निर्धारित लिखन को उन्होंने पूरा पालन किया है। ये -मंडूक रूपी - पुरुष निश्चित समय का अतिक्रमण नहीं करते। वर्ष के निश्चित समय में वर्षा काल के प्रारंभ होने पर ये-मंडूक रूपी- संततित धर्म-ताप- ग्रहण होने का अनुभव लेते हैं।
वैदिक परंपरा का विकासवन वामीण परंपरा में विकास माना है। अनुवृत्ति के समय वर्ष होने के लिए गोविण्ड में बालक मन्नूक वनकर आदर्श की हुई भूमि में लोटते-पाटते हैं। और ऐसा माना जाता है कि उसी किया से वृद्धि होती है। इसे कलौंदी कहते हैं। वायु पर्वतन्य का मित्र है। पर्वतन्य वायु रूप सर्वाधि चाहन पर आउठ होकर सर्वत्र भ्रमण करता है।
वन एवं पर्यावरण

ऋग्वेद के दशम गण्डल का 146वाँ सूर्य अरण्य देवता अरण्यानी को समर्पित है।

अरण्यानी अरण्य की अधिकारी देवी है यह भगवान रहित है समस्त पशु पक्षी अपने अपने विविध शब्दों में इन्हीं का स्तवन करते हैं। महुष्ठ भी परम शान्ति तथा भौतिक ज्ञान के लिए अरण्यानी की शरण लेता है। अरण्यानी वनस्पति पशु-पक्षिकों की माता कहीं गयी है। यह अपने सम्पत्तियों का भरण पूर्ण करती है।

अरण्यान्यरण्यान्यासी या प्रेय नवयसि।

कथा धामं ज पृष्ठसि ज त्या भीरवि नविन्दति॥ ११॥

ऋग्वेद 10 मण्डल [10-146-1]

हे अरण्यानी जो तुम गुप्त हो जाती हो (देखते ही देखते अचानक) वह तुम गौर्व की (गौर्व के नार्गु) ही पूंछीतंत्र कहों नहीं करती। तुम्हे भय तो मानो सपश्च ही नहीं कर सकता है।

वृपाखाय बदते यदुपावति धिचिचिकः ।

आधारं भिराधि धार्यावलब्धारण्यान्यिन्द्रियते॥ १२॥

ऋग्वेद दशम मण्डल[10-146-2]
जिस समय महान शब्द करने वाले वृपख का मानो किंकिणियों के ताल पर दोझाकर चित्तिक्ष लाख देता है। उस समय औरण्याली की महानता रूपदस्य प्रतीत होती है।

उत गावहवालन्तुत वैश्वेच दृश्यन्ते ।

उतो अरण्यालं सायं शक्तीरिव सर्वति।।3।।

सद्यवेद दशम गण्डल [10 - 146 - 3]

भाजो गावें हि [दूरी पर] चर रही है और भाजो [दूर कहीं] कोई एकाध गृह दृष्टिपत्र भें आता है। और शाम के समय वह औरण्याली भाजो छोटी - मोटी गाड़ियों को [भर कर गोंड के पास] छोड़ रही है।

गाभेरो आ हदयाति दार्शणिपे अपावर्धातु।।

वस्तकरण्यान्यं सायंकुशसदिति मन्यते।।4।।

सद्यवेद दशम गण्डल [10 - 146 - 4]
[ यह देखो] हदर कोई अपनी जाय को [ लोट आने के लिए] बुला रहा है। दूसरे किसी ने सचमुच युक्त की सुखी शाखा [लकड़ी] नीचे लिए है। [इस जानवरविधि] आभासों की अदभुतता लेकर] सांग के समय अरण्यों में वास करने को विश्व हुआ, कोई मनुष्य [सहायता के लिए दूसरा कोई पुरुष] आकर्षण कर रहा है। ऐसा नामता है।

वा वा अरण्यालिङ्गक्तप्रसंगश्रेणाभिमुख्यति ।

स्वादोऽह्वः जन्याय यथाकामं नि पयते।। 15 ।।

ऋग्वेद दशम मण्डल [10-146-5]

सचमुच देखा जाय तो यदि दूसरा कोई व्यापारिक हिंस्र पशु इस प्रकार सारे के समय अरण्यालि में वास करने वाले मनुष्य पर आकर्षण न करेगा तो स्वयं अरण्यालि उसका बाल - बौँका नहीं होने वेती। इतना ही किंतु[ उसमें उपलब्ध होने वाले] मधुर मनोहर फलों का आस्थाद लेकर वह मनुष्य अपनी हिफ्फ से, आराम से पड़ रहता है।

आंधनागम्यं सुराधिं वहन्यामकूलापाम् ।

प्राह मृगायां गृहमन्यालिङ्गसिन्हासिपत् ।। 6 ।।

ऋग्वेद दशम मण्डल[ 10-146-6]
(इस प्रकार) चारों ओर से अंजन जैसे सुगन्ध से परिपूर्ण आकर्षक किसान का हरत रंगर जा होते हुए भी दिखा अनंतधार्म च से समपल्ल वन्य पशुओं की यह माता जो अरण्याली उसकी नैनें प्रशंसा की है।

यक्ष्यमली भवति वन्नदीपुर यदोपधीक्षोऽ परिज्ञाते विषम् ।

विश्वे देवा विरितस्वुल सुवन्नु मां पडेन रपसा विददत्तसुर। 16।।

संगम के बृक्ष पर अथवा जंदियों में दिखाई देने वाला या वनस्पतियों से पैदा होने वाले उस विपरीत को सभी देवता यहाँ से हटा दें। वह रंगने वाला कीड़ा मेरे पैर के घाव से मुझ पर हावी न हो। पुराणों में वन, उपवन आदि के विषय में प्रचुर सागरी मिलती है। अत्यन्त विद्वा की दृष्टि से जिसका अध्ययन आपेक्षित है। इस प्रसंग में वन सम्बन्धी विचारनों का एक संकलन है।

वन के पर्याय - वन के लिए कई अन्य विशिष्ट शब्द भी पुराणों में प्रयुक्त होते हैं ।1।

वन के लिए अर्थी(स्कन्दो,कैदरो,33/148), उधान (भागवतो 5/16/15), काजन(स्कन्दो सेतु 17/153) आदि शब्द आए हैं। महावन (वायु 38/78), वन का अलकवक्ष (वायु ), वनक्षण(वायु038/70), वंजिका(वायु 31/1-2), आकीक्र (वायु 42/79-81) तथा वन उपवन भी प्रयुक्त हुए हैं। वन के लिए ‘गहन’ शब्द भी पुराणों में आया है। (लिंगो 1/29/5)
वन और काशी दो दूसरे के पर्यायवाची भी हैं क्योंकि आनन्दवान (काशी) के लिए 'आनन्दकाशी' शब्द को प्रयोग पुराणों में आया है। यथा - 'संशेलवन - कालना मेदिनी' (1)

अतः इनमें कुछ भेद दीया पड़ता है। यह स्पष्ट भी है। अरण्य और वन का समानार्थक प्रयोग भी है। क्योंकि 'वृन्दावन' के लिए 'वृन्दारण्य' प्रयोग मिलता है। उसी प्रकार जिसको वेदारण्य कहा गया (2) उसको वेदकाशी भी माना गया है। (3) वन के लिए वलिका शब्द भी पुराणों में आया है। (4) इस स्थल से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वलिकाशुद्रवन वन है।

उदाहरण भी वन के लिए आया है। काशी के लिए जैसे आनन्द-वन का प्रयोग है, उसी प्रकार 'विश्वेश्वरोपान' शब्द भी मतलब पुराण में वाराणसी में आया है।

1. (मल्लय 1/29)

2. (स्वर्णो सेतु 7/45)

3. (स्वर्णो सेतु 17/13)

4. (अशोक वलिका- मल्लय 31/1-2)
इस प्रकार ‘आकोडवान’ (1) ‘मृगयाबावन’ (2) आदि शब्द भी पुराणों में है। स्कंदपुराण में ‘वनत्रय’ और ‘अत्वन’ की पृथक उपयुक्त वस्तु है। (3) वायुपुराण में वन के चारों ओर ‘काणन’ की बात आई है। (4) जिससे यह सुरक्षित होता है कि वन बहुत गहना जंगल है और काणन उस घने इंजल के चारों ओर का असाधारण वन है। पर यह अर्थ अभी विवादास्पद है। वायु में ‘स्थली मनो- हरा तत्व नव- विभूषिता’। (5) कहा गया है। यदि स्थली का ठीक स्वरूप दिखात हो जाए, तो वन का स्वरूप भी अधिकार स्पष्ट होगा।

कभी- कभी ‘वन’ शब्द मूल नाम में पृथक रूप से और कभी जीव नीति ही लगाया है। ‘वृंदावन’ इसका एक उदाहरण है। विष्णुपुराण में एक स्थल पर ‘वृंदावन वन’ ऐसा कहा गया है। (6) यह शब्द की तरह ही प्रसिद्ध हो जाता है। (वृंदावन का वन, यह अर्थ लुत सा होकर ‘वृंदावन’ पुरा एक बवयवार्थ- निरपेक्ष नामक वन बन जाता है।) तब ‘वृंदावन नामक वन’ इस अर्थ में वृंदावन ऐसा कहना पड़ता है। वनों के नाम संज्ञा कहलाते हैं। यथा - इशुवण व्यक्तवण, आयवण,कार्यवण, खादिर- वण,पीयूशवण इत्यादि।

(1) (मतस्व पुराण अवन्ती क्षेत्र 44/27)

(2) (मतस्व पुराण अवन्ती क्षेत्र 50/9)

(2) (स्कंद पुराण 6/189/13,16) (4) (वायु पुराण 38/29)

(5) (वायु पुराण 38/67) (6) (वायु पुराण 5/25/4)
इन नियमों के उदाहरण पुराणों में मिलते हैं। यथा-आवचण (1)

यहाँ गत्व हुआ है।

देवदारुण (2) वातिक बल से गत्व नहीं हुआ।

शरदण (3) यहाँ गत्व हुआ है।

आवचण विष्णु एक विशिष्ट बल का नाम है, चाहे उसने आम्बूक्ष कब हो या अधिक हो या न हो। ‘आवचण ’कहा कहा जाएगा तब उसका अर्थ होगा आम्बूक्ष का कोई भी बल।

वनों का नामकरण-

वनों के नामकरण के विपर्य में एक सामान्य नियम यह था कि जिस बल में किसी महापुरुष ने तप किया। उस बल का नाम उसके पुण्य नाम से पड़ जाता था। उदाहरणार्थ-

(1) (मार्कोण्डेयो 104/27)/29) (2) (वायु 77/91)

(3) वायु 55/18, वायु 72/32)
'अदितिवन' को लिया जा सकता है। इसका नाम 'अदितिवन' पढ़ गया। इसी प्रकार आपके के बन को 'आपकर' कहा गया। 1/ मधुकुजन का नाम बिर भी मधुकुजन के वासस्थान के कारण पढ़ गया था। 2/ इस नामकरण 'त्यपदेशिणी भूरस्त्राळ' - इस व्याक्ति से ही किया गया है। 3/ यह स्पष्ट है।

वृक्षप्राधान्य के अनुसार भी बनों का नामकरण किया गया है।

जैसे - आग्रावन 151, पघलवन 161, दिल्लव किन्नर, कुरुक्षेत्र वन 1151, हिन्दी वन 101, हिमालय मुंगवन 111, राजघनवन को जाना गया था। 121, रेवत पर्वतस्थ रेवतोधान 1113, पुस्करस्त्रीस्थ पुकारपथ 1141, कुरुक्षेत्र वन 1151।

(1) (वागन 34/12) (2) (सतय 43/41/42, वागु 94/43/45)

(3) (विष्णु 1/12/3) (4) (वागु 94/43-44)

(5) (सार्केंडेशय 104/20-22) (6) (वागु 37/6)

(7) (वागु 37/9) (8) (वागु 28/29)

(9) (वागु 38/68-69) (10) (समूह 22/172)

(11) (सार्केंडेशय 54/273) (12) (गुरृय 1/83/1, वागु 108/73)

(13) (विष्णु 5/36/12) (14) (वागन 65/31)

(15) (वागन 27/12)
वन का तीर्थरूप - वन को 'तीर्थ', 'क्षेत्र', 'पुण्यायतन' आदि के रूप में भी माना गया है। भारत का यह उदार दृष्टिकोण 'वनमहोत्सव' करने वाले सज्जनों को भी मान्यता होना चाहिए। कुछ पुण्यवनों के नाम वहाँ दिए जा रहे हैं।

गुरुदिशालय (जो कामरूप में है) को एक सिद्ध क्षेत्र कहा गया है। गाथुवन-एक तीर्थ। देवदारुवन को श्रावन- योग्य स्थान। और तीर्थ भी कहा गया है। देवीपारण्य एक तीर्थ भी है। यह तो सर्वत्र कहा गया है। पंचवन को श्रावन- योग्य स्थल माना गया है। गणधारण्य एक तीर्थ है। सिद्धवन भी तीर्थ है।

कुछ वनों को अन्य वनों की अपेक्षा अधिक पुण्य-जनक माना जाता है। जैसे वागनपुराण में नन्दनवन के विषय में कहा गया है- 'वनजूपु पुण्यजूपु हि नन्दनवयस्'। पुराणकार की दृष्टि में नन्दनवन की श्रेष्ठता कसौं है, यह विचारार्थ है। इस वन का सम्बन्ध देव से है, यह झालत्व है।

<table>
<thead>
<tr>
<th>(1)</th>
<th>(मार्कण्डेयो109/57-58)</th>
<th>(2)</th>
<th>(कूर्म0उत्तरार्थ 37/38)</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>(3)</td>
<td>(वायु77/91)</td>
<td>(4)</td>
<td>(कूर्म02/37/53)</td>
</tr>
<tr>
<td>(5)</td>
<td>(वायु77/99)</td>
<td>(6)</td>
<td>(कूर्म0 2/37/9)</td>
</tr>
<tr>
<td>(7)</td>
<td>(मात्स्य0 22/55)</td>
<td>(8)</td>
<td>(12/48)</td>
</tr>
</tbody>
</table>
इतना ही नहीं, अधिष्ठित देव के अनुसार वन का विशेषण भी दिया गया है।जैसे शरणवंच के लिए रैद(रुद्र अर्थात् शिव से सम्बंधित) विशेषण का प्रयोग।

वन को तीर्थ के अग्निविशेष की तरह भी माना गया है।स्कंदपुराण में कहा गया है कि कोई तीर्थ श्रमण है।कोई उसर है, पर यह महाकलिवंच तीर्थ एकाधार में श्रमण, उसर, क्षेत्र, पीठ और वन भी है।

वन ने अधिष्ठित देव - कुछ ऐसे भी वन हैं जिनमें किसी देव आदि का अधिष्ठान या स्थान पुराणकारों ने माना है। इसलिए इन वनों को बहुत पवित्र भी माना जाता था। यथा-

दण्डक्षण - वनराज(देव का अधिष्ठान)।

देवदारास्वल - दार्शन के महादेवातार का सिंह।

माधवतन - सुवन्धा देवी का सिंह।

(1) (यामजन 57/15) (2) (अवनति 1/40-42)

(3) (यामजन 90/26) (4) (लिंगज 24/101)

(5) (मत्स्य 13/37)
राधा का अधिपत्त 111
धन(देव) का अधिपत्त 121
महादेव के शिखराणी अवतार का स्थान 131
सूर्य देव का अधिपत्त 141
महादेवावतार अवतार का अधिपत्त 151
शिवस्थान 161
शिवस्थान 171
शिव स्थान 181
महायोग का अधिपत्त 191

(1) (मार्कण्डेय013/38) (2) (वामन090/32)
(3) (लिङ्ग01/24/88) (4) (वामन090/31)
(5) (लिङ्ग01/24/56) (6) (स्कन्द0अरुण015/58)
(7) (स्कन्द0अरुण015/78) (8) (स्कन्द0अरुण015/53)
(9) (वामन030/24)
वनों का वर्णन- अनेक प्रसिद्ध वनों का सच्चापर्व गुरुस में उपलब्ध होता है।

बहुव्यवधानवल वन 111- यहाँ जल और जल तूण प्रचुर मात्रा में है।

भीम देवदारुणा 12। इसी प्रकार सुनंदा पर्वत के एक हिरण जिसे पास अवश्यकता किसी वन के वर्णन में स्कन्द पुराण में कहा गया है।
- ' यहाँ के सभी कामलं उत्कृष्ट मृणवालशिवस्थ से आमोदित है। यहाँ के लोकपुरी रहताप्यास है। ये सिद्ध विपिन- विद्याधा- यहाँ के साहसिक हैं। और विद्याधा विद्याधा के कण्ठद्वार से विगतित हैं।

परिष्ठत वन के विशेषण में 'रुक्मी' (सुर्वर्णवर्णवाला) शब्द आया है। 14। रुक्मी को भी रुक्मी कहा गया है |शिव को ज्योतिषिक कारण। 15। दिव्यहाणिस्थल वन वर्णन, विलोलण ब्रह्मां और चम्पकवन का वर्णन 16। भी दर्शन है।

(1) (स्कन्द,अवनलीक्रेन्त056/20) (2) (बल्ला0117/4)

(3) (अवनली क्रेन्त01/15/16) (4) (बायु0112/35)

(5) (चामल057/19) (6) (बायु03710)
शक्ति पर 'शुरूं शक्ति नाम चित्रण पुष्पितपादपन'।।कहा गया है।

किशुक वन के विशेष ने वायु ने उसके गन्ध की प्रशंसा की है-'वस्त्र गन्धनिश्च दिन्येन वायुवते परिमंडलम्।'। ही मिलता है।

वन में घटित विशिष्ट घटनाएं- पुराणों में ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण है, जो वनों में घटित हुई थी। नीचे कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख मात्र किया जा रहा है। पूर्ण विवरण तत्त्व-तत्त्व स्थलों में दर्जतव है।

अत्याचार चैत्रस्वर्ण में फुरुवा ने उर्दशी के साथ विहार किया था।। अशोक वणिका में व्यावसायि ने द्रूपदवर्ती की पुत्री को रखा था।। उमा वन में राजा सुधाकर स्त्री में परिणित हुए थे।।

(1) (वायु पुराण 72/32)  (2) (वायु पुराण 38/39)

(3) (विष्णु04/6/29;वायु091/68)

(4) (महाभरत031/1/2)  (5)(वायु085/25/28)
वण्डकवण की धलना तो राजावर्ण में प्रसिद्ध ही है। खैतवन सम्बन्धी घटना भी गहाभारत में प्रसिद्ध है। नौगिपारण्य में कई बार विशाल बजान अनुविष्ट हुआ था, यह पुराण प्रसिद्ध है। महाभारत में भी इसका उल्लेख है-‘नौगिपारण्ये शीनकर्त्त्य पुलपते। ढादशवारिौँके सवे’ 11।

इसमें पर्यायवाची शब्दों का भी व्यवहार भिलता है। जैसा उचाचुल 12। को स्कन्दपुराण में गौरीवल कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है। 3। इसका कारण रूप है।

वन विचार के प्रसंग में वृक्ष और पुष्प पर भी विचार होना चाहिए। पुराणों में स्थान-स्थान पर इन दोनों की सूची दी हुई है। यथा 74 वृक्षों की सूची। 14। इत्यादि।

वनों की संख्या- पुराणों में प्रायः किसी-किसी विशेष स्थानों से सम्बन्धित पर्वत, नदी आदि की संख्या भी दी गयी है। इस विषय में ‘अपोल्लरगहाशीला: तथापितवर्धत्ता: 15।

(1) (आदि) 1/1
(2) (वायु 85/25-28)
(3) (1/3/6/81)
(4) (प्रभाष क्षेत्र 327/2-11, 196/15 से कुछ श्लोक इत्यादि)
(5) (वायु 942/81)
कह कर महाशेलों और पर्वतों की संख्या सूप्त कर दिया गया है। स्कन्दपुराण में भी नदी संख्या पर ‘सहस्रविशालविश्वेष्य पद्मसताब तवेश्च’ 1/1 कहा गया है। उसी प्रकार प्रत्येक वर्ष (ढीपों का खण्ड में) कितने नदी, पर्वत, आदि हैं। उनकी संख्या भी पुराणान्तर गत भुवनकोशों में दी हुई है। वन के विपय में यथापि इस प्रकार प्रतित्रिपान्तर्गत संख्या नहीं मिलती।

नन्दन, चेत्रथ, वेष्टात और सर्वतोऽभ्र यह भागवत 12/31 की ऐसी गणना दुर्लभ है।

अरविन्द=पुकराव्य, नैमिन्ताव्य और धमराव्य 13/1, वनन्त्रय=

न्द्रावण, ख्वाण्डण और त्रैवण।

(6) (कुमारिका 11/50)

(7) (5/16/15 भागवत पुराण)

(8) (स्कन्द 06/189/13)
पूर्वांचारों की गणना इस प्रकार थी-

'सौंदर्यं दण्डकारणम् जम्बूमार्गव च पुष्करम्

नैनिषं उत्सालारण्यमारण्यं नैनिषं कुसुमादगलनं

हेमदन्तुद कृष्ण नवारण्य: प्रकीर्तिताः \( \ldots \)

वन के विषय में पौराणिक विद्वेश- इसमें भौगोलिक तथ्य भी दिए रहते हैं। जिसमें वन सम्बन्धि इस प्रकार के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

वागौस्वरपोवनम्- गरुंडा क्षेत्र के गर्गक्षित तीर्थ के पास है।

तपोवन में ही आता है।

पुष्प्यश्लित्तम्- यह कुसुमक्षेत्र के अन्तर्गत है। 12 कुसुमक्षेत्रान्तर्गत अन्य अनेक वनों का भौगोलिक विवरण तामसपुराण में है।

अरविन्दवन- गयास्य मुण्डपूर्षपाद पर्वतको ऊपर3।

1. गलस्वर 191/83
2. वामना 34/5
3. गलस्वर 1/86/5
काम्यकर्तन- इसकी पूर्व दिशा में एक छूट्टा था इतनी छोटी वात भी पुराण में दी गयी है।

चाम्पककर्तन- गुरुड़ पुराण में इसकी स्थिति के विषय में कहा गया है।

"गयाश्रीपद दक्षिणात्मक महानगाथिक परिश्रेणित श्लूतं चाम्पककर्तन तनत्त पाण्डु शिलातिर्थ हि।" के दक्षिण ओर पश्चिम में यह वन है यहाँ पाण्डुशिला है।

महाकालकर्तन- यह अवक्रिक्षेत्र है। इसका परिणाम एक योजना है। यहाँ स्कंदपुराणानंद्रण अवक्रिक्षेत्र महालय के आरम्भ में कहा गया है।

देवतन- सरस्वती नदी यहाँ प्रवाहित है।

शर्मवन- हिमवतपूर्ण पर यह वन है।

बद्धारण्य- गयाश्रीपद नदी के पश्चिम में है।

---

1. वाराणसी 42/1  2. वाराणसी 32/4
3. कूर्मा 1/14/26  4. गुरुड़ 1/83/40
शरवण- उदयन्ति संयों हो तथा शतयोंजन परिणाम युक्त।

वागवलन- दायु पुराण में कहा गया है-

कौशिकोधासा समुदायु गड़ा.गाया.स्तदलक्तरभ।

अञ्जनस्येवनगूलरस्य प्राच्या वागवलन तु तद्।।

सुप्रतीकवत्व- उत्तरायु वर्ण विवेकरस्य गड़ा.गायायादतियों चयत गंगोदभेदतृभुषण करुणेश्व: सुप्रतीकवत्व तत् वनः।वहैं इस वन की उत्तर दक्षिण दिशा से समविधित विवेक गंगा का नाम भी है।

कर्नमाधवन के चारों ओर जो वन हैं, उसके लिए 'समन्तायोजनस्य तदवलन परिपूर्ण कहा गया है। गोलाकार के कारण देयादिव न कहकर परिधि नाम का कहा गया है।

1. दायु वन 57/15

2. दायु 69/241

3. दायु 38/7
पुराणों में उद्धृत विषयक अवधारणा

विशेषकार से ही इस देश के लोकमान्य से वृक्ष पर असाधारण श्रद्धा की दृष्टि रही है। और वहाँ के विद्वानों वृक्षों को चेतन भावना उनका लालन पालन करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते है। वे 'वृक्ष' की लोकीकरण उपादेयता ही नहीं समझते, बल्कि वृक्षों पर पूजन दृष्टि भी रखते है। पुराणों में इस विषय के विशेष सागर की सुरक्षित है। वृक्षों की उपादेयता-अनुपादेयता, कोण वृक्ष छोटनी पौधा है कोण बड़ी है, वृक्षों से लोकीकरण लाभ-हानि प्राप्ति विषयों पर इन बातों में जो मत गिलते हैं, परिक्षण-पूर्वक उन मतों की उपयुक्तता को जानकर उनका यथा सम्भव उपयोग करना चाहिए। यहाँ इस विषय में एक सामान्य विचार अपेक्षित है- 

वृक्ष की सृष्टि और उसका गुरूयत्व-

भारतीय दृष्टि में वृक्ष चेतन जीव है। इसमें आचार्यों में मतभेद नहीं है। पुराणों के सृष्टि प्रक्रिया में वृक्षों का निर्माण को 'मुख्य सृष्टि'कहा गया है। व्रजानंद पुराण में इस विषय का विवरण इस प्रकार बताया है- 

स्वर्तस्तंगसा चैत्य वीणज्ञकमालतावृतः। 
हिन्दुश्वाप्रकाशतः किः संह एवं च।।
स्वर्तस्तंगसा चैत्य वीणज्ञकमालतावृतः। 
हिन्दुश्वाप्रकाशतः किः संह एवं च।।
स्वर्तस्तंगसा चैत्य वीणज्ञकमालतावृतः। 
हिन्दुश्वाप्रकाशतः किः संह एवं च।।

व्रजानंद पुराण '1/5/33-34'

इस श्लोक से पता चलता है कि वृक्ष वह चेतन प्राणी है जो तान्त्रिक अजात से बाह्य: आता है वह प्राणी अन्तर में ज्ञानवान है। वृक्ष को इस लिए 'संवृतात्मा' कहा जाता है इसका दूसरा नाम 'मुख्य' है।

यह प्रक्रिया कृत्रिम. 1/7/3-5, वाण. 6/38-40 है।

इस प्रसंग में विश्वपुराण का उल्लेख भी आवश्यक है। वहाँ कहा गया है कि उद्धव (स्थावर) सर्व पाँच भागों में विभक्त है तथा यह प्रतिवधान है। (से कोन हूँ ऐसा ज्ञान वृक्षों में नहीं है। शब्दादि वाहिक प्रक्षेप एवं सूर्योदय आकांक्षा विशाल में यह प्राणी ज्ञान सूक्ष्म है।

संवृतात्मा भूल चर्चाव। श्लोक इस प्रकार है- 

प्रज्ञाधारिततः: सागर ध्यायतोत्स प्रतिबोधवादान्
बहिरज्जोत्स प्रकाशश्च संबृतात्मा जगालमकं:
मुख्या जगा यत्शोभयं मुख्यसरस्तरस्रस्तरत्वम्।।

विष्णु पुराण (1/5/6-7)
श्रीधर स्वामी कहते हैं कि ‘बुक-गुल्म-लता-चीरुल-तूफ’ यह पाँच स्थायी के भेद हैं। स्वामी ने यह सूचना दी है कि पर्वतों की सूची बुक्षकों से पहले हुई थी।

इस विषय में भावन्त का वाक्य भी दश्तव्य है- सततमी गुल्म सर्वस्तु प्रविधि स्वस्थ्युषां चयः।
बजरप्त्योपाधितलात्यक्षसरा वीरुथो दुमा।
उत्तरात्सस्तस्म: प्राया अन्तर्पशाविशेषिण:।।

भाग्यत पुराण 3/10/18-20

स्थायर सूचि को गुल्म इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह ‘गुल्मित्र गुल्मम’ कुः। स्थायर सूचि की प्राथमिकता के आधिच्य पर जड़ वैज्ञानिकों का भी एकमत्य है यह ज्ञात्य है।

उद्देश्य का लक्षण- उद्देश या उद्देश्य का लक्षण है ‘भूसिंगृ उद्देश्य वा उद्देश्य’ जाते उद्देश्यविधितम’ इससे यह स्पष्ट होता है कि बुक्ष जीव है। तथा वे उद्देश्यवाद प्रादूर्भव होते हैं। वस्तुतः एक भी भाव है कि भूसिंगृ या उद्देश्य का श्रेणी जो उच्चता होता है। वह उद्देश्य है। स्थायर उद्देश्य और जगन्म उद्देश के विषय में रत्न प्रभाकर ने कहा है- ‘उद्देश्य उद्देश च जगदम्भः।’

तुः भिक्षु तु पृथ्वी चारिण जापन्ते काल पर्व्यातः।
उद्देश्यान्तिच स्वर्गाक्ष्मेव प्रभाकरातिष्ठतः।।

(महाभारत अनुवादांश पर्व)

चारित्रिक प्राणियों का अन्यतम उद्देश- पुराण में चार प्रकार जावान, अण्डन, स्वदेश तथा उद्देश इन चार प्रकार के प्राणियों में, एक-दूसरे से क्या भेद है, इस पर महाभारत में एक असाधारण उल्लेख आया है- एवं चारित्रिकाः जातिमाला संसूत्य सिद्धत।
स्पष्टाक्षेरिण्यात्मक विशालवृद्धिप्रजेषु वो।।
शरीररप्तस्स - स्पष्टतः स्वदेश्ययथि सिद्धत।
पञ्चभिप्रेक्ष्य - द्रारेजिन्यक्यांविण्यानुसारः।।

(महाभारत अनुवादांश पर्व 227/13-14)

उद्देश्य में आत्मा केवल स्पष्टिक्रिया से अपने को व्यक्त करती है। स्वदेश गांवियों में इसी प्रकार शरीररप्तस्स और रूप से अपने को व्यक्त करती है।

भूसिंगृ और जल के संयोग से उद्देश का ज्ञान होता है। शीत उष्ण के संयोग से स्वदेश प्राणी उत्पन्न होते हैं। क्लेद और बीज के संयोग से अण्डन तथा शुक्र शोषित के संयोग से जावान प्राणी का
जब होता है। यहाँ इन श्लोकों पर विचार करने के लिए स्थान नहीं है। अतः तंत्रविद्वत्व कार दिया गया है।

पुराणों में इन चतुर्विंशत प्राणियों के प्रकारों की गणना है यह गणना किस तथा पर आधार है इसकी उपस्थिति करनी चाहिए। इस विषय में यह श्लोक बहुत ही प्रसिद्ध है।

एकबिशतिक्षणां अंडजाता। परिकीर्तिता।
स्वदेशाश्च तथ्योपयोगतः उद्रोणस्ततः प्रथमान्तः।
जातायुज्ञाश्च तावतो मनुशायाश्च जन्तवः।

महाभारत अनुशासन पवित्र शान्तिः। 184/17

बृक्षों के जीवन में प्रमाण - महाभारत में इस विषय में एक श्लोक है-

सुखमुद्रायोरश्च ग्रहणचिकित्सनेन च विरोहणातृ
जीव पश्यात वृक्षाणां असलतवं न विघृते

अभिज्ञ। 282 अध्याय

यहाँ बृक्षों की सजीवता को शुद्धित से उपस्थितिक किया गया है और आज के वैज्ञानिक इस तथ्य को प्रयोग से भी सिद्ध कर रहे हैं।

मानव शरीर के साथ बृक्षों का आत्मात्म का सादृश्य है। जिससे यह सिद्ध होता है कि जैसे मानव एक चेतन प्राणी है, ठीक उसी प्रकार वृक्ष भी एक चेतन प्राणी है, उसी प्रकार वृक्ष भी एक चेतन जीव है।

पुराणों में वृक्ष-विषय-

वृक्ष विषय पर विचार करना पुराणों का एक प्रमुख विषय है। पुराणों में तो वृक्षद्वंद का प्रकरण भी दिखाया है। ब्रह्मण पुराण में कहा गया है-

"वृक्षाणान् अरोक्षापावाणै। दीर्घानां च हीराजाः। चक्रार्धाराः। अभिज्ञाताः। तथा। व्यङ्गणों तथा। व्यङ्गणों तथा। चक्रार्धाराः। कारणाः। तथाः।

(ब्रह्मण पुराण 1/1/51-52)

यह पुराण विषय सूची में कहा गया है। जिसमें इस विषय की महत्ता सिद्ध होती है।

पौराणिक व्याख्या में वृक्ष विषय पर विशिष्ट बातें है। यह भी इस श्लोक से ज्ञात होता है जो वृक्षद्वंद है-

"यथा च पादपों। मूल-स्थलते-शाखादिसंयुत। च चतुर्विंशति
अध्यात्म प्रक्ष्यिते बीजामययायिनः। ततः।

अध्यात्म प्रतिपादित बीजामययायिनः। च चतुर्विंशति।
प्रभवलित तत्तस्तेष्यो भवत्तयन्ये परे दुमा।
तेऽध पि साक्षाक्षणपक्ष्यकरणापुनाता ग्रिहाय।

(ब्रह्मपुराण 23/32-34)

आधारी मृत्रुवंसस्मादिदुर्गत वृक्ष उत्पन्न होता है। उससे पुनः दुम होता है। बीज से वृक्ष अपने कारण के धर्म का अनुगमन होकर होता है यह यहाँ कहा गया है। इसकी व्याख्या किसी अधिकारी विद्वान को करनी चाहिए।

पुनः इसी दशाल पर कहा गया है-
बीजाद वृक्षप्रतिहोण यथा नाप चयस्तरोऽ
भूतानां भूतसर्वान्य नवारुत्वप्रयाचत्वस्तः।

(ब्रह्मपुराण 23/36)

अर्थात् बीज से वृक्ष के प्रोपेशन होने पर बीज का अपचय नहीं होता।

वृक्ष के भेद-

श्रीमद्वाणिग्नि पुराण नाथ वृक्ष के छ: भेद बताये गये है। यथा वनस्पति, आधिध, लता, त्वक्सार, दीर्घ और दुम। इन सबों के लक्षण इस प्रकार है।

1. वनस्पति- ये पुष्य विना फललित - पुष्य के विना जिसका फल होता है।
2. आधिध- फलपाकान्त = फलपाक होने पर जो मर जाता है।
3. लता= आरोहणप्रेष्ट = जो किसी पर आश्रित रहती है।
4. त्वक्सार = देवेँ, बांस आदि
5. दीर्घ काथिव के कारण जो लता आरोहण पर अपेक्ष हो जाती है।
6. दुम- ये पुष्य: फललित।

उपरोक्त शब्द की व्याख्या महाभारत में भी मिलती है-
वधा- उद्दित्जया: स्थावर प्रोत्तंस्तु: स्तेषां पज्जेवायत्याय:
वृक्ष गुणविवाहातवैवर्ष: त्वक्सारात्मस्तु:।।
देववाक्य- "उद्दित्जया जातयि हल्लेन्द्रिजया: वृक्षः स्तन्धशाक्क्विनादमि।"
गुल्मा: भव्यतः: समूहभविन्योस्तस्यादि: लता: प्रराक्षप्रोहा
लयः: द्राक्षसिद्ध:।।
महाभारत श्रीवर्म 5/18

वृक्ष के पार्श्व विष्णुज -इसमें जो "वृक्षादिभिसीदिष्टिदिष्टि" कहा गया है, वह भेद पौन्त्र क्रकृत का है- वृक्ष, गुल्मा, लता, दीर्घ और दुम।
त्वक्सार में बौंस आदि आते हैं। इन सबों के विशिष्ट लक्षण मिलते
हैं। उद्धि के ये भी अन्य पुराणों में भिन्न हैं। मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है-

‘‘वृक्षेश्वर लता-गुल्म-त्वकसार, तृणजातिकु’’

मार्कण्डेय पुराण 4/19

यह वर्गीकरण फिर कृतार्थ पर किया गया है। इस पर वृक्ष विधान दिवों को विधान करना चाहिए।

वृक्ष सम्बन्धी रूपकालंकार-

वृक्षों के विभिन्न अवयवों को लेकर रूपक अंलकार का प्रयोग पुराणों में अनेक स्थानों पर मिलता है। मार्कण्डेय पुराण में संसार और वृक्ष का एक असाधारण रूपक मिलता है। यथा-

अपमितवंद-पूरोपत्यगोमनमुत्स्कन्धवाच महान।

गुहक्षेत्रंचालकारायः चुन्दकारार्दिप-पल्लवः।।

धनधान्यमहापसो नीककालब्रद्धिः।।

पुष्पवचा चुन्दा-चुन्दा-चुन्दा-चुन्दा चुन्दा-चुन्दा।।

तत्र मुक्ति पथवारंपी नूढसम्पकसोचवः।।

विधित्सा-स्वाभूड, गन्नालांक्ष्यो क्षताः गन्नालांक्ष्यो।।

देवस्तु सत्संग पाण्डवमिको त्रिगध भगवानी।।

छोड़ो विधाकुडारे च नासामान वर्ल्य।।

मार्कण्डेय पुराण 38/8-12

यहाँ अल्प-गूलक महता को तत्क मालकर जो रूपक विख्यात गया है, उसकी चमत्कारिता देखते ही बनती है। यहाँ वृक्ष से सम्बन्धी इन शब्दों का व्यवहार है- अंकुर, स्कन्द, उच्च शाखा, अंबपुष्प, महाफल, सेवं इत्यादि।

विष्णु 3/17/29

एक ऐसा ही दूसरा रूपक महाभारत में मिलता है महाभारत के पर्वों के साथ वृक्षावयवों का रूपक आदि पर्व में दृष्टव्य है।

महाभारत 1/1/88-91

यहाँ वृक्ष सम्बन्धी विज्ञानोयत शब्द मिलते हैं- दीज, मूल, स्कन्द, वितदक, सार, महाशाखा, पलाश इत्यादि। ऐसे स्थल पुराणों में भी है।

वृक्ष रूपी विष्णु-

विष्णु पुराण में विष्णु की स्तुति में कहा गया है-
भी गाव में यह दृष्टि कहाँ-कहाँ दृष्टिगोचर होती है। यह नामयता
अक्षरपुराण के निम्नलिखित श्लोक में प्रतिष्ठात होती है-
तस्मात झुबड़हो दृश्या रोज़ाः श्रेयोऽसिद्धान्तहः
पुज्रदु परिपालकस्व ते पुजा धार्मिकः स्मृतः ।।
उद्योग की तरह उपकार कहाँ मिलेगा? ये अपने पत्र से, पुष्प से,
फल से, छाया से, वृक्ष से और काढ़ से सबका उपकार करते हैं।
पुराणों में ठीक ही कहा गया है-
पुत्र, पुष्प, फल-च्याया-मुल-वृक्ष-दासभिः ।
प्रेमपुपुप्रवृत्ति तारत्म्यिति शितानाकाः ।।

दृश्य की इस उपादेयता के कारण ही दृश्य-सम्बन्धी उत्पादों के
प्रभाव के लिए कुछ उपयोग भी पुराणों में कहे गए हैं। मत्तेय पुराण के
237वें अध्याय में यह विषय आरम्भ है। (अहंताशाली दृश्यपत्रमस्थता
जान) यहाँ कहा गया है कि जब दृश्य का रस स्वतः अधिक क्षरत
होता है, तब अंधी के बिना दृश्य-शाखा गिर पड़ती है। अधकाल में
फल, पुष्प, उत्पन्न होते हैं। तथापि यहीं दृश्य शुष्क हो जाते हैं। उस
परिस्थिति में उन उत्पादों को भान्ति के लिए कोण सा कम नहीं करता
चाहिए। समझदार ज्योतिरिंद गर्ग का इस विषय पर कोई बाध्य था।
विशेष यह प्रकरण लिखा गया है विद्वानुविद्वान अनावृत्ति के प्रतिकार के
लिए भी गर्ग का मत 233 वें अध्याय में दिया गया है।

मत्तेय पुराण के 59 अध्याय में ‘दृश्यत्व’ का विवरण भिन्नता
है। जिसका नामांकन है ‘‘दृश्यमाध्यायविविधिः’ दृश्य प्रतिष्ठा के
अर्थार्थादर्पण जो श्लोक यहाँ कहे गए हैं, उनमें कुछ सत्य का अंश
भी है, यह ज्ञात्वय किया है।

दृश्यारोपण की महिमा के विषय में एक साराख, विवरण
पद्मपुराण में भिन्नता है विद्वान यहाँ की सव वाते धार्मिक सत्य से
कहाँ गयी है। तथापि उनसे कुछ लोकस्मृत ज्ञान भी हो जाता है। यथा
जल के समस्या दृश्यारोपण करते से अधिक फलवान होता है। इस
दृष्टि की सत्यता साधारण दृष्टि से भी ज्ञाती होती है।

मिल्वा, मिन्वा, न्यायोध आदि दृश्य की इस उपकारिता को
देखकर इस पुराण में यह भी कह दिया गया है कि ‘मुखिष्वान’ की
रचना करने वाला स्वर्गस्थान होता है। अतः भी उन कृतिग उन
कृतिग चलनों की महत्त्वी आद्याद्रेष्ठता है। यह विवेक जानने ही है।
पद्मपुराण के यह 18वें संशोधिता गहनीय है कि दृश्य पुराणिन के प्रति
पुज्रदु होते हैं।

‘‘अपुरुषय च पुज्रदु पादपा इह कुष्ठावते’’

प्रसंगतः यह भी ज्ञात्वय है कि कौन दृश्य किस प्रकार से मारे
गाम्यद होता है और उपदेश दृश्य भी किस हेतु कब वर्जनीय होता
है। इसका एक उत्कृष्ट विवरण बझाययात पुराण में भिन्नता है। इस
स्थल का वैज्ञानिक अन्त्यावण आद्याद्रेष्ठ है।
छठा अध्याय
पर्यावरण स्वंत तीर्थमाहात्म्य
पर्यावरण एवं तीर्थमाहात्म्य

भारतीय ऋषियों ने तीर्थ के लिए उन्हीं स्थलों को चुना जहाँ प्रकृति में कुछ विशिष्टता, रमणीयता या सुन्दरता थी, जिससे कि उसका मन संकीर्ण विचारधाराओं के ऊपर उठ सके और अनन्त में अपनी स्थिति का परिचय कर सकें। भारतीय मनीषियों ने तीर्थ स्थल के लिए ऐसे स्थलों का चुनाव किया जो प्रकृति के खुले वातावरण में हो।

इसीलिए भारत के जितने भी तीर्थ स्थल हैं वे सभी पर्यावरण की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि जितने भी तीर्थ स्थल हैं वे सभी जन कोलाहल से दूर प्रकृति के गोद में स्थित हैं। वैसे प्राचीन काल में पर्यावरण की कोई समस्या नहीं थी फिर ऋषिगण इसके प्रति सचेष्ट दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि ऋषिगण नगर से दूर वनों में अपना आश्रय बनाते थे।

उनकी मान्यता थी प्रकृति के नजदीक रह कर शुद्ध वातावरण में ही व्यक्ति अच्छी विधा को अर्जित कर सकता है। जैसा कि वर्तमान विज्ञान भी मानता है कि शुद्ध वातावरण में ही अच्छे मस्तिष्क का विकास होता है। अतः इसीलिए प्राचीन काल में पर्यावरण की समस्या न होते हुए भी पर्यावरण के संरक्षण का विशेष ध्यान दिया गया था।

अतः इसीलिए वर्तमान समय में तीर्थ एवं पर्यावरण विषय अति प्रासंगिक हो उठता है। प्राचीन काल के जितने भी तीर्थस्थल हैं वे नगरीय जीवन से दूर प्रकृति की रमणीक गोद में, कहीं पर्यटक की चोटी पर, कहीं घने जंगलों के बीच अथवा नदी के सुंदर तटों पर स्थित थे। अतः इन तीर्थस्थलों को धार्मिक मान्यताओं से जोड़कर जन सामान्य
के लिए इसे सुलभ बना दिया। जिससे व्यक्ति यहाँ जाकर प्रकृति की मनोरम कृति को समझ सके। तीर्थस्थल प्रकृति संरक्षण के अति महत्वपूर्ण उपादान सिद्ध हुए क्योंकि प्रकृति के मनोरम स्थलों को जैसे नदी, पर्वत तथा बनों में तीर्थस्थल की स्थापना करके उसके ऊपर धर्म का आवरण डाल दिया जिससे जन सामान्य पूजा अर्चन करके प्रकृति के इन मनोरम स्थलों को सुरक्षा प्रदान की। अतः इसीलिए तीर्थस्थल पर्यावरण के अभिनव अंग हो गये। तीर्थस्थल आज नगरों या कस्बों में हो गये इसका मतलब यह नहीं है कि तीर्थों की स्थापना नगरों में की गयी थी। आज के नगरीकरण के वजह से तीर्थस्थलों के पास उनकी प्राकृतिक सुन्दरता पर्यावरण की शुद्धता की वजह से तीर्थों के पास नगरों या कस्बों का विकास संभव हो सका।

अतः जितने भी देवी देवताओं के मन्दिरों की स्थापना प्राचीन काल में की गयी उनसे अधिकांश पर्वों की चोटियों पर या घने जंगलों में या नदियों के किनारे सुरम्य स्थानों पर। प्राचीन मनीषियों की धारणा रही है कि प्रकृति की मनोरम छटा में व्यक्ति के अन्दर अच्छे विचार आते हैं जैसा कि प्राचीन वर्णशास्त्र व्यवस्था के अन्तर्गत जिसमें व्यक्ति अपना बौद्धिक विकास करता था वह था ब्रह्मचर्य आश्रम और वानप्रस्थ था। ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति शिक्षा का अर्जन करता था जो नगरों से दूर घने जंगलों में होता था। जहाँ व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता था। वानप्रस्थ में भी व्यक्ति चिन्तन करता था जो जंगलों में ही होता था। अतः इससे स्पष्ट है कि प्रकृति की छटा में ही शुद्ध पर्यावरण में अवश्यक समाज के लिए उत्कृष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में अपना योगदान प्रदान करते थे।

अतः गृहस्थ जीवन के लिए तीर्थस्थल ही व्यक्ति को शुद्ध वातावरण में ले
जाकर उनके व्यक्तित्व और आध्यात्मिक विकास में योगदान प्रदान करते थे। यदि कहीं कोई सुन्दर रमणीक जन कोलाहल से दूर सुरम्य स्थान है तो पशिचम के लोग वहाँ यात्रियों के लिए होटल निर्माण की बात सोचते, किन्तु वही प्राचीन भारतीय लोग किसी पवित्र तीर्थस्थल के निर्माण की बात सोचते थे।

प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रायः सभी पहलू धर्म से प्रभावित थे। तीर्थ धर्म का विधायक (जोड़ने वाला) था। अतः धर्म के संवर्धन में तीर्थस्थलों का महत्वपूर्ण स्थान है। तीर्थस्थलों की स्थापना प्रायः प्रकृति के गोद में होता था जो शुद्ध और शान्त वातावरण में होता था। अतः जितने भी देवी देवताओं के पूजा स्थल हैं। प्रायः सभी पर्वतों की चोटियों घने जंगलों या नदियों के तट पर स्थित है। अतः इसीलिए भारतीय साहित्य में नादियों को देवी तथा वनों को भी अरण्य देवी के रूप में माना गया था। संभवतः इन प्राकृतिक उपासनाओं को प्रदूषण से बचाने के लिए इनको दैवी रूप में स्वीकार किया गया है। जिससे पर्यावरण को किसी प्रकार की समस्या न हो।

तीर्थयात्रा

सभी धर्मों में कुछ विशिष्ट स्थलों को पवित्रता पर बल दिया गया है और वहाँ जाने के लिए धार्मिक व्यवस्था बतायी गयी है। या उनकी तीर्थयात्रा करने के विषय में प्रशंसा के वचन कहे गये हैं। मुसलमानों के पाँच व्यावहारिक धार्मिक कर्तव्यों में एक है जीवन में कम से कम एक बार हज करना मक्का एवं मदीना जाना जो क्रम से मुहम्मद साहब के जन्म एवं मृत्यु के स्थल है। बौद्धों के चार तीर्थ स्थल हैं; लुम्बिनी (ग्रिमिनदेह), बोधगया, सारनाथ एवं कुशीनारा, जो क्रम से भगवान बुद्ध के जन्म-स्थान सम्बोधि-स्थल (जहाँ उन्होंने पहला धार्मिक उपदेश दिया था) एवं निर्वाण स्थल (जहाँ उनकी मृत्यु हुई)
के नाम से प्रसिद्ध है। ईसाइयों के लिए जेरुसलेम सर्वोच्च पवित्र स्थल है, जहाँ ऐतिहासिक कालों में बड़ी-बड़ी सैनिक तीर्थयात्रायें की गयी थीं।

भारतवर्ष में पवित्र स्थानों ने अति महत्वपूर्ण योगदान किया है। विशाल लम्बी नदियाँ, पर्वत एवं वन सदैव पुण्यग्राम एवं दिव्य स्थल कहे गये हैं। भारतवर्ष ने तीर्थ यात्रा के स्थलों को वहां चुना जहाँ प्रकृति में कुछ विशिष्ट रमणीयता या सुन्दरता थी, जिससे की उसका मन संकीर्ण आवश्यकताओं से ऊपर उठ सके और अन्ततः अपनी स्थिति का परिवर्तन कर सके।

आधुनिक पाश्चात्य लोगों तथा प्राचीन एवं मध्यकाल के भारतीयों के दृष्टिकोण में मौलिक भेद है मौलिक भेद है (जो आजकल अत्यधिक मात्रा में विराजमान है)। यदि कहीं कोई सुन्दर स्थल है तो वहाँ पश्चिम के अधिकांश लोग वहाँ यात्रियों के लिए होटल-निर्माण की बात सोचते, किन्तु वहाँ प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय लोग किसी पवित्र स्थल के निर्माण की बात सोचते थे।

पवित्र अथवा तीर्थ के स्थलों पर देवताओं का निवास रहता है, तथ: इस भावना से उत्पन्न स्पष्ट लाभ एवं विश्वास के कारण प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थों की यात्राओं पर बल दिया है। विष्णुधर्मसूत्र (2/16-17) के अनुसार सामान्य धर्म में निम्न बातें आती हैं - क्षमा, सत्य, दम (मानस संयम), शौच, दान इन्द्रिय-संयम, अहिंसा, गुरुशुशुष्णा, तीर्थयात्रा, दया, आर्जव (ऋजुता) लोभशून्यता, देवब्रह्मण पूजन एवं अनभ्यसूया (ईश्वर से मुक्ति)।

जिस प्रकार मानव शरीर के कुछ अंग, यथा दाहिना हाथ या कर्ण, अन्य अंगों से अपेक्षाकृत पवित्र माने जाते हैं उसी प्रकार पृथिवी के भी कुछ स्थल पवित्र माने जाते
है। तीर्थ तीन कारणों से पवित्र माने जाते हैं - यथा स्थल के कुछ आश्चर्यजनक प्राकृतिक 
विशेषताओं के कारण, या किसी जलीय स्थल की अनोखी रमणीयता के कारण या किसी 
तपःपूर्त ऋषि या मुनि के वहाँ (स्नान करने, तप साधना करने आदि के लिए) रहने के 
कारण। अतः तीर्थ का अर्थ है वह स्थान या स्थल या जलयुक्त स्थान (नदी, प्रपात, 
जलाशय आदि) जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण पुण्यार्जन की भावना को जाग्रत करे। 
इसके लिए किसी आकांक्षित परिस्थिति का होना आवश्यक नहीं हैं।\(^1\) ऐसा भी कहा जाता 
है कि वे स्थल जिन्हें बुद्ध लोगों एवं मुनियों ने तीर्थ की संज्ञा दी, तीर्थ है; जैसा कि अपने 
व्याकरण में पाणिनि ने नदी और वृद्धि जैसे पारंपरिक शब्दों का प्रयोग किया है। स्कन्द. 
(1/2/13/10) ने कहा है कि जहाँ प्राचीनकाल से सत् पुरुष पुण्यार्जन के लिए रहते थे 
वे तीर्थ स्थल हैं। मुख्य बात महान पुरुषों के पास जाना है तीर्थायात्रा करना तो गोण है।\(^2\) 

ऋग्वेद में जलों, सामान्य रूप से सभी नदियों तथा कुछ विख्यात नदियों की 
और श्रद्धा के साथ संकेत किया गया है। उन्हें दैविक शक्तिपूर्ण होने से पूजार्थ माना गया 
है। ऋग्वेद के चार मंत्रों में ऐसा आया है - ‘ता आयो दैवीरिह मामुनुत्’ अर्थात् दैवी 
जल हमारी रक्षा करें। ऐसी कुछ स्तुतियाँ हैं जो देवता स्वरूप जलों को सम्बोधित हैं। वे 
मानव को न केवल शरीर रूप से पवित्र करने वाले कहे गये हैं, प्रत्युत सम्यक मार्ग से 

1. यथा शरीरस्योवेदितः केन्द्रिभेध्यतमाः स्मृतः। तथा पृथिव्या उदद्यतः केलितं पुण्यतमाः 
स्मृतः स्मृतः ॥ प्रभावादस्मुताद भूते सलिलस्य च तेजस्य। परिप्रेमानमुनिनां च तीर्थनां 
पुण्यता स्मृताः ॥ पदम (उत्तर खण्ड २३७/२५-२७) स्कन्द (काशीखण्ड ६/४३-४४); 
नारदीपपुराण (२/६२/४६-४७)।

2. मुख्या पुरुषायात्रा हि तीर्थायात्रानुसंगतः सदृशः समासंक्षिप्ते भूप भूमिभागस्त्योत्त्यिच्छते।। 
स्कन्द (1/2/13/10): यथिः पूर्वत्तमः सदृशः सेवितं धर्मसिद्धं। तद्भ्युष पुण्यतमं 
लोके सन्तासत्यं प्रचक्षते।। स्कन्द (पृथ्वीच. पाणिनिपि १३५)
हटने के फलस्वरूप संचित दोषों एवं पापों से छूटकारा देने के लिए भी उनका आर्थिक किया गया है। तै. सं (2/6/8/3) ने उद्घोष किया है कि सभी देवता जलों में केंद्रित है (आपों वै सर्वा देवता)। अर्थात् (1/33/1) में जलों को शुद्ध एवं पवित्र करने वाला कहा गया है, और सुख देने के लिए उनका आर्थिक किया गया है। 1) ऋ. (10/104/8) में इन्द्र को देवी एवं मनुष्यों के लिए 99 बहती हुई नदियों को लाने वाला कहा गया है। ऋ. (10/64/8) में सात की तिरुगुनी (अर्थात् 21) नदियों की चर्चा है और उसके अगले वाली ऋचा में सरस्वती के सरयू एवं सिन्धु नामक तीन नदियों को देवी एवं माताओं के रूप में उल्लिखित किया गया है। ऋ. (1/32/12, 1/34/8, 1/35/8, 2/12/12, 4/28/1, 8/24/27 एवं 10/43/3) में सात सिन्धुओं का उल्लेख किया गया है। सरस्वती के लिए तीन स्तुतियाँ कहीं गयी है। (ऋ 6/61 तथा 7/95 एवं 96) में इसका उल्लेख हुआ है। ऋ. (7/92/2) में आया है कि केवल सरस्वती ही जो पर्वतों से बहती हुई समुद्र की ओर जाती है, अन्य में ऐसी है जिसने नाहुष की प्रार्थना सुनी और उसे स्वीकार किया। सरस्वती के तटों पर एक राजा तथा कुछ लोग रहते थे। ऋ (7/96/1) में सरस्वती को नदियों में असुर्या (देवी उत्तपति वाली) कहा गया है। ऋ. (2/4/16) में सरस्वती को नदियों और देवियों में श्रेष्ठ कहा गया है। (अभित में नदीतमें देवितमे सरस्वती।) ऋ. (1/3/11-12) ने सरस्वती को प्रशंसा नदी एवं देवी के रूप में, पावक (पवित्र करने वाली) मधुर एवं सत्यपूर्ण शब्दों को कहते हुए वाली, सद्विचारों को जगाने वाली अपनी बाहिर की ओर ध्यान जगाने वाली कहते हुए की हैं।

ऋ. (8/6/28) में सम्भवतः कहा गया है कि पर्वतों की घाटियों एवं नदियों के

1. हिरण्यवर्ण: शुद्ध: पावका यासु जात: सविता यास्वस्विनः। या अर्नि गर्भ दधिरे सुवर्णस्ताम न आप: शं स्योना भवन्तु II अर्थव: (1/33/1)।
संगम पवित्र है। प्राचीन लोगों ने पर्वतों को देव निवास माना है। ऋव में पर्वत को इन्द्र को संयुक्त देवता कहा गया है - हे इन्द्र एवं पर्वत आप लोग हमें (हमारी बुद्धि को) पवित्र कर दें। (ऋव 1/122/3) हे इन्द्र एवं पर्वत, आप दोनों युद्ध में आगे होकर अपने वज्र से सेना लेकर आक्रमण करने वाले को मार डालो। गौतम, बौद्ध, धृष्टिश्वर युद्ध में भी वही सूत्र आया है कि वे स्थान (देश) पुनित है और पाप के नाशक हैं वे हैं पर्वत, नदियाँ, पवित्र सरोवर, तीर्थ-स्थल, ऋषि-निवास गोसाला एवं देवों के मंदिर।

वायु, (77/117) एवं कूम्र पुराण (2/37/49-50) का कथन है कि हिमालय के सभी भाग पुनित हैं, गंगा सभी स्थानों में पुण्य (पवित्र) है; समुद्र में गिरने वाली सभी नदियाँ पवित्र हैं और समुद्र सर्वाधिक पवित्र है।

पद. (भूमि खण्ड 39/46-47) का कथन है कि चाहे सभी नदियाँ चाहे वे प्रामाण्य-विवरणों से या वैदिक धर्म से होकर जाती हैं पुनित है और जहाँ नदियों के तट का कोई तीर्थनाम न हो उसे विष्णुनीतिर हाथ पकड़ना।

हिमाच्छादित पर्वतों, प्राण्याविनी विशाल, नदियों एवं बड़े वनों की सौन्दर्य शोभा एवं गरिमा सभी लोगों के मन को को मुखप कर लेती है और यह सोचने के प्रेरित करती है कि उनमें कोई देवी सता है और ऐसी परिवेश में परमब्रह्म आंशिक रूप में अभिव्यजित रहता है। आधुनिक काल में प्रॉटेस्ट युरोप एवं अमेरिका में कवाचित ही कोई व्यक्ति तीर्थ यात्रा करता हो। हां इसके स्थान पर वहाँ के लोग विश्राम करने, स्वास्थ्य लाभ के लिए, प्राकृतिक शोभा के दर्शनार्थ एवं संकुल जीवन से हटकर खुले वातावरण में भ्रमणार्थ आते-जाते हैं। किन्तु आज भी तीर्थ-स्थान में रोग-निवारणार्थ जाना देखने में आता है। डा. अलेक्सिस कैरेल, जो एक प्रसिद्ध शाय्ल्य-चिकित्सक है एवं नोबेल पुरस्कार-विजेता हैं के ग्रंथ - 'ए जर्नी टू लॉ१डीस' में फ्रांस में स्थित लॉ१डीस में प्रकट हुए चमकक्तस्प के वर्णन से पशिचम के लोगों में तीर्थयात्रा के विषय में एक नयी मनोवृत्ति का प्रादर्शान हुआ है।

ऋ० (10/146/1) में विशाल वन (अरण्यानी) को देवता के रूप में संबोधित किया गया है। वामन पुराण (34/3-5) ने कुरुक्षेत्र के नाथ वनों को पुण्यग्राम एवं पापहारी कहा है, जो ये हैं - काम्यकवन, अदितिवन, व्यावसन, फलकीवन, सूर्यवन, मधुवन एवं पुण्यशीतलवन।

महाभारत एवं पुराणों में तीर्थों की महिमा गायी गई है और उन्हें यज्ञों से बढ़कर माना गया है। वन पर्व (82/13-17) में देवयज्ञों एवं तीर्थयात्राओं से तुलना की गयी है। यज्ञों में बहुत से पात्रों, यज्ञों, संबंध-संबंध युरोहिन्दों का साहययोग, पत्नी की उपस्थिति आदि की आवश्यकता होती है अतः उनका संपादन राजकुमारों एवं धनिक लोगों द्वारा ही

1. तू पुण्यत वनानीह कुरुक्षेत्रस्थ मध्यत: 1 येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहरणि च II काम्यकृंच च वनं पुण्यम्। वामन पुराण (34/3-5)॥
संभव है। निर्धारी विधुरो, असहायों, मित्रविहीनों द्वारा उनका संपादन नहीं है। तीर्थ यात्रा
द्वारा जो पुण्य प्राप्त होते हैं वे अनिष्टोम जैसे यज्ञों द्वारा जिनमें पुरोहित को अधिक
दक्षिणा देनी पड़ती है, प्राप्त नहीं हो सकते अतः तीर्थयात्रा यज्ञों से उतम है।
तीर्थयात्रा
से पूर्ण पुण्य प्राप्त करने के लिए उच्च नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों पर बहुत बल दिया
है। ऐसा कहा गया है - जिनके हाथ, पांव मन, सुसंयत है, जिसे विद्या, तप एवं कर्मिक
प्राप्त है वही तीर्थ यात्रा से पूर्ण फल प्राप्त कर सकता है। जो प्रतिग्रह (दान ग्रहण आदि)
से दूर रहता है जो कुछ मिल जाय उससे संतुष्ट रहता है, एवं अहंकार से रहित है वह
तीर्थफल को प्राप्त करता है। जो अकलक (प्रवचना या कपटाचरण से दूर है) है, निरारम्भ
है, (धन कमाने के उद्देश्यों से निरूत है), लाभवाही (कम खाने वाला) है, जितेन्द्रिय है
और वह भी जो अक्रोधी है, सत्यशील है, दुःखबाल है, अपने समान ही दूसरे को जानने-
मानने वाला है वह तीर्थयात्राओं से पूर्ण फल को प्राप्त करता है।

स्कन्द (काशीखंड 6/3) ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि जिसका शरीर जल से
सितर है उसे केवल इतने से ही स्नान किया हुआ मान सकते हैं जो इन्द्रिया संयम से
सितर है (अर्थात् उसमें दूषा हुआ है), जो पुनीत है, सभी प्रकार के दोषों से मुक्त एवं
कलंकहर्षित है, केवल वही स्नात (स्नान किया हुआ) कहा जा सकता है।

1. अवरोधः तत्कालिनः सामायदेवः, यज्ञस्य कुड़मदेवं ये सामायदेववानव्यान्यायः, एकाग्रम: पत्तीश्रीः
निरूपितः। तत्कालिनः सामायदेवः। मत्स्यपुराण (112/12-15), पथ पुराण (आदिखंड
11/14-17) एवं विष्णुदेवीपुराण (3/273/4-5)।

2. यज्ञस्य हस्तौऽपि च पादीऽपि च मनश्चेव सुसंयतमः। विद्या, तपस्य तीर्थिक्ष मत सतीर्थिक्षसमालते
II नामक श्लोक ब्रह्मा (25/2) एवं अन्न (109/1-2) में आया है।

3. नोदकलिंगात्रास्तु सनात इत्यभिधीयात्। इस सनातो दमस्नातः स बाधुक्षायान्तः
शुचि: II अनुशासन पर्व (108/9)।
आया है - पापकर्म कर लेने पर यदि धीर (वृद्धसंकल्प या बुद्धिमान) श्रद्धावान, जितेन्द्रिय व्यक्ति तीर्थयात्रा करने से शुद्ध हो जाता है तो उसके विषय में क्या कहना जिसके कर्म शुद्ध हैं? किन्तु जो अश्रद्धावान है, पापी है, नातिक है, संशयायत्मा है (अर्थात् तीर्थयात्रा के फलों एवं वहाँ के कृत्यों के प्रति संशय रक्खता है) और जो हेतु ब्रह्मा (व्यर्थ के तरीके में लगा हुआ) है - ये पाँवों तीर्थफलगामी नहीं होते हैं।

1. स्कन्द. (1/1/31/37) का कथन है कि पुनीत स्थान (तीर्थ), यज्ञ एवं दान कलियुग में भवे प्रकार से सम्पादित नहीं हो सकते, किन्तु स्नान हरिनाम स्मरण सभी प्रकार के दोषों से मुक्त है। विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में आया है - जब तीर्थ यात्रा की जाती है तो पापी के पाप कहते हैं, सजजन की धर्मवृद्धि होती है, सभी वर्गों एवं आश्रमों के लोगों को तीर्थफल देता है।

कुछ पुराणों (यथा - स्कन्द, काशीखण्ड - 6 पद्र. उत्तर-खण्ड 237) का कथन है कि भूमि के तीर्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे सदाचार, सुन्दर शी-आचार हैं जिन्हें (आलंकारिक रूप से) मानस तीर्थ कहा जाता है। उनके अनुसार सत्य, क्षमा इंद्रियसंयंभ, दया ऋजुता, दान आत्म-निग्रह, संतोष, ब्रह्मचर्य, मूर्तभावी, ज्ञान, धैर्य तथा तप तीर्थ हैं और तीर्थ सर्वोच्च मनु:शुद्धि है। उनमें यह भी आया है कि जो लोभी, दुष्ट कृत, प्रवंचक, कपटाचारी, विष्णुस्तक्त हैं वे सभी तीर्थों में स्नान करने के उपरान्त भी पापी एवं अपवित्र रहते हैं।

1. तीर्थन्मुनिसरत धीरः श्रद्धानो जितेन्द्रियः। कृत्पापो विशुद्धेत किं पुनः शुभकर्मकृतः।।

2. पापानं पापसमं धर्मवृद्धिस्तया सताम्। विहैयं संविदं तीर्थ तत्स्मातीर्थयो भवेत॥

विष्णुधर्मोत्तर पुराण (3/273/7 एवं 9)।
क्योंकि मछलियाँ जल में जन्म लेती हैं वहीं मर जाती है और स्वर्ग को नहीं जाती, क्योंकि उनके मन पवित्र नहीं होते - यदि मन शुद्ध नहीं है तो दान, यज्ञ, तप, स्वच्छता, तीर्थयात्राएवं विवाह को तीर्थ का पद प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मपुराण (25/4-6) का कथन है कि जो दुष्ट हृदय है वह तीर्थों में स्नान करने से शुद्ध नहीं हो सकता; जिस प्रकार वह पात्र जिसमें सुरा रखी गयी थी, सेकड़ों बार धोने से भी अपवित्र रहता है उसी प्रकार तीर्थ, दान, व्रत, आश्रम उस व्यक्ति को पवित्र नहीं करते, जिसका हृदय दुष्ट हृदय है। जो कपटी होता है जिनकी इंद्रिया असंयमित रहती है। जितेन्द्रिय जहाँ भी कहीं रहें वहीं कुरुक्षेत्र प्रयाग एवं पुज्जर है।

वामन पुराण (43/25) में एक सुन्दर रूपक आया है - आत्मा संयमरूपी जल से एक पूर्ण नदी है, जो सत्य से प्रवाहित है, जिसकाशील ही तट है, और जिसकी लहरें दया हैं; उसी में गोता लगाना चाहिए, अतः करण जल से स्वच्छ नहीं होता। पद. (2/39/56-61) ने तीर्थों के अर्थ एवं परिधि को और अथिक विस्तृत कर दिया है - जहाँ अनिन्होत्र एवं शारी होता है, मन्दिर, वह घर जहाँ वैदिक अध्ययन होता है, गोशाला, वह स्थान जहाँ सोम पीने वाले रहते हैं, वातिकायं, जहाँ अश्वस्थ वृक्ष रहता है जहाँ पुराण पाठ होता है या जहाँ किसी का गुरू रहता है या पतित्रता चारी रहती है या जहाँ पिता एवं योग्य पुत्र का निवास होता है - वे सभी स्थान तीर्थ जैसे पवित्र होते हैं।

1. सत्य तीर्थ क्षमा तीर्थ ।।। तीर्थनामावर्तम तीर्थ विशुद्ध्र रूपसः पुनः।।। जायन्तः च प्रियन्ते च जलेष्वर जलावकः।।। न च गर्भितति ते स्वर्गनिश्चितसः।।। दानभिमया तपः सौंच तीर्थस्वथा शुल्तः तथा।।। स्वर्ग्येतान्यतीर्थिनि यदि भावो n निर्मलः।।। स्कन्द (काशीखण्ड 6/28-45) पद. (उत्तरखण्ड 237/11-28)। मत्स्य (22/80)।

2. आत्मा नदी संयमरूपमं सत्यवाहा शीतलता दयोर्भि: तत्रात्मिषें कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्त्यरामः।। बामनपुराण (43/25)।
अति प्राचीन काल से तीर्थं एवं पुनीत स्थलों का उल्लेख होता आया है। मत्स्यः (110/7) नारदीयः (उत्तरः 63/53-54) एवं पथः (4/89/16-17) वराहः (159/6-7), ब्रह्मः (25/7-8 एवं 175/83) आदि में तीर्थं की संख्या दी गयी है। मत्स्यः का कथन है कि वायु ने घोषित किया है कि तीर्थं की 35 कोटि है जो आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी में पाये जाते हैं और सभी गंगा में अवस्थित माने जाते हैं।

वामन का कथन है कि 35 करोड़ लिंग हैं। ब्रह्मः (25/7-8) का कथन है कि तीर्थं एवं पुनीत स्थलों की इतनी अधिक संख्या है कि उन्हें सौंकड़ों वर्षों में भी नहीं जीना जा सकता है। पथः पुराणः (5वीं खण्डः, 27/78) ने पुष्कर के विषय में लिखा है कि इससे बढ़कर संसार में कोई तीर्थ नहीं है। मत्स्यः (186/11) ने कतिपय तीर्थं की तुलनात्मक पुनीतता का उल्लेख यों किया है - सरस्वती के जल से तीन दिनों के स्नान से पवित्र करता है, यमुना का सात दिनों में, गंगा का जल तत्क्षण, किन्तु नर्मदा का जल केवल दर्शन से ही पवित्र करता है।¹ वाराणसी की प्रशंसित में कुमरः (1/31/64) में आया है कि - वाराणसी से बढ़कर कोई अन्य स्थान नहीं है और न कोई ऐसा होगा ही। वामन पुराण में आया है - चार प्रकार से मुक्ति प्राप्त हो सकती है - ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, छीनकर ले जायी जाती गायों को बचाने में मरण, कुरुक्षेत्र में निवास। जो कुरुक्षेत्र में मार जाते हैं, वे पुनः पृथ्वी पर लौटकर नहीं आते हैं।² काशी में निवास मात्र की इतनी प्रशंसा के विषय में मत्स्यः (181/23) अर्निः (112/3) एवं अन्य पुराणों ने इतना कहा डाला है कि

¹. त्रिभु: सारस्वते तोर्यं सप्ताहनु तु यमुनामुः। संधः पुनाति गांगेयः। दर्शनादेव नार्मदः।।
   पथः (आदिः 13/7), मत्स्यः (186/11)।

². ब्रह्मज्ञानः, गयाश्राद्धः गोप्रेमो मरणों धृष्टं। वासः पुनसं कुरुक्षेत्रे मुक्तिस्तका चतुर्विधं।।
   वामनः (33/8 एवं 16), वायुः (105/16), एवं अर्निः (115/5-6)।
काशी में जाने के उपरान्त व्यक्ति को अपने पैरों को पत्थर से कुचल डालना चाहिए और सदा के लिए काशी में रह जाना चाहिए।

ब्रह्मपुराण ने तीर्थों को चार कोटियों में बाटा है - देव, आसुर (जो गया, बलि जैसे असुरों से संबंधित है), आर्य (अश्विनियों द्वारा संस्थापित) एवं मानुष (आंबवीय, मनु, कुंभ आदि राजाओं द्वारा) जिनमें प्रत्येक अनुवर्ती अपने पूर्ववर्ती से उत्तम है। ब्रह्मपुराण ने विन्ध्य के दक्षिण की छः नदियों और हिमालय से निर्मित छः नदियों को देवतीर्थों में सबसे अधिक पुनीत माना है यथा - गोदावरी, श्रीमारी, तुंगभद्रा, वेणिका, ताजी, पयोणी, भगीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विष्णु एवं विष्णु। इसी प्रकार काशी, पुज्जर, एवं प्रभास देवतीर्थ है।

पुराणों में आया है कि वे ब्रह्माण, क्षत्रिय, वैष्णव शुद्ध जो तीर्थों में स्नान कर लेते हैं, पुनः जन्म नहीं लेते। यह भी कहा गया है कि जो स्री या पुरुष एक भी बार पुज्जर में स्नान करता है वह जन्म से निकल गये पापों से मुक्त हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि स्रियों को भी तीर्थ यात्रा करने का अधिकार था। मल्ला. (184/66-67) ने आगे कहा है कि नाना प्रकार के वर्गों, विवर्गों, चाण्डा एवं भाँति-भाँति रोगों एवं बढ़े हुए पापों से युक्त व्यक्तियों के लिए अविमुक्त क्षेत्र (वाराणसी) सबसे बढ़ी ओपिश्च है। कुम्भ. (13/42-43) वामन. (36/78-79) में आया है - सभी आश्रमों के लोग तीर्थ में स्नान कर कुल की सात पीढ़ियों की रक्षा करते हैं। चारों वर्गों के लोग एवं स्रियों भक्तिपूर्वक स्नान करने से परमोच्छ ध्येय का दर्शन प्राप्त करते हैं। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि ब्रह्मचारी गुरु की आज्ञा या सहमति से तीर्थयात्रा कर सकते हैं, गृहस्थ को अपनी पतिव्रता स्री के साथ

1. अश्मना चरणों हत्वा वसेत्तकाशी न हि त्यजेत्। अशि. (112/3), अविमुक्तं यदा गच्छेदं कलाविकाल पर्ययालं। अश्म चरणों भित्वा तत्वेऽव निध्निं व्रजेत्।। मल्ल. (181/23)।।
तीर्थ यात्रा अवश्य करनी चाहिए, नहीं तो उसे तीर्थ यात्रा का फल नहीं प्राप्त होता है। 

व्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मल्लिंकु, वर्णसंकर, स्त्रियाँ और वे लोग जो संकीर्ण रूप में पापयोनियों 

में पैदा हुए हैं, कीट, चींटी पशु-पक्षी आदि जब अविमुक्त में मरते हैं तो वहाँ वे मानव रूप में जन्म 

लेते हैं तथा अविमुक्त में जो पापी लोग मरते हैं वे नरक में नहीं जाते। 

केवल तीर्थयात्रा एवं तीर्थस्नान से कुछ नहीं होता हद्दय परिवर्तन एवं पापकर्म 

का त्याग परमावश्यक है इस विषय में पुराणों में दो उक्तियाँ हैं: एक उक्ति यह है कि 

पवित्र मन ही वास्तविक तीर्थ है और दूसरी यह है कि घर पर रहकर गृहस्थ धर्म का 

पालन करते रहना तथा वैदिक यज्ञादि का सम्पादन करते रहना तीर्थयात्रा से कहीं अच्छा 

है कृम्। (2/44/20-23) ने इस विषय में ऐसा कहा है कि - जो व्यक्ति अपने धर्मों (कर्त्तव्यों 

को छोड़कर तीर्थयात्रा करता है वह तीर्थयात्रा का फल न इस लोक में पाता है और उस 

लोक में। प्रायश्चिती, विद्युत या यायावर लोग तीर्थयात्रा कर सकते हैं। 

वायु, (110/2-3) में आया है कि गणेश, ग्रहों एवं नक्षत्रों की पूजा के उपरान्त 

व्यक्ति को कार्यों का वेष धारण करना चाहिए अर्थात् उसे लाम की अंगूठी तथा कंगन एवं 

काष्ठ रंग के परिधान धारण करने चाहिए। पद्मपुराण (4/19/22) ने अन्य तीर्थों के 

यात्रियों के लिए भी विशेष परिधान की व्यवस्था दी है। 

तीर्थयात्रा करते समय मुहंड करने के विषय में निबन्धकारों में एक मत नहीं 

है। पद्म एवं स्कन्द ने इसे अनिवार्य माना है। तीर्थयात्रा पर, माता-पिता की 

मृत्यु पर बाल कटाने चाहिए किन्तु अकारण नहीं। तीर्थ चिन्तामणि एवं तीर्थ प्रकाश ने एक 

1. तीर्थोपवासः कर्त्तव्यः शिरसो मुहंडः तथा। शिरोगतानि पापाय याति मुहंडनतो यतः। 

II पजः (उत्तर. 237/45) एवं स्कन्दः (काशीखण्ड 6/65)।
श्लोक उद्धृत किया है - कुरुक्षेत्र, विशाला, (उज्जवलिनी या बदरिका), विरजा (उझीसा की एक
नदी) एवं गाया को छोड़कर सभी तीर्थों में मुण्डन एवं उपवास के कृत्य अवश्य कराने चाहिए।

क्षौर एवं मुण्डन में भेद बताया गया है। प्रथम का अर्थ है सिर्फ सिर के केशों
को बनवाना और दूसरे का अर्थ है दाढ़ी-मूँछ के साथ सिर के केशों को बनवाना। इसी
से नारदीय का कथन है कि सभी धर्मियों ने गाया में भी और क्षौर वर्जित नहीं माना है।
केवल वहाँ मुण्डन वर्जित है गंगा पर, प्रयाग को छोड़कर कहीं भी मुण्डन नहीं होता।

मत्स्य. (106/4-6) का कथन है कि यदि कोई प्रयाग की तीर्थयात्रा बैलागढ़ी में
बैठकर करता है तो वह नरक में गिरता है और उसके पितर तीर्थ पर दिये गये जलर्पण
को ग्रहण नहीं करते, और यदि कोई व्यक्ति ऐश्वर्य या मोह या मूर्खतावश बहान (बैलों
वाला नहीं) पर यात्रा करता है तो उसके सारे प्रयत्न वृथा जाते हैं: अतः तीर्थ यात्री को
बहान आदि पर नहीं जाना चाहिए। बैलागढ़ी से जाने से गोवध अपराध लगता है, घोड़े
पर जाने से तीर्थयात्रा का फल हीं मिलता, मनुष्य द्वारा ढोये जाने पर आधा फल मिलता
है, किन्तु पैदल जाने पर पूर्ण फल की प्राप्ति होती है।

1. मुण्डन चोपवासुश्च सर्वतीर्यवर्यथिः। वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं गयाम्। II
   वायुः। (105/25),। अनन्दं। (115/7) एवं नारदीप।। (उत्तर 62/45)।

2. गयादाविपि देवेशि श्रमश्रूणां वपनं बिना I न क्षौरं मुनिम्भः सर्वनिषद्धं चेति कीर्तिनम्
   II सर्वश्रुणेशचवपनं मुण्डनं तद्वज्जुर्धा।। न क्षौरं मुण्डनं सुश्रुणं कीर्तितं वेदवेदिभिः। II
   नारदीप।। (उत्तर 62/54-55)।

3. प्रयागतीर्थयात्रायि यः प्रयाति नरः प्रयाति नरः वचाचित्तः। बलीवदसभारः। शून्यत्स्यापि यत्फलम्। II
   नरकेष वसते घोरे गवां क्रोधः हि दारुणः। सलिलं न च गृह्यति
   नितरस्तस्य वेदेनं।। II मत्स्य।। (106/4-5 एवं 7)।

4. गोयाने गोवधः प्रोक्तो हवयाने तु निष्फलम्।
   'उपानद्भवः चतुर्थशाश्च गोयाने गोवधादिकम्।। II पपः।। (4/19-27)।
वराह. (165/57-58) ने कहा है कि मधुरा के यात्री को चाहिए कि वह मधुरा में उत्पन्न एवं पालित-पोषित ब्राह्मणों को चारों विद्याकों के स्वपन ब्राह्मण की अपेक्षा वरीयता दे।¹ वायु. (82/26-28), स्कन्द (6/222/23)। वायु. (82/25-27) में आया है जब पुत्र गया जाय तो ब्रह्मा द्वारा प्रकटित ब्राह्मणों को ही आमंत्रित करना चाहिए, वे ब्राह्मण साधारण लोगों से ऊपर (अमानुष) होते हैं जब वे सन्तुष्ट हो जाते हैं तो देवों के साथ पितर भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। उनके कुल, चरित्र, ज्ञान, तप आदि पर ध्यान नहीं देना चाहिए और वे (गयावाल) सम्मानित होते हैं तौ कृत्यकर्त्ता (सम्मान देने वाला) संसार से मुक्ति पाता है।² वायु. (106/73-84), अभिन. (114/33-39) एवं गरुड़. में ऐसा वर्णित है कि जब गयासुर गिर पड़ा और जब उसे विष्णु द्वारा वरदान प्राप्त हो चुके तो उसके उपरान्त ब्रह्मा ने गया के ब्राह्मणों को 55 ग्राम दिये तथा पाँच कोषों तक गयातीर्थ दिया, उन्हें सुनियुक्त घर, कामधेनू गाँवें, कल्यतरु दिये किन्तु यह भी आजादित किया कि वे न तो भिक्षा माँगें और न किसी से दान ग्रहण करें। किन्तु लोभवश ब्राह्मणों ने धर्म (यम) द्वारा सम्पादित यज्ञ में पौरोहित्य किया, यम से दक्षिणायाचना की और उसे ग्रहण कर लिया। इस पर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि वे सदा ऋण में रहेंगे और उनसे कामधेनू, कल्याकृत एवं उपहार छीन लिए। अभिन पुराण (114/37) ने इतना जोड़ दिया है कि ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि वे विधाशून्य होंगे और लालची हो जायेंगे। इस पर गया के ब्राह्मणों ने ब्रह्मा से प्रार्थना

1. चतूर्वेदं परित्यज्य मधुरं पूजयेत्सदा। मधुरायं वेषं विश्वायु हि ते नराध्यात्।। वराहपुराण (165/57-58)

2. यदि पुत्रो गयं गवहेत्तदातिकल्पर्ययात्। ताननेन भोजयेद्विनं ब्रह्मणं श्रवणं ब्रह्मणाः।। अमानुषव्ययं विना। ब्रह्मणं (ब्रह्मणं?) श्रवणं वेषं।। वायु. (82/25-27)
की और अपनी जीविका के लिए किसी साधन की मांग की। ख़ाब्र द्रवीभूत हुए और कहा कि उनकी जीविका का साधन गयातीर्थ होगा जो इस लोक के अन्ततक चलेगा और जो लोग गया में आश्श कर रहे और उनकी पूजा कर रहे वे ख़ाब्र की पूजा का फल पायेगे।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी प्रत्येक में तीर्थ पर जो साहित्य है वह अपेक्षात्या सबसे अधिक है। महाभारत एवं पुराणों में कम से कम 40,000 श्लोक तीर्थों उपतीर्थों एवं उनसे सम्बन्धित किवदंतियों के विषय में प्रमुख तीर्थों के विषय में है, पद्म. के प्रथम पाँचों खण्ड के 3100 श्लोकों में 3182 श्लोक तीर्थों के विषय में है (जिनमें 1400 श्लोक केवल मथुरा के विषय में हैं) मत्स्य. 14002 श्लोकों में 1200 श्लोक तीर्थ-संबंधी है।

गंगा

गंगा पुनरात्मक नदी है और इसके तटों पर हरिद्वार, कनकल, प्रयाग एवं काशी जैसे प्रसिद्ध तीर्थ अवस्थित है।

पुराणों (नारदीय, उत्तराद्ध, अध्याय 38-4-5 एवं 51/1-48, पद्म. 05/60/1-127, अभिन. अध्याय 110; मत्स्य. अध्याय 180-185, पद्म. आदिक्षण्ड, अध्याय 33-37) में गंगा की महत्व एवं पवित्रताकरण के विषय में सौंदर्य प्रशासित जनक श्लोक हैं। स्कन्द. (काशी खण्ड अध्याय 29/17-168) में गंगा के एक सहस्र नामों का उल्लेख है।

पुराणों ने गंगा को मंदाकिनी के रूप में स्वर्ग में, गंगा के रूप में पृथिवी पर और भोगवती के रूप में पाताल में प्रवाहित होते हुए वर्णित किया है। (पद्म. 6/267/47)।
विष्णु आदि पुराणों में गंगा को विष्णु के बाये पैर के अंगूठे से प्रवाहित माना है। कुछ पुराणों में ऐसा आया है कि शिव ने अपनी जटा से गंगा तो सात धाराओं में परिवर्तित कर दिया, जिनमें तीन (नालिनी, हादिनी एवं पावनी) पूर्व की ओर, तीन (सीता, चक्षुस् एवं सिन्धु) पश्चिम की ओर प्रवाहित हुई और सातवीं धारा भगवान राहुल हुई (मल्क्य. (१२१/३८-४१) ब्राह्मण. (२/१८/३९-४१) एवं पव. (१/३/६५-६६))। कूर्म. (१/४६/३०-३१)२ एवं बरह. (अध्याय, ८२, ग्रंथ में) कथन है कि गंगा सर्वप्रथम सीता, अलकनन्दा सुचक्षु एवं भगवा नामक चार विभिन्न धाराओं में बहती थी; अलकनन्दा दक्षिण की ओर बहती है, भारत वर्ष की ओर आती है और सप्तमुखों में होकर समुद्र में गिरती है।

विष्णुपुराण (२/८/१२०-१२१) ने गंगा की प्रशस्तियों की है - जब इसका नाम श्रवण किया जाता है जब कोई इसे दर्शन की अभिलाषा करता है, जब यह देखी जाती है या इसका स्पर्श किया जाता है या जब इसका जल प्रहण किया जाता है या जब कोई इसमें दुबकी लगाता है या जब इसका नाम लिया जाता है या स्तुति की जाती है तो गंगा दिन-प्रति-दिन प्राणियों को पवित्र करती हैं, जब सहस्रों योजन दूर रहने वाले लोग ‘गंगा’ नाम का उच्चारण करते हैं तो जन्मों के एकत्र पाप नष्ट हो जाते हैं।३ भविष्य पुराण में

1. वामपादाम्बुजांगुण्ठनखोलोविनिर्गताम। विष्णोविभवितियां भक्त्या शिरसाहर्षिनिं। धूव: II विष्णुपुराण (२/८/१०९)। नदी सा वैञ्चवी पोक्ता विष्णु पादसमुद्रव्यावा 1 पव. (५/२५१८८)

2. तथवादलकनन्दा च दक्षिणादेवत्य भारतम्। प्रयाति सागरभित्त्या सप्तभेदा द्विजोतमामा:।। कूर्म. (१/४६/३१)

3. शून्याभिन्नार्थी दृष्टा स्पृश्या पीतावगाहिता। या पायवित्त भूतानिकीर्तिता च दिने दिने।। गंगा गंगेत देनिमि योजनानां शालेवपि। स्थिरतरुस्थारितं हस्ति पापं जन्मनवार्जितम्।। विष्णुपुराण (२/८/१२०-१२१):।
भी ऐसा आया है।\(^1\) मत्स्य\(,\) कूर्म\(,\) गरुड\(,\) एवं मत्स्य\(,\) पद\(,\) पुराण का कथन है गंगा में पहुँचना सब स्थानों में सरल है, केवल गंगाधर (हरिवार), प्रयाग, एवं वहाँ जहाँ गंगा समुद्र में गिरती हैं, पहुँचना कठिन है जो लोग वहाँ स्नान करते हैं स्वर्ग जाते हैं और जो लोग यहाँ मर जाते हैं वे पुनः जन्म नहीं पाते।\(^2\) नारदीय पुराण का कथन है कि गंगा सभी स्थानों में दुर्लभ है किन्तु तीन स्थानों पर अत्यन्त दुर्लभ है, वह व्यक्ति जो चाहे अनचाहे गंगा के पास पहुँच जाता है और मर जाता है, स्वर्ग जाता है, नरक नहीं देखता (मत्स्य 107/4)।

कूर्म\(,\) का कथन है कि गंगा वायु पुराण द्वारा पोषित स्वर्ग, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी में स्थित 35 करोड़ पवित्र स्थानों के बराबर है और वह उनका प्रतिनिधित्व करती है।\(^3\) पदपुराण ने प्रश्न किया - बहुत धन के ब्याज वाले यज्ञों एवं कठिन पतों से क्या लाभ जब सुलभ रूप से प्राप्त होने वाली एवं स्वर्ग मूलिका देने वाली गंगा उपस्थित हो। नारदीय पुराण में भी आया है कि आठ अंगों वाले योग, तथा एवं यज्ञों से क्या लाभ? गंगा का निवास इन सभी में उत्तम है।\(^4\) मत्स्य\(,\) के दो श्लोक यहाँ वर्णन करने योग्य है - "पाप करने वाला व्यक्ति  

\begin{enumerate}
\item दर्शनाल्पवानान्तरानान् तथा गंगेति कीर्तिनानात्। समरणादेवं गंगायः सधः पवित्र: प्रभुच्छवते।।
\item भविष्य पुराण (तीर्थधि. पृ. 198, गंगाल्या पृ. 12)।
\item गद्ध्वतिष्ठम् जन्मस्यायनः भुजं जामात्र स्वपन् वतन्त। यः स्मरेन सत्तं गंगा सोऽपि मुच्येत बल्यानात्।।
\item सत्तं सुलभा गंगा त्रिशु थानेनु दुर्लभ। गंगाधरं प्रयागे च गंगानागसास्तमें। तत्र स्नात्वा
\item दिवं याति ये मूलास्तेपुनर्भवतः।। मत्स्या। (106/54), कूर्म (1/37/34), गरुडः (पूर्विक 81/1-2): पदा। (560120)।
\item तित्त्र: काद्योद्वाकदी सी तीर्थानारणवी।। दिवी भुवति: नारदीया च तत्सर्व साहवी
\item स्मृतः।। कूर्म (1/39/8): पदा। (1/47/7), मत्स्या। (102/5)।
\item किं यवीविविदुःकति य तत्पर: चुदकरस:। स्वर्गोपक्र्यादा गंगा सुखसौभाग्यपूर्विताः।।
\item पदा। (5/60/39)। नारदीया। (उत्तर, 38/38)।
\end{enumerate}
भी सहस्रों योजन दूर रहता हुआ गंगा स्मरण मात्र से परम पद प्राप्त करता है। गंगा के नाम-स्मरण एवं उसके दर्शन से व्यक्ति क्रम से पापमुक्त हो जाता है। एवं सुख पाता है, उसमें स्नान करने एवं जलपान करने से वह सात पीढियों तक अपने कुल को पवित्र कर देता है।

वराह पुराण (अध्याय 82) में गंगा की व्युत्पति ‘गंगाता’ जो (पृथ्वी की ओर गयी हो) है पदा। (सृष्टि खण्ड, 60/64-65) ने गंगा के विषय में निम्न मूल मंत्र दिये ‘अओ नमो गंगाये विश्व रूपणेये नारायण्ये नमो नम।

पद्मपुराण (सृष्टि 60/35) में आया है कि विष्णु सभी देवों का प्रतिनिधित्व करते हैं और गंगा विष्णु का। इसमें गंगा की प्रशस्ति इस प्रकार की गयी है - पिता, पति, मित्रों एवं संबंधियों के व्यभिचारी, पतित, दुस्त, चाण्डाल एवं गुरुधाती हो जाने पर या सभी प्रकार के दोषों एवं पापों से संयुक्त होने पर भी क्रम से पुत्र पत्नियाँ, मित्र एवं सम्बन्धी उनका परित्याग कर देते हैं, किन्तु गंगा उन्हें कभी भी परित्यक्त नहीं करती।

नारदीप. (उत्तर, 43/119-120) में आया है कि गंगा के तीर से एक गव्यृति तक क्षेत्र कहलाता है, इसी क्षेत्र सीमा के भीतर रहना चाहिए किन्तु तीर पर नहीं, गंगा तीर पर वास ठीक नहीं है। क्षेत्र सीमा दोनों तीर सीमा से एक योजन तक की होती है अर्थात् प्रत्येक तीर से दो कोस दूर का क्षेत्र विस्तार होता है।

### त्रिस्थली

प्रयाग, काशी एवं गया को त्रिस्थली कहा जाता है।

1. पद्म पुराण (सृष्टि खण्ड, 60/25-26)।
2. तीरादा गव्यृतिमात्रे तु परितः क्षेत्रमुच्यने। तीरं त्यत्तवं द्वस्तक्षेत्रे वीरे वासो न चेष्ट्यने।
   II एकयोजन विस्तीर्णा क्षेत्र सीमा तदबिराह। नारदीप. (43/119-120)।
प्रयाग

स्कन्दपुराण ने प्रयाग के श्रुति कहा है। पुराणों में इसकी प्रशस्ति गायी गयी है
(मत्स्य. अध्याय 103-113 कूर्म. 1/36-39, पद.। अध्याय 40-41; स्कन्द. काशी-खण्ड
अध्याय ४/45-65)) प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है। (मत्स्य. 109/15; स्कन्द. काशीखण्ड,
7/45 एवं पद. 6/23/27-35) जहाँ प्रत्येक श्लोक के अन्त में “स तीर्थराजो जयति प्रयाग:”
आया है। गाथा यों है कि प्रजापति या पितामह (ब्रह्मा) ने यहाँ यज्ञ किया था प्रयाग ब्रह्मा
की वैदिकों में बीच की वेदी है अन्य वैदिकों में उत्तर में कुरुक्षेत्र (जिसे उत्तर वेदी कहा
जाता है) एवं पूर्व में गया। ऐसा विश्वास है कि प्रयाग में तीन नदियाँ मिलती हैं गंगा,
यमुना एवं सरस्वती, मत्स्य. कूर्म आदि पुराणों में आया है कि प्रयाग के दर्शन मात्र से या
इसकी मिट्टी मात्र लगा लेने से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। कूर्म. ने घोषणा की है कि
यह प्रजापति का पवित्र स्थल है जो यहाँ स्नान करते हैं, वे स्वर्ग को जाते हैं और जो
यहाँ मर जाते हैं पुनः जन्म नहीं लेते। यही पुनीत स्थल तीर्थराज है केशव को प्रिय है।
इसी को त्रिवेणी की संज्ञा मिली है।

जगन्नाथपुरी

ब्रह्म. (70/3-4 नारदीय., उत्तर 52/25-26) ने अन्त में कहा है कि - यह
तिगुना सत्य है कि यह (पुरुषोत्तम) क्षेत्र परम महान है और सर्वोच्च तीर्थ है। एक बार
सागर के जल से आफलुत पुरुषोत्तम में आने पर व्यक्ति को पुनः गर्भवास नहीं करना पड़ता
और ऐसा ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने पर भी होता है।

ब्रह्मपुराण (65/15,17 एवं 18) ने श्रेष्ठ की पूर्णिमा पर जगन्नाथ के उल्लेख के
समय स्नान की चर्चा करते हुए लिखा है कि उस समय दुनिया-वादन होता था, बाँसुरी का स्वर गुंजार होता था, वैदिक मंत्रों का पाठ होता था और बरलाम और कृष्ण की प्रतिमाओं के समक्ष चामरधारिणी एवं कुचभार से नम्र सुन्दर वेश्याओं का नर्तन आदि होता था।

नर्मदा

गंगा के उपरान्त भारत की अत्यन्त पुनीत नदियों में नर्मदा एवं गोदावरी के नाम आते हैं।

पुराणों में नर्मदा की चर्चा बहुत हुई है। मत्स्य. (अध्याय, 186-194, 554 श्लोक), पद्म. (आदिखण्ड, अध्याय 13-23, 739 श्लोक), कूर्म. (उत्तरार्ध, अध्याय 40-42, 189 श्लोक) ने नर्मदा की महत्ता एवं उसके तीर्थों का वर्णन किया है। मत्स्य. (194/45) एवं पद्म. (आदि 421/44) में ऐसा आया है कि उस स्थान से जहाँ नर्मदा सागर में मिलती है, अमरकटक पर्वत तक जहाँ से वह निकलती है 10 करोड़ तीर्थ हैं। अन्न. (113/2) एवं कूर्म. (2/40/13) के मत से 60 करोड़ एवं 60 सहस्र तीर्थक्रम से है। नारदीय. (उत्तरार्ध, अध्याय 77) का कथन है नर्मदा के दोनों तटों पर 400 मुख्य तीर्थ हैं। (श्लोक) किन्तु अमरकटक से लेकर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं।

1. मुनिनां वेदशाब्देन मन्त्रशाब्देऽस्तथाप्तः। नानास्तोत्सर्वः पुष्पः समाशब्दोपवृहितः।।
श्यामेऽश्यामजनेश्वचेव कुचभारावनामिभिः। पीतरकामक्षराभिस्च माल्यदामावनामिभिः।।
..... चामरै रत्नलख्षणिव च बीर्य्येऽते राम केशवाः।। ब्रह्म. (65/15, 17 एवं 18)।

2. यद्यपि रेखा एवं नर्मदा सामान्यतः समानार्थक कही जाती है किन्तु भागवत पुराण (5/19/18) ने इन्हें वृक्ष-पुष्प (तापी-रेखा-सुरसा-नदी) कहा है और वामनपुराण का कथन है रेखा विन्ध्य से तथा नर्मदा ऋक्षपाद से निकलती है। साध्वित्रिक्षिणी गदिर्शनीह वायुना। दिविभुव्यन्तिशरीणां च रेखावर्त्तिनी सन्ति च।। नारदीय। (उत्तर 077/27-28)।
गंगा कन्खल में एवं सर्स्वती कुरुक्षेत्र में पवित्र है किन्तु नर्मदा सभी स्थानों पर ग्राम हो या वन नर्मदा केवल दर्शन मात्र से पापी को मुक्त कर देती है, सर्स्वती (तीन दिनों में) तीन स्नानों से, यमुना सात दिनों के स्नानों से और गंगा केवल एक स्नान से (मत्स्य. 186/10-11 = पद्म. आदि, 13/6-7 = कूर्म. 2/40/7-8)।

अमरकंटक पर्वत एक ऐसा तीर्थ है जहाँ ब्रह्महत्या के साथ अन्य पापों का मोचन होता है। इसका विस्तार एक योजना है। (मत्स्य. 189/89)

विष्णु धर्मसूत्र (85/8) ने श्राद्ध योग्य तीर्थों की सूची दी है जिनमें नर्मदा के सभी स्थलों को श्राद्ध के तार कहर घोषित करता है। नर्मदा को रूप के स्वरूप में निकली हुई कहा गया है जैसे इस बात का कवित्वमय प्रकट करता है कि यह अमरकंटक से निकलता है जो महेश्वर एवं उनकी पत्ती का निवास स्थल कहा गया है। (मत्स्य. 188/91)। वायु पुराण (77/32) में ऐसा आया है कि वायुयानों में श्री यमुना के पुली के पुली हैं और इस पर किया गया श्राद्ध अक्षय होता है।(मत्स्य. 188/91)। वायु पुराण (77/32) में ऐसा आया है कि नदियों में श्रेष्ठ पुनीत नर्मदा पितरों की पुत्री है और इस पर किया गया श्राद्ध अक्षय होता है।2 मत्स्य. एवं कूर्म. का कथन है कि यह 100 योजन दूरी एवं दो योजन चौड़ी है।3 मत्स्य. एवं कूर्म. का कथन है कि नर्मदा अमरकंटक से निकलता है जो कलिंग देश का पश्चिमी भाग है।4

1. नर्मदा सरिता श्रेष्ठ रूद्रेदाहिनिःसृता। तारयत्वभृत्तानि स्थावराणि चराणि व।।
   मत्स्य. (190/17 = कूर्म. 240/5 = पद्म. आदि. 17/13)।

2. पितृणां दुहिता पुप्प्या नर्मदा सरिता वर्षा। तत्र श्राद्धनि दत्तानि अक्षयाणि भवन्त्युत।।
   वायु पुराण - (77/32)।

3. योजनानां शतं सात्रं शृङ्खले सरितुमाः। विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनायमताः।।
   कूर्म. (2/40/12 = मत्स्य. 0/86/27-25)।

4. कलिङ्गदेशपश्चार्ध पर्वतेऽकर्णकर्ते। पुप्प्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा।।
   कूर्म. (240/9) एवं मत्स्य. (186/12)।
विष्णुपुराण में व्यवस्था दी है कि यदि कोई रात एवं दिन में और जब अंधकार
पूर्ण स्थान में उसे जाना हो तो प्रातःकाल नर्मदा को नमस्कार, रात्रि में नर्मदा को नमस्कार
! हे नर्मदा, तुम्हें नमस्कार! मुझे विषधर सांपों से बचाओ इस मंत्र का जप करके चलता
है तो उसे सांपो का भय नहीं रहता है।

गोदावरी

वैदिक साहित्य में अभी तक गोदावरी की कहां भी चर्चा नहीं प्राप्त हो सकी है।
रामायण, महाभारत एवं पुराणों में इसकी चर्चा हुई है। ब्रह्म पुराण (70/175) में गोदावरी एवं
इसके उपतीकों के सावितार वर्णन किया गया है। तीर्थसार (जूसिंहपुराण) ने ब्रह्मपुराण के कलियां
अध्यायों (यथा - 89, 91, 106, 107, 116-118, 121,122, 131, 144, 154, 159, 172) से
लगभग 60 श्लोक उद्धृत किये गये हैं। ब्रह्मपुराण ने गोदावरी को सामान्य रूप में गौतमी कहा
है। ब्रह्मपुराण (78/77) में आया है कि विद्य के दक्षिण में गंगा को गौतमी और उत्तर में
भागीरथी कहा जाता है। गोदावरी की 200 योजन की लम्बाई कही गयी है और कहा गया है कि
इस पर सादे तीन करोड़ तीर्थ पाये जाते हैं। (ब्रह्म. (77/8-9))
दण्डकारण्य को धर्म एवं मुक्ति
की बीज एवं उसकी भूमि का पुण्यतम कहा है।
3 बहुत से पुराणों में एक श्लोक आया है - (मध्य

1. नर्मदायेनय नमः प्रातनर्मदायेन नमो निःश। नमोस्तु नर्मदे तुम्यं ब्राह्ति मा विषसर्पतः।।
विष्णुपुराण (4/3/12-13)।

2. विन्ध्यज्ञद्विषे गंगा गौतमी स निन्धते। उत्तरे सापि विन्ध्य भागीरथभीधियते ॥
ब्रह्मा. (78/77)।

3. विष्णुपुराण में योजनानां शतद्वियां। तीर्थनिर्देश-शालून सम्भव्यतिः गौतम
(ब्रह्मा. (77/7-9))। धर्मबीजं मुक्तिबीजं दण्डकारण्यमुच्यते। विशेषद्व गौतमस्थिलेष्टो
देशः पुण्यतमोभवत् ॥ ब्रह्मा. (161/73)।
देश के) देश के सहार पर्वत के अन्तर में है वहाँ पर गोदावरी है और वह भूमि तीनों लोकों सबसे सुन्दर है। वहाँ गोवर्धन है जो मन्दर एवं गन्दमदन के समान है।

ब्रह्मा (अध्याय 74-76) में वर्णन आया है कि किस प्रकार गोतम ने शिव की जाता से गंगा को ब्रह्मागिरि पर उतारा, जहाँ उनका आश्रम था और किस प्रकार इस कार्य में गणेश ने उनकी सहायता की। नारद पुराण (उत्तरार्थ, 72) में आया कि जब गोतम तप कर रहे तो बारह वर्षों तक पानी नहीं बरसा और दुर्भिक्ष पड़ गया, इस पर सभी मुनिगण उसके पास गये और गंगा को अपने आश्रम में उतारा बराह। (71/34-44) ने भी कहा है कि गोतम ने ही जाह्वी को दण्डक वन में ले आये और गोदावरी के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। कूर्मा (2/20/29-35) ने नदियों की एक लम्बी सूची देकर अन्त में कहा श्राद्ध करने के लिए गोदावरी की विशेष महत्ता है। ब्रह्मा (124/93) में ऐसा आया है कि सभी प्रकार के कष्टों को दूर करने के लिए केवल दो उपाय घोषित हैं। पुनित नदी एवं जो करूणाकर शिव हैं। ब्रह्मा में लगभग 100 तीर्थों का वर्णन किया है। जब वृहस्पति यह सिंह राशि में प्रवेश करता है उस समय का गोदावरी स्नान आज की महापुण्य-कारक माना जाता है। ब्रह्मा (152/38-39) में ऐसा आया है कि तीनों लोकों के सादे तीन करोड़ देवता इस समय यहाँ स्नानार्थ आते हैं और इस समय का केवल एक गोदावरी का स्नान भागीरथी के प्रति दिन किये जानेवाले 60 सहस्र वर्षों के तक के स्नान के बराबर है। वराह (71/45-46) ने

1. सह्यास्यानन्दे चैते तत्र गोदावरी नदी। पृथ्वीयामपि कृत्स्नायां सः प्रदेशो मनोरमः यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः। मल्ल्य (114/37-38 - वायु, 45/112 13 - मार्कण्डेय, 54/34 - 35 - ब्रह्माण्ड 2/16/43)

2. नियंबक (79/6), कुशार्वत (80/1-3) जनस्थान (88/1) गोवर्धन (अध्याय 91) प्रखरा-संगम (106), निवासपुर (106/55), वंजरा-संगम (149) आदि।
ऐसा आया है कि जब कोई सिंहस्य वर्ष में गोदावरी जाता है, वह स्नान करता है और पितारे का तर्फ पंवं श्राद्ध करता है तो उसके वे पितार जो नरक में रहते हैं स्वर्ग को चले जाते हैं और जो स्वर्ग के वासी हैं, उन्हें मुक्ति मिल जाती है।

वागमती - इसे बाइमती और गिरा भी कहते हैं। वराह पुराण के 215 से 17 के अध्याय में इसके महामाय का वर्णन हुआ है। वराह पुराण में इसके जल को गंगा से भी सो गुना पवित्र माना है। यह हिमालय पर्वत से निकलकर नेपाल के अधिकांश भागों को पवित्र करती है। नेपाल का प्रमुख तीर्थ स्थल और राजधानी काठमांडू नगर इसी के तट पर बसा हुआ है और यही विष्णुमती और वागमती का संगम तट भी है।

शिप्रा - यह पारिताज पर्वत के केव्रेश्वर नामक स्थल से निकली हुई है। यह नदी अवन्ती या उज्जयनी नदी के ठीक बीच-बीच वही हुई है। उज्जैन नगर भारत के साथ पवित्र महापुर्ण में से अत्यन्त पवित्र है। स्कन्द पुराण अवन्तिखण्ड के 26वें अध्याय में शिप्रा में स्नान कर महाकाल का दर्शन एवं नमक्कर करने से मृत्यु की धिनात्र से मुक्त होने की बात कही गयी है। स्कन्द पुराण के अनुसार शिप्रा को भगवान के स्वेद बिन्दु से उत्पन्न माना गया है। वृहस्ति के सिंह राशि में आने पर इसके तट पर मेला लगाता है।

पयोणी - यह पैनगण्डा नाम की वर्तमान नदी बिन्धा पर्वत से निकलकर दक्षिण की ओर बहती हुई गोदावरी में मिलती है। इसी के तट पर मेघड्कर तीर्थ है जिसे भगवान विनायक का साक्षात् स्वरूप बताया गया है।

1. हिमालयसुगुंशिखरात् प्रदेश्रुतां प्रादश्रुतां वामतिर नदी।। भागीरथ्या शतागुणं पवित्रतं तज्जलं स्मृतम्। वराह पुराण (215/50-51)
2. तीर्थ मेघढकर नाम स्वयमेव जनार्दन।।
   यथा शारीरभोज विशुमेष्टायामवर्डित। मत्स्य पुराण (22/40-41)
गण्डकी - पुराणों में इसे गंगा की सात धाराओं में से एक माना है। भागवत एवं ब्रह्माण्ड पुराण में बलराम जी की तीर्थ यात्रा में यहाँ जाने तथा इसकी विशेष महिमा का उल्लेख हुआ है। जरासंध-वध के समय कृष्ण अर्जुन, भीम आदि इसमें सादर स्नान करके पार हुये थे पुराणों के अनुसार इसमें यात्रा तथा स्नान करने वाले को अश्वमेध-यज्ञ का फल मिलता है। अन्त में वह सूर्य लोक को प्राप्त करते हैं। इसके जल में भगवान का निवास रहता है। भगवान विष्णु के गण्डक स्थल के स्वेद से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम गण्डकी हुआ।

कावेरी-कूर्मपुराण अध्याय-2 के अनुसार कावेरी चन्द्र-तीर्थ से प्रकट होती है। पुराणों के अनुसार अर्जुन के 16 नदी पत्तियों में से एक यह भी है। ब्रह्माण्ड पुराण वायु पुराण के अनुसार इसे युवनाश्व की पुत्री, जहनुकी पत्नी और सुहोत्र की माता कहा गया है।

कृतमाला - मलयपर्वत से निकली हुई दक्षिण भारत की नदी है। इसका सम्बन्ध मलय पुराण से है। भगवान मलय इसी नदी से निकल कर राजा सत्यवत्र के खाये थे। दक्षिण भारत का मदुरई नगर इसी के तट पर बसा हुआ है। जिसे दक्षिण भारत का मधुरा कहा जाता है। यहाँ मीनाक्षी-मन्दिर विश्व प्रसिद्ध है। इसमें 27 गोपुर लगे हैं। कहा जाता है कि जब भगवान इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी थी तब यहाँ स्नान कर मुक्त हुए थे।

1. गण्डस्वेदोदभवा गण्डकी सरितां वरा।
   भविष्यति न संदेहे यत्स्य गर्द भविष्यति।
   वराहपुराण (144/122-23)

2. भागवत पुराण 5/19/18, 10/79/16
   वामन पुराण 13/32 और मलय पुराण/
पर्वत

नदियों के समान पर्वत भी तीर्थ स्थल थे। जो अपनी प्राकृतिक बनावट के कारण प्राचीन काल से ही पूज्य रहे हैं। पर्यावरण की वृद्धि से आज भी पर्वत मानव जीवन के लिए अति उपयोगी हैं। क्योंकि आज भी चिकित्सक लोग असाध्य रोगियों को स्वास्थ्य लाभ के लिए पहाड़ों पर जाने की सलाह देते हैं। अतः प्राचीन काल में हमारे ऋषिगण पर्वतों पर ही तपस्या करते थे। पर्वतों में ही देवताओं, ऋषियों तथा राजाओं ने तपस्या की। अतः इससे स्पष्ट है कि पर्वत प्राचीन काल से ही आराधना के केन्द्र रहे हैं।

महत्वपूर्ण देवी देवता का मन्दिर पर्वतों की चोटियों पर स्थित है। पर्वतों की कन्दराओं प्राचीन काल में ऋषिगण तपस्या करते थे। अतः पर्वत पर्यावरणीय उपायों का कारण आज भी प्रारंभिक है। पुराणों में वर्णित कुछ पर्वतों का उल्लेख यहाँ हें अपेक्षित है जो इस प्रकार है।

हिमालय - यह सभी पर्वतों का राजा है यह अनेक ऋषि-मुनियों, राजाओं की तपस्थली एवं गंगा, यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र इत्यादि नदियों का उद्गम स्थल है। धर्मात्मा पाण्डवों का जीवन इसी क्षेत्र में व्यतीत हुआ और अंतिम दिनों में वे यहाँ गलकर पंचतव को प्राप्त हुए। भगवान शंकर का निवास स्थान भी यहाँ है। पुराणों ने इसे पार्वती का पिता कहा है। पुराणों के अनुसार गंगा और पार्वती इनकी दो पुत्रियाँ हैं। हिमालय के कोड में बद्रीनाथ, केदारनाथ, मानसरोवर आदि अनेक तीर्थ तथा शिमला दार्जिलिंग मंसूरी आदि श्रेष्ठ नगर हैं। यह बहुमूल्य रत्नों एवं औषधियों का प्रदाता है।

विन्ध्याचल - यह अरावली से लेकर राजशाही तक फैला हुआ है। इसमें से तापी, पयोंषी निर्विन्ध्या ख्यात्रा, बेणा, कुमुदली, गौरी दुर्गावती आदि अनेक बड़ी नदियाँ
निकली हुई है और चित्रकूट विन्दुवाल आदि अनेक पावन तीर्थों की स्थली है। पुराणों के 
अनुसार इस पर्वत ने सुमेशु ईश्वर रखने के कारण सूर्यदेव का मार्ग रोक दिया था और 
आकाश तक पढ़ गया था जिसे अगस्त्य ऋषि ने निवृत्त किया था।

पारिजात - यह पर्वत सात कुल पर्वतों में विशेष महत्व है और विन्दु के 
दक्षिण पश्चिम में स्थित है। इस पर्वत से वेदवती, काली सिन्धु, वेदवती चर्मणवती, साभ्रवती, 
अवती एवं शिप्रा आदि नदियाँ निकल कर पश्चिमी भाग को पवित्र करती हैं, मार्कण्डेय 
पुराण और विष्णु पुराण के अनुसार यह पर्वत अरुक और बालव क्षत्रियों का निवास स्थान 
था।

मत्स्य पुराण के अनुसार तारकाचुर ने इसी पर्वत की कन्दारों में कई वर्षों 
तक निराहार रहकर पंचापन तापक, अंगों को अन्न में हवन कर ब्रह्माजी को प्रसन किया 
था।

महेन्द्रगिरि - महेन्द्रगिरि भारत में दो माने जाते हैं। एक पूर्वी घाट पर और 
दूसरा पश्चिमी घाट पर। वाल्मीकी रामायण का महेन्द्रगिरि पश्चिमी घाट पर है जहाँ से श्री 
हनुमान जी कूदकर लंका गये थे। दूसरा महेन्द्रगिरि पूर्वीघाट पर है। जिसका उल्लेख 
पुराणों में आया है। पुराणों के अनुसार यह परशुराम जी का निवास स्थान बताया गया 
है। इस पर्वत पर स्थित परशुराम-लीला में स्नान करने से अस्वमेघ-यज्ञ का फल प्राप्त 
होता है। पुराणों के अनुसार लागूलिनी, ओषिकुल्या, ईशुद्या आदि नदियाँ निकली हुई हैं। 
वायु पुराण, मत्स्य पुराण भागवत पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण आदि में इसका अनेकधा उल्लेख 
किया गया है।

चित्रकूट- पुराणों एवं भारतीय धर्मग्रन्थों में चित्रकूट पर्वत की महिमा अनेक
रूपों में वर्णित की गयी है। श्रीमद्भागवत, चतुर्थस्कन्ध के प्रथम अध्याय के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव- इन तीनों जिद्दों को क्रमशः यहाँ चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में जन्म ग्रहण करना पड़ा था। इसी कारण यहाँ प्रवेश करते ही राजा नल, धर्मराज युधिष्ठिर आदि के कलेष नष्ठ हो गये थे।

पन्त्व पुराण, स्कन्ध पुराण आदि एवं महाभारत आदि ग्रन्थों में चित्रकूट का अमित महात्म्य तथा परम रम्य का वर्णन होता है।

ऋष्क्वान् - इसका वर्णन कई पुराणों में प्राप्त हुआ है। यह अत्रिमुनि का निवास स्थल है एवं उनकी तपःस्थली कहा गया है। इस पर्वत से बिहार में बहने वाली नदी सोन उड़ीसा में बहने वाली महानदी चित्रकूट में मन्दाकिनी, गोंडवाना में नर्मदा तथा तमसा मंजुला आदि नदियों निकली है।

सहगिरि- इस पर्वत की महिमा पर स्कन्ध पुराण का ‘सहाद्रिखण्ड’ एक स्वतंत्र ग्रंथ है। यह भी अगस्त्य का निवास-क्षेत्र था। इस पर्वत का राजस्थान नहुँ के जीवन चरित्र से विशेष संबंध रहा है। इसमें एक विशेष तीर्थ सहालक तीर्थ है। इसका वर्णन नरसिंहपुराण के कई अध्यायों में मिलता है। नरसिंहपुराण में सप्तकुलाचल पर्वतों के साथ इसका बार-बार उल्लेख प्राप्त होता है। प्रायः सभी पुराणों में स्वल्प शब्दान्तर से इस पर्वत विशेष को और इससे जुड़े हुए अन्य क्षेत्रों को सारी पृथ्वी में मनोरम प्रदेश बताया गया है।

1. सहादश्य चोतके या तु यत्र गोदवरी नदी।
   पुष्ठियामपि कुत्तनायं स प्रदेशो मनोरमः।।
   महत्यपुराण 114/37, ब्रह्म पुराण 27/43, मार्कंडेय पुराण 57/34, बायु पुराण पूर्वर्धि 45/112, इत्यादि।
रामगिरि या रामटेक- पुराणों ने इसे महातीर्थ की संज्ञा देकर इसकी महत्व
प्रतिपादित हुई है, गरुड़पुराण में ऐसा कहा गया कि पर्वत के शिखर पर भगवान् श्री राम
का मन्दिर और पुराणा किला है।

पुराणों में उपरोक्त तीर्थ स्थलों के अलावा और भी तीर्थ स्थल हैं जो पर्यावरण
की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं उनका यहाँ वर्णन अपेक्षित है -

• अक्षय करण - यह प्रयाग में स्थित है। वनो 87/11, पद्ध 6/25/7-8 (ऐसा
कहा गया है कि कल्प के अन्त में विष्णु इसके पत्र पर सोते हैं।

• अक्षय वट- (1) वायु 105/45, 109/16, 111/79-82 (जब सम्पूर्ण विश्व
जलमग्न हो जाता है उस समय विष्णु शिशु रूप में इसके अन्त भाग में सोते
रहते हैं। अन्न 115/70, पद्ध 1-38-2, (2) विन्ध्य की ओर गोदावरी के अंतर्गत)
ब्रह्म. 161-6/6-67 (3) नर्वदा पर ब्रह्मवैमर्त 03, अ. 33, 30-321 यहाँ पुलस्य
ने तप किया था।

• आगस्त्य तीर्थ- (गया के अंतर्गत) अन्न. 116-3, वायु. 111-53

• आगस्त्याश्रम - पद्ध 1-12-4अगस्त्येश्वर - (1) नर्वदा के अंतर्गत) मत्स्य. 171-
5; (2) वाराणसी में लिङ) लिङ तीर्थ कल्प तर, पृ. 116)

• अन्न कुण्ड- (1) यमुना के दक्षिण तट) मत्स्य. 108-27 पद्ध. 1-45 27; (2) वाराणसी
के अंतर्गत) कूमरी 1-35-7 पद्ध 1-37-7 (3) गोदावरी के अंतर्गत) ब्रह्म. 98-1, (4)
(सरस्वती पर) पद्ध 1-27-27; (5) साध्रमती के उत्तरी तट पर) पद्ध 6-134-1 (6)
(कुक्कुलक के अंतर्गत) वराह. 126-631 अनिधारा (गया के अंतर्गत) अन्न. 116-31।

1. रामगिर्याश्रम परम् - गरुड़पुराण (81/8)।
अतिन प्रभ- (गण्डकी की अंतर्गत) वराह. 145-52-55 (इसका जल जाइ गर्म और ग्रीष्म में ठंडा रहता है।

अष्टीयत्र- (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग. (तीर्थ कल्प. पृ 66, 711)

अधोरेश्वरं (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 194-1

अज्ञातकेश्वर- (1) (गया के अंतर्गत) । अनिन. 116-29। (2) (नर्मदा के अंतर्गत) कूर्म. 2-41-61

अंडप्रेश्वर- (1) (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग. (तीर्थ) पृ. 55 एवं 98; (2) (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 190-9, पद्ध 1-17-6।

अच्छोदक- (चन्द्रप्रभा पहाड़ी की उपत्य का में एक झील) वायु. 47/5-6 एवं 77-76; मत्स्य. 14/3 एवं 121/7 अच्छोदक- (अच्छोदक झील से निकली हुई नदी) मत्स्य. 121/7, वायु. 47?6 ब्रह्माण्ड. 2/18/6 एवं 3/13/80।अज्ञेश्वर- (वाराणसी में एक लिंग) लिंग 1/92/136।

अम्जव- (ब्रह्मगिरि के पास एक पर्वत गोदावरी के अंतर्गत) ब्रह्म. 84/2 अष्ट्टहास- (1) (हिमालय में) वायु. 23/192, (2) (पिताओं का तीर्थ) मत्स्य. 22/68। (3) (वाराणसी में एक लिंग) लिंग. (तीर्थ कल्प तरु, पृ. 147)

अतिबल- (सतारा जिले में महाबलेश्वर) पद्ध. 6/113/29।

अविदित तीर्थ - (गया के अंतर्गत) नारदीय पुराण 2/40/90।

अन्नततीर्थ- (मथुरा के अंतर्गत) वहार. 155/1।

अन्नतनाग - (पुष्पोदा से दूर नहीं) नौलमत. 1401-2। आजकल यह इस्लामाबाद के नाम से प्रसिद्ध है और कश्मीर के मार्शण्ड पठार के पश्चिमी भाग में स्थित है।
• अनन्तशयन - (श्रावणकोर में पद्यनाभ) पध. 6/10/8, 6/280/19।

• अनरक - (1) (कुरूक्षेत्र के अंतर्गत) वाम. 41/22-24। (2) (नरम्दा के अंतर्गत) मत्स्य. 193/1-3, कूर्म. 2/41/91-92। (3) (यमुना के पश्चिम) धर्मशीर्ष राज भी इसका नाम है। पध. 1/27/56 कूर्म. 39/5।

• अनरकेश्वर- (वाराणसी के अंतर्गत)लिंग. (ती.कल्प., पृ. 113)

• अनुपा - (ऋक्षवान पहाड़ से निकली हुई नदी) बहापुर. 2/16/28।

• अन्तकेश्वर- (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग. (तीर्थ.कल्प.पृ. 75।)

• अन्तर्वदि - (गंगा और यमुना के मध्य की पवित्र भूमि) स्कन्ध. 1/1/17/274-275 (जहाँ वृक्ष को मारने के कारण ब्रह्म हत्या हिरिर।)

• अन्तशिला - (विन्ध्य से निकली हुई नदी) वायु. 45/203।

• अन्ध- (एक नद) भागवत. 5/19/18।

• अन्धोन - (नरम्दा के अंतर्गत) पध. 1/19/110-113।

• अन्नकूट - (मथुरा के अंतर्गत) वराह. 164/10 एवं 22-32 (गोवर्धन को अन्नकूट कहा जाता है।

• अप्सरेश - (नरम्दा के अंतर्गत) मत्स्य. 193/16 पध. 1/21/16, कूर्म. 2/42/24।

• अब्जक - (गोदा. में) ब्रह्म. 129/137 (यह गोदावरी का तुलक्य या मध्य है।

• अमरकृष्ण - (छत्तीसगढ़ के विलासपुर जिले में पर्वत)। वायु. 77/10-16 एवं 15-16 ने इस पर्वत की बड़ी प्रशंसा की है। मत्स्य. 188/79, पध. 1/15/68-69 का कथन है कि शिव द्वारा जलाये गये बाण के तीन पुरों में दूसरा इसी
पर्वत पर गिरा था। कूर्म. 2/40/36 (सूर्य एवं चंद्र ग्रहणों के समय यहाँ की यात्रा पुण्यदायिनी समझी जाती थी।

- अमरेश्वर - (1) (निषिद्ध पर्वत पर) वाम। (ती. कल्प.पृ. 236); (2) (श्री पर्वत के अंतर्गत) लिंग। 1/92/15।

- अमोहक - (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य। 191/105 पद्म। 1/18/96-99।

- अम्बिकाकाव्य (सरस्वती नदी पर) भागवत। 10/34/12।

- अम्ल- (कुरुक्षेत्र की एक पवित्र नदी) वाम। 34/7।

- अयोध्या- (उ.पू. के फैजाबाद जिला में) ग्राम नदी पर सात पवित्र नगरियों में एक। यहाँ कुछ जैन सन्त उत्सव उपन्यास हुए थे। अतः जैनों का तीर्थ स्थल भी है। ब्रह्माण्ड 4/40/91, अर्न। 109/24। रामायण (1/5/5-7) के अनुसार कोशल देश में सरयू बहती थी अयोध्या जो 12 योजन लम्बी एवं 3 योजन चौड़ी नगरी थी। पद्म। 6/208/46-47 (दक्षिण कोशल एवं उत्तर कोशल के लिए)। साकेत को सामान्यतः अयोध्या कहा जाता है।

- अरविन्द- (गया के अंतर्गत एक पहाड़ी) वायु। 109/15 नारदीय। 2/47/73।

- अरिष्टकुण्डा-(मथुरा के अंतर्गत) वराह। 164/30 (जहाँ पर अरिष्ट मारा गया था)।

- अरुण-(केलास के पश्चिम का पर्वत जहाँ शिव रहा करते थे) वायु। 47/17-18, ब्रह्माण्ड। 2/18/8।

- अर्जुन- (पितारों का तीर्थ) मत्स्य। 22/43।

- अर्बुद- (अरावली श्रेणी के अबू पर्वत) जन। 82/55-56 था। मत्स्य। 22/38 पद्म। 1/24/4, नारद। 2/60/27, अर्न। 109/10।
• अलकनन्दा - आदि. 170/22 (देवों के बीच गंगा का यही नाम है)। वायु. 41/18, कूर्म. 1/46/31, विष्णु. 2/2/36 एवं 2/8/114 के मत से गंगा की चार धाराओं में एक है और समुद्र में सात मुख होकर मिल जाती है। आदि. 170/19 ने सात मुखों का उल्लेख किया है। नारदीप. (266/4) का कथन है कि जब गंगा भगीरथ के रथ का अनुसरण करने लगती है तो यह अलकनन्दा कहलाती है। भागवत. 4/6/24 एवं 5/17/5। भगीरथी देव प्रयाग में अलकनन्दा से मिल जाती है और दोनों के संयोग से गंगा नामक धारा बन जाती है। नारदीप. 2/67/72-73 में आया है कि भगीरथी एवं अलकनन्दा बदरिकाष्ठम में मिलती है।

• अवधूत - (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग (तीर्थ कल्प. पृष्ठ 93।

• अवत्ति- (1) वह देश जिसकी राजधानी उज्जयनी थी। (2) अवत्ती (पारियात पर्वत से निकली हुई नदी है। वायु. 45/98 मत्स्य. 114/24, ब्रह्माण्ड. 2/16/29। (3) (मालवा की राजधानी उज्जयनी) ब्रह्म. 43/24, अगिन 109/24, नारदीप 02/178/35-36।

• अविमुक्त - (काशी) विष्णु. 5/34/30 एवं 43।

• अश्वतीर्थ- (1) कान्यकुम्भ से बहुत दूर नहीं। विष्णु. 4/7/15। (जहाँ ऋष्यीक ने गाथी को उसकी कन्या सत्यवती को प्राप्त करने के लिए दहेज के लिए 1000 घोड़े दिये थे। (2) मत्स्य. 194/3 पद. 21/3 (3) (गोदावरी पर) ब्रह्म. 89/43 (जहाँ पर अश्वम हुआ उत्पन्न था)।

• अश्वसेवा - (प्रयाग के अंतर्गत) लिंग. 111/14।

• अश्विश्वर - (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग. तीर्थ कल्प. पू. 52।

• अश्वीतीर्थ- (नर्मदा के अंतर्गत) पद. 1/21/30।
• इन्द्रप्रस्थ - यमुना के तट पर दिल्ली में आधुनिक इन्द्रप्रस्थ नामक ग्राम) आदि. 217/27, विष्णु. 38/34 (कृष्ण के देहावसान के उपरान्त अर्जुन ने यहाँ यादव वंश को राजमुकुट दिया)।

पद्म. 6/196/5, 60/75-76 भाग. 10/58/11, 11/30/48, 11/31/25 इन्द्रप्रस्थ पाँच प्रस्थों में एक है - अन्य सोनीपत, पानीपत, पिल्लत, और बागपत।

• इरावती - (पंजाब की आधुनिक नदी, रावी) मल्स्य. 22/19 (श्रावलीर्थ), वायु. 45/95। वाम. 81/1। लाहौर नगर इसके तट पर अवस्थित है।

• उज्जयन- (सौराष्ट्र में झारका के पास वायु. 45/92 एवं 77/52, वाम. 13/18 स्कन्द. 8/2/11/11 एवं 15।

• उत्तरगंगा - (कश्मीर में, लार परगने में गंगाबल)

• उमातुंग - कृम्भ. 2/37/32-33, वायु. 77-81-82 (श्राव, जप, होम के लिए सर्वात्मस्त्थल)

• ऋषितीर्थ - (1) (नर्मदा पर) मल्स्य. 191/22 एवं 193/13 (यहाँ मूनि तृणबिन्दु शाप से मुक्त हुए थे) कृम्भ. 2/41/15 पद्म. 1/18/22 (2) (मधुरा के अन्तर्गत) वराह. 152/60।

• ऐरावती - (हिमालय से निकली हुई एवं मद्र देश की सीमा की एक नदी) मल्स्य. 115/18-19, 116/1।

• ओकारेश्वर - (वारा. के अंतर्गत) स्कन्द. 4/35/118।

• काव्यश्रम- (1) सहारनपुर जिले में मलिनी नामक नदी पर) आदि. 109/10।

• कवित्त - (झारका के अंतर्गत) वराह. 149/52 (जहाँ पर वृष्ण लोग पवित्र हुए थे।
कपालमोचन तीर्थ- (1) (वारा. में) स्कन्द. 04/33/116, नारदीय. 2/29/38-60 (शिव ने अपने हाथ में आये हुए ब्रह्मा के एक सिर को काट डाला और इस तीर्थ पर पापमुक्त हो गये। मत्स्य. 183/84-103, वाम. 3/48-51, वराह. 97/24-26 पद. 5/14/195-189 कृम. 1/3515 (इन पौंचों पुराणों में एक ही गाथा है।

कपिलतीर्थ - (1) (उड्डिसा में विरज के अंतर्गत) ब्रह्म. 42/6 कृम. 2/41/93-100 (3)
ब्रह्म 155/1-2।

काकशिला - (गया के अंतर्गत)वायु. 108/76 अनि. 116/4।

काज्जीपुरी - सत पवित्र नदियों में एक चोलों की राजधानी एवं अनन्यपूर्णा देवी का स्थान। पद. 6/110/5, ब्राह्मण्ड. 4/5/6-10 एवं 4/19/15 वायु. 104/76, पद. 4/17/67।

कान्यकुबज (ललिता देवी के 50 पीठों में से एक) ब्राह्मण्ड. 4/44/94 (जहाँ विश्वामित्र ने इन्द्र के साथ सोम पान किया था।

कापेलकतीर्थ- (साध्वमति के अंतर्गत) पद. 6/155/1 (यहां नदी पूर्व की ओर हो जाती है।

कामगिरी - (पर्वत) ब्रह्मण्ड 04/39/105।

कामतीर्थ- (नरम्दा के दक्षिणी पर) कृम. 2/41/5 गरुड 1/81/9।

कावेशरी- (1) सहा पर्वत से निकलने वाली दक्षिण भारत की एक नदी) वायु. 45/104/77/28 मत्स्य. 22/64, कृम. 2/37/16-19 पद. 1/39/20 (मल्लवृद्धा कही गयी है)

किष्किन्धपर्वत- मत्स्य. 13/46 (इस पर्वत पर देवी तारा कहा गया है)

कुन्दवन - (मधुरा के 12 वनों में तीसरा वन वराह. 153/32।)
• क्षणाधरक - (यहाँ गंगाधार के पास रैम्प का आश्रय था) मल्य. 22/66 पघ. 1/32/5 कर्म. 2/20/33 गरुड (1/81/10) का कथन है कि एक महान श्राद्ध तीर्थ है। वराह 125/101 एवं 132 एवं 126/3-3 (यह माया तीर्थ अर्थात हरिद्वार है) वराह (140/60-64) में व्याख्या की है कि किस प्रकार पवित्र स्थल श्रीविष्णु का यह नाम पड़ा। ऐसा लगता है कि यह हरिद्वार में कोई तीर्थ था।

• कृष्णादेवी- मल्य 114/29 में 'स्कन्द. से कृष्णवेणी का महालक्ष्य उद्घृत है।

• कृष्णा- (1) महावलेश्वर में सहा पर्वत से निकलने वाली नदी) ब्रह्म. 77/5 पघ. 6/113/24 (2) वाम. 78/71 इसे बुध्दा कृष्ण-वेणा या कृष्ण वेणा कहा जाता है। यह तीन विशाल नदियों में से एक है। दो अन्य नदी कावेरी एवं गोदावरी है।

• कोलापुर- (यह आधुनिक कोलहापुर है जो देवी स्थानों में एक है) पघ. 6/176/42 (यहाँ लक्ष्मी का एक मंदिर है) ब्रह्माण्ड. 4/44/97 (यह ललितार्थ है)

• कोलाहल (एक पर्वत) वायु, 45/90;106/45 ब्रह्माण्ड. 2/16/21, विष्णु. 3/18/73।

• कोशला - (नदी अयोध्या के पास) पघ. 1/39/11, 6/206/13; 207/35-36, 208/27।

• शिन्हा- (विन्ध्य से निकली हुई नदी) मल्य. 114/27 वाम. 083/18-19। वायु, में शिन्हा या सिन्हा आया है।

• गंगा-सरस्वती संगम- पघ. 1/32/3/

• गंगा-सागर संगम- मल्य. 22/11 (यह सर्वतीर्थय है) पघ. 1/39/4।

• गंडकी - (हिमालय से निकल कर बिहार में सोनपुर के पास गंगा नदी में मिल जाती है)। वराह. 144-146) एवं ब्रह्माण्ड (2/16/26) में आया है कि यह नदी विष्णु के
कपोल के पसीने से निकली हुई है। विष्णु ने इसे वरदन दिया था कि मैं शालग्राम पत्तर खंडों के रूप में तुमसे सहैव विराजमान रहूँगा (वराह. 144/58) गण्डकी देविका एवं पुलस्त्याश्रम से निकली हुई नदियाँ त्रिवेणी बनाती हैं (वराह. 144/84) यह नेपाल में शालग्राम एवं उप. में नारायणी कहलाती हैं।

- गिरिकर्णिका - मत्स्य. 22/39। इसे साधनमती कहा है।
- गिरिकृष्ट - (गया के अंतर्गत) नारदीप. 2/47/75।
- गुरुकूल तीर्थ - (नर्मदा पर) स्तंभ. 01/1/18/153।
- गोवर्धन - (मधुरा के पास एक पहाड़ी) मत्स्य. 022/52 कूर्म. 1/14/18 (जहाँ पर पृथु ने तप किया था)। पद. 5/69/39 वराह. 163/18 विष्णु. 5/11/16
- गौतमेश्वर - (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 22/68; 193/60; कूर्म. 2/42/6-8 पद. 1/20/58।
- त्रिवेणी - (प्रयाग में) वराह. 144/83, 144/86, 144/116-134।
- दण्डकारण्य (दण्डकवन) - वराह. 71/10, ब्रह्म. 88/18/110 वाम. 84/12 पद. 34/58/59
- देवगिरि (मधुरा के अंतर्गत एक पहाड़ी) वराह. 164/27 भाग. 5/19/16।
- देवदारुण (बद्रीनाथ के पास हिमालय में) कूर्म. 2/36/53-60, 2/39/18 मत्स्य. 13/47।
- द्वारका - वैदिक साहित्य में इस तीर्थ का नाम नहीं आता किन्तु पुराणों में इसके
विषय बहुत कुछ कह गया है। यह सात पुनीत नगरियों में एक है। इसकी जानकारी हमें वाराह 149/7 ब्रह्म. 14/54-56, विष्णु 5/23/13 भविष्य 4/129/44 अनन्त 273/12 हरिवंश. (2 विष्णु पूर्व 58 एवं 98 अध्याय)

• धर्मारण्य (गया के अन्तर्गत) वायु. 111/23 वाम. 84/12 अनन्त 115/34 नारदीप 2/45/100 पत्र. 1/12/6-8।

स्पष्ट किया गया है कि नैमिषारण्य के मुनियों का महान क्षेत्र कुरुक्षेत्र में दृष्टिकोन के तट पर था। किन्तु वायु 2/9 एवं ब्रह्म. 1/2/9 के अनुसार यह गोमती पर था विष्णु (3/14/18) में आया है कि गंगा यमुना नैमिष-गोमती तथा अन्य नदियों में स्नान करने एवं पितारों को सम्मान देने से पाप कट जाते हैं।

• नैमिष (यह एक वन है) यह गोमती नदी पर लखनऊ जनपद से 45 मील दूर स्थित है। मत्स्य 109/3 (पृष्ठी पर अत्यन्त पवित्र) कूर्म. 2/20/34 कूर्म. 2/43/1-16 वायु. 2/8 ब्रह्मा 1/2/8 ब्रह्म. 1/3-10 में इसका सुन्दर वर्णन है वायु 1/14-12 में स्पष्ट किया गया है कि नैमिषारण्य के मुनियों का महान क्षेत्र कुरुक्षेत्र में दृष्टिकोन के तट पर था। किन्तु वायु 2/9 एवं ब्रह्मा (1/2/9) के अनुसार यह गोमती पर था। विष्णु (3/14/18) में आया है कि गंगा यमुना नैमिष गोमती तथा अन्य नदियों में स्नान करने एवं पितारों को सम्मान देने से पाप कट जाते हैं।

• पञ्चनद - (पंजाब की पाँच नदियों) वायु. 77/56 कूर्म. 2/44/1-2 लिंग. 1/43/47-48, वाम. 34/26 पदम 1/24/31 आजिकल इन्हें सतलज व्यास रावी, चिनाव, हेलाम कहा जाता है।

• पञ्चकुण्ड - (झारका के अन्तर्गत) वाराह. 15/1/43

• पंचनदी - (कोल्हापुर के पास) पदम. 6/176/43।
पञ्चतीर्थ (का काजी) ब्रह्माण्ड 4/40/59-61।

पलाशिनी (नदी काठियावाड के गिरिनार के पास मार्क, 54/30 (शुक्लिमान से निकली हुई वायु. 45/107।

पर्णश्च- राजस्थान में बनास नदी, जो उदयपुर राज्य से निकलकर चम्बल में मिलती है। पर्णश्च का अर्थ है पत्तों की आशा-वायु 45/97, वायु 214/48 मत्स्य 114/23।

परस्कृ - पंजाब की आधुनिक रावी ऋ. 5/52/9, 7/88/7-9 ब्रह्म. 144/1 के अनुसार गोदावरी की सहायक नदी।

पमोदा (नदी) - ब्रह्माण्ड 2/18/701, वायु. 47/67।

पयोणी (विन्ध्य पहाड़ि से निकली नदी) अधिकांश पुराणों में तापी एवं पयोणी अलग-अलग उल्लिखित है यथा - विष्णु - 2/3/11, मत्स्य. 114/27, ब्रह्म. 27/33, वायु 45/102 वाम. 13/28 नारदीप 2/60/29 भागवत 10/79/20, पदम 4/14/12 (यहाँ मुनि च्यवन का आश्रम था)।

पाण्डुर (एक छोटा पर्वत) वायु 49/9।

पारियात्र (सात मुख वर्त परियात्र से एक) इसे विन्ध्य का पश्चिमी भाग समझना चाहिए क्योंकि चम्बल छत्तीस एवं क्षिण्डा नदियाँ इससे निर्गत कही गयी है। इसकी जानकारी हमें निम्न पुराणों से मिलती है - कूम्र. 1/47/24 भागवत. 5/19/16, वायु. 48/88 ब्रह्म. 27/99।

पार्वतिका - यह विन्ध्य से निकलकर चम्बल में मिलती है इस नदी पर श्राद्ध अत्यन्त फलदायक होता है मत्स्य. 22/56।

पुक्कर - अजमेर 6 मील दूर एक नगर, झील जो तीरथ यात्रा स्थल है यहाँ पर ब्रह्मा का मन्दिर है इसकी जानकारी हमें वायु. 77/40 कूम्र. 2/20/34।
• पुष्करिणी - (नर्मदा नदी के अन्तर्गत थी) मत्स्य. 190/16 कृम्म. 2/41/10-11 पदम्
1/17/12, अग्निपुराण (116/13) में इसे गया के अन्तर्गत माना गया है।

• पूर्णतीर्थ - (गोदावरी के तट पर स्थित है) ब्रह्मपुराण 122/1।

• प्रतिष्ठान - (इलाहाबाद जिले के पास झूंझी) वायु. 91/18 (पुरुरवा की राजधानी)
मत्स्य 12/18, 106/30 (गंगा के पूर्व तट पर) विष्णु. 4/1/16 ब्रह्मा. 227/151 भाग.9/1/42 पुराणों में एक दूसरे प्रतिष्ठान की भी जानकारी मिलती है जो दक्षिणी भारत
की नदी गोदावरी के बायें तट पर स्थित आधुनिक पैठन। इस स्थान की जानकारी
हमें ब्रह्म - 112/23 वाराह. 165/1, पद्म- 3/172/20, 6/178/2-6।

• प्रभास- सौराष्ट्र में समुद्र के पास, जहाँ 12 ज्योतिलिंगों एक सोमनाथ का प्रसिद्ध
मंदिर था। इसे सोमनाथ पठन भी कहा गया है इसकी जानकारी हमें -स्कन्द. 7/1/2/44-43, कृम्म. 2/35/15-17, नारदिय. 2/70/1-95, गरुड. 1/4/81, वाम. 84/29
यहाँ सरस्वती समुद्र में गिरती है।

• प्रत्यक्ष (गया के अन्तर्गत एक पहाड़ी) वायु. 109/15

• प्रतिशिला - (गया के अन्तर्गत) वायु. 110/15, 108/15।

• प्लक्सिरथ - (एक पवित्र तालाब संभवत: कुरुक्षेत्र में) वायु 91/32

• फल्यु (नदी)- गया जनपद में बहती है यहाँ पितरों को श्राद्ध प्रदान किया जाता है
इसकी सूचना हमें वायु. 111/16 से प्राप्त होती है।

• बदरिकाश्रम - (उत्तरांचल के गढ़वाल संभाग में बद्रीनाथ) वराह. 141 (तीर्थ कल्प.
215-216) मत्स्य. 201/24, विष्णु. 5/37/34, ब्रह्माण्ड. 3/25-67, नारदिय. 2/67,
भागवत. 7/1/6।
• बदरीवन- पद्म 1/27/66।

• वार्हस्पत्यतीर्थ -(गोदावरी नदी के अन्तर्गत) ब्रह्म. 122/101।

• बहुदा - (सरस्वती के निकट एक नदी) पद्म. 1/32/31, नारदीय. 2/60/31 ब्रह्म 27/36 मत्स्य 144/22 वायु. 45/95 इन पुराणों के अनुसार यह हिमवान् (हिमालय क्षेत्र) से निकलती है।

• बिन्दुसर (हिमालय श्रृंखला के मैनाक पर्वत पर स्थित है) इसकी जानकारी हमें ब्रह्माण्ड. 2/18/31, मत्स्य. 121/26-31, मत्स्य. 121/26-31-32 इस स्थान पर भगीरथ इन्द्र एवं नर-नारायण ने तप किया था।

• ब्रहमगिरी - एक पर्वत जहाँ से गोदावरी निकलती है और जहाँ पर गौतम ऋषि का आश्रम स्थित था। इसकी जानकारी हमें ब्रह्म. 74/25-26, 84/2, पद्म 7/17/58 पुराणों से मिलती है।

• ब्रह्म नदी - (यह सरस्वती नदी का नाम है) भागवत. 9/16/23।

• ब्रह्मस्थान - पद्म. 1/27/2

• ब्रह्मयुग (गया के अन्तर्गत) वायु. 111/31-32, अभिन. 115/39।

• ब्रह्मावर्त - सरस्वती और द्रृष्टी के मध्य की पवित्र भूमि) यह एक पवित्र तीर्थ है इसकी जानकारी मत्स्य 22/69, अभिन 109/16 पुराणों से मिलती है।

• भद्रावरी - (गंगा की मौलिक चार धाराओं में एक) ब्रह्माण्ड. 3/56/52।

• भागीरथि - मत्स्य. 121/41।

• भावतीर्थ - (गोदावरी के अन्तर्गत) ब्रह्म. 153/1।

• भीमरथि (भीमान्द्रि) मत्स्य. 22/45, 114/29 पद्म. 1/24/32, वामन 13/30।

• भुनेश्वर - लिंग. (तीर्थ कल्प. पृष्ठ 56
• भूलेश्वर - (कश्मीर में भूलीसर) नीलमत. पृष्ठ 1309, 1324, कृम्म. 1/35/10, पदम. - 1/37/13।

• भृगुलिङ्ग - (नर्मदा के अन्तर्गत) मत्स्य. 193/23-60, कृम्म. 2/42/1-6 पथ. 1/20/23-57। यह स्थान जबलपुर से पश्चिम 12 जील मील दूरी पर भेड़ा घाट पर स्थित है जिसके मंदिर में 64 योगिनियों के मंदिर है।

• भुजुर्ग - (एक पर्वत पर वह आश्रम जहाँ भृगु ने तप किया) वायु. 23/148, कृम्म. 2/20/23 मत्स्य. 22/31 (श्राद्ध के लिए उत्तम स्थान।)

• मधुज्वन - (मधुज्वन) कृम्म. 2/36/9 वाराह. 153/30, वामन. 83/31 भागवत. 4/8/42 (यमुना के तटों पर)। (श्रावण ने मधुज्वन में मधुज्वन नगरी को बसाया था। वामन. 34/5 के अनुसार कुश्केश्त्र के सात बनों में एक मधुज्वन था।

• मन्दाकिनी - (चित्रकूट पर्वत के पास एवं ऋक्षधार से निकली हुई नदी) वायु. 45/99, अन्न. 109/23 ब्रह्माण्ड 2/16/30 मत्स्य. 114/25।

• मन्दर - (पर्वत) यह मेहू पर्वत के पूर्व समुद्र तक फैला हुआ विष्णु 2/2/18 मार्कण्डेय 51/19 लिंग. 2/92/187।

• महानदी (यह विन्य से निकलकर उड़ीसा में कटक के पास बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है) ब्रह्माण्ड 46/4-5, कृम्म. 2/35/25।

• महेन्द्र (यह एक पर्वत है जो गंगा या उड़ीसा के मुख से लेकर मदुरा तक फैला है) मत्स्य. 2/44, पद. 1/39/14 भागवत. 5/19/16, वाम. 13/14-15 कृम्म. 1/47/23-24।

• मानस - हिमालय में एक जील जो कैलास के उत्तर एवं गुर्जर। मान्धाता के बीच में स्थित है) इसकी जानकारी हमें ब्रह्माण्ड 2/18/15 मत्स्य. 122/16/17 वाम. 78/3।
• रामतीर्थ - (गया के अन्तर्गत) वायु. 108/16-18 मत्स्य. 22/70 अभिन. 116/63। रामेश्वर (ज्योतिलिङ्ग में से एक जिसे राम ने स्थापित किया था)। मत्स्य. 22/50, कूर्म. 2/30/23 गरुड 1/8/9।

• तेलिम्ब (ब्रह्मपुत्र नदी) वायु. 47/11 77/95, मत्स्य. 121/11-12 पद्म 1/39/2, कलिका. 86/26/34।

• वराहतीर्थ - (कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत) वाम. 34/32 पदम 1/26/15।

• विविधता - काशीर में एक नदी जो झेलम के नाम से प्रसिद्ध है। कूर्म. 2/44/4 वामन. 90/7 नीलमत. 45/305-306।

• विदिशा - (परिपत्र से निकली हुई नदी) ब्रह्म. 27/29 ब्रह्माण्ड 2/16/28 मार्कबैण्डेय 54/20।

• मिश्रित - पंजाब में व्यास नदी ऋग्वेद के अनुसार मिश्रित। ऋग्वेद 3/33/113, वायु. 79/6, नारदीय. 2/60/30।

• वेणा - (विन्ध्य से निकली हुई नदी) ब्रह्म. 27/33, मत्स्य. 114/27 यह मध्य प्रदेश की वेन गंगा है। जो गोदावरी में मिलती है।

• वेदवती - परिपत्र से निकली हुई एक नदी। मत्स्य. 114/23 ब्रह्माण्ड 2/16/27 ब्रह्म. 27/29।

• वैतरणी - (उड़ीसा में बहने वाली विन्ध्य से निर्मित नदी) वायु. 77/95, कूर्म. 2/37/ 37 पदम. 1/39/6 अभिन. 116/7 मत्स्य. 114/27 ब्रह्म. 27/33।

• बैंधनाथ - वाराणसी के अन्तर्गत लिङ्ग तीर्थ कल्पपृष्ठ-84 एवं 114) मत्स्य. 13/41, 22/24 पद्म 5/17/205 देवीभागव. 7/38/14 यहाँ पर देवी बंगला कही जाती है।

• शारदातीर्थ - (काशीर में) मत्स्य. 22/74 काशीर के प्रमुख तीर्थों में है। यह किस गंगा नदी के दाहिने तट पर स्थित है।
शालग्राम- (गणडकी की नदी के उद्ग स्थल पर एक पवित्र स्थान) विष्णु, 2/1/24, 2/13/4 वराहा 144/3।

शिमा - (नदी जो पतिक उज्जैनी में बहती चली जाती है) मत्स्य. 22/24, वायु. 45/48 इस नदी के प्रत्येक एक मील पर एक तीर्थ स्थल है।

शुक्लिमान (भारत के सात महान पर्वतों में एक यह विन्या का एक भाग है) कूर्म. 1/47/39 वायु. 45/88/107 नारद. 2/60/37 भगवत. 5/19/10

श्रृंगवेशपुर - (इलाहाबाद जिले में गंगा नदी के बायें तट पर) पद्म. 1/39/61 अरिन. 109/23 यहीं पर अयोध्या से वन जाते समय भगवान राम ने गंगा नदी को पार किया था।

श्रीपर्वत (श्रीशैल) कुर्मल जिले में कृष्णा स्टेशन से 50 मील दूर कृष्णा नदी की दक्षिण दिशा में एक पहाड़ी) लिंग 1/92/155 वायु. 77/28 मत्स्य. 13/31 अरिन 133/4 पद्म. 1/15/68।

सप्तगोदावर - वायु. 77/19 मत्स्य. 22/78, भगवत. 10/79/12, पद्म. 1/39/41 कस्तड़. 4/6/22।

सरयू - (नदी मत्स्य 22/19, 121/16-17 ब्रह्माण्ड. 2/18/70 नारदीय. 2/75/71।

सरस्वती - (आधुनिक सरस्वती) वह नदी जो ब्रह्मसर से निकलती है। वामन. 2/42-43 पद्म. 5/18/159-160।

सिन्धुवन- मत्स्य. 22/23 यहाँ पर श्राङ्ग अत्यन्त फलदायक है।

सिन्धु - वायु. 45/98, मत्स्य. 114/23 ब्रह्म. 27/28।

चूकर तीर्थ - बरेली और मधुरा के बीच में गंगा के पश्चिमी तट पर सोरो) नारदीय. 2/40/31, 60/22, पद्म. 6/12/21/6-7।
• सूर्यतीर्थ - कूर्म. 1/35/7 पदम. 1/37/7 (मधुरा के अन्तर्गत) वराह. 152/50।
• सोमतीर्थ - (सरस्वती के किनारे) वामन. 41/4 मत्स्य. 191/30, पदम 1/18/30 कूर्म. 2/41/47।
• हरिद्वार - (इसे गंगावत या मायापुरी भी कहते हैं यह उत्तराखंड के हरिद्वार जिले दाहिने किनारे पर स्थित है यह सात पवित्र नगरियों में परिवर्तित होता है।
• पदम. 4/17/66, 6/21/11। 6/22/18।
• हेमकुट - (कैलाश का दूसरा नाम ब्रह्माण्ड 2/14/48, 15/15।
• हपीकेश - हरिद्वार के उत्तर 14 मील दूर गंगा तट पर वराह. 146/63-64।
सातवाँ अध्याय
पर्यावरण स्वेत्व आयुर्वेद
पर्यावरण से आयुर्वेद

वर्तमान समय में चिकित्सा शास्त्र के अन्तर्गत आयुर्वेद, एलोपेथिक, होमियोपेथिक तथा यूनानी चिकित्सा पद्धति समाज में व्याप्त है। लेकिन प्राचीन काल में भारत में चिकित्सा के लिए एक मात्र आयुर्वेदिक पद्धति ही विद्यमान थी। जो समस्त जीवों के उपचार में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती थी। प्राचीन काल में समस्त रोगों का निदान आयुर्वेद के ही द्वारा होता।

प्राचीन भारतीय समस्त धर्म ग्रन्थों में रोग निदान के विषय में जानकारी मिलती है। प्राचीन धर्म ग्रन्थों में रोग निवारण के लिए जड़ी-बूटियों का प्रयोग होता था। जो अपनी उपयोगिता के लिए अति प्रसिद्ध थी। जैसा कि आज की अंग्रेजी दवाओं का तुरस्त लाभ तो हो जाता है लेकिन रोगी को रोग से पूर्ण आराम नहीं मिलता तथा किसी-किसी दवाओं का प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है। वहीं आयुर्वेद में दवाओं का प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

इसलिए आज पुनः समाज में हर्बल दवाओं की मांग बढ़ने लगी है। आयुर्वेद में समस्त रोगों के लक्षण तथा निदान के उल्लेख मिलते हैं। आयुर्वेदिक दवाये वन उत्पन्न होने के कारण पर्यावरण की दृष्टि से अति सुरक्षित होती है। आयुर्वेदिक औषधि वन उपज होने के कारण पर्यावरण की मिट्ट्र है। इन वनोषधियों से पर्यावरण का नुकसान न होकर पर्यावरण का संरक्षण होता है। वेदों में ब्राह्मण ग्रन्थों में पुराणों में सुश्रुत तथा चर्क संहिता में आयुर्वेदिक औषधि का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेदिक औषधि वन उपज होने कारण पर्यावरण की
दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हो गयी है। वर्तमान समय में अपनी उपयोगिता के कारण लोगों में पुनः इसके प्रचलन में वृद्धि हो रही है। पुराणों में विशेषकर अम्नि और गरुण पुराण में आयुर्वैदिक औषधियों द्वारा रोगों के निदान की बात कही गयी है तथा बताया गया है कि किस कारण रोग उत्पन्न होता है, रोगों के क्या लक्षण होते हैं तथा रोगों का किस प्रकार निदान किया जा सकता है। अतः कुछ रोगों के निदान के जो औषधि प्रयोग में लायी जाती है वह इस प्रकार है।

उच्च अतिसार आदि रोगों का उपचार

आयुर्वैद में वातज, पित्तज, कफज ज्वर (बुखार) मान गया है। मधु, सेंधा नमक, वच, काली मिर्च और पिपली को पीसकर कपड़ाहार करने के बाद ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को देने से वह तुर्न्त होश में आ जाता है। त्रिबृदिशाला, त्रिफला, कटुकी और अमलता से बने क्वाथ में सेंधा नमक डालकर पीने से ज्वर विनष्ट होता है। सोठ मोथ, रक्तचन्दन, खस तथा धनिया से बने क्वाथ में शर्करा या मधु मिलाना चाहिए इसका पान करने से तिजरिया ज्वर विनष्ट हो जाता है।

गुहूशी (गिलोय) का क्वाथ कल्क (कूटकर लुगदी बनाने का कल्क कहा जाता है) त्रिफला तथा वासक (अहूसा) का क्वाथ एवं कल्क द्राक्षा और बला (बरियारा) का क्वाथ और कल्क से सिद्ध घृत सभी प्रकार के ज्वरों का विनाशक है। ऑवला, हरीतकी और पिपली सभी प्रकार के ज्वरों को विनष्ट करने वाला होता है।

त्रिफला, गिलोय, वासक चिरेता, नीम की छाल और नीम की गिरी का क्वाथ

1. गरूण पु. आचार खण्ड 170 अध्याय।
मधु के साथ पान करने से कमला तथा पाण्डु-रोग समाप्त होता है। सल्की (सलई) बेर, जामुन, प्रियाक आम, अर्जुन और घव नामक वृक्ष की छाल का व्याध दूध और मधु के साथ पान करने से रक्त सम्बन्धी रोगदूर हो जाता है। कृष्णा (कालीपतियों वाली तुलसी) धारी (ऑवला) श्रेष्ठ सोठ का चूर्ण मधु के साथ मिलाकर खाने से हिचकी रोग का विनाश होता है। गाय के दूध दही घृत, मूत्र और गोमय से बना पालकक्ष मिरगी रोग के लिए हितकारी है। बला पुर्णच एरण्ड वृहत्तिद्रय कण्टकारी गोखरुका क्वाथ हींग और सेधा नमक मिलाकर पान करने से वातशल विनव्य हो जाता है। दुध में सोठ चूर्ण मिलाकर पीने से हड़ताल पीड़ा का नाश होता है। धतुर एरण्ड, निर्मुढ़ी, सहिजन तथा सरसों का मिश्रित लेप पुराने तथा अत्यन्त दुखदायी श्लीपद (पीलपान) रोग को दूर करता है।

नाइव्रण, कुष्ठ आदि रोगों की चिकित्सा

नाइ को शस्त्र से भली भाँति काटकर ब्रण चिकित्सा के समान चिकित्सा करना चाहिए। गुगुल, त्रिफला तथा ट्रिकुट को समान भाग में लेकर सिद्ध किये घृत से नाइ में विकृत ब्रण, शूल और भागनदर नामक रोग पर विजय प्राप्त की जा सकती है। गुगुल, खदिर, वखल, नीम का फल और गिलोध का क्वाथ पीने उपदेश-दोष समाप्त हो जाता है। रसोन (लहसुन) मधु नासा अहूसा तथा घृत का कलक बनाकर दूरी हुई हड़ियों के जोड़ पर लगाने से बहुत जल्दी आराम मिलता है। कालीमिर्च के साथ मैनसिल का सिद्ध तेल कुष्ठ रोग का विनाश है। तेल में कनेर के मूलका पाक सिद्ध उबन भी कुष्ठ नाशक है। हल्दी, चन्दन रास्ता गुड़ची एडगाज (तगर) अमलतास और करज का लेप कुष्ठ विनाशक है।

1. ग.पु. आचार खण्ड 171 अध्याय।
मधु के साथ विङ्ग, त्रिफला और काली तुलसी के चूर्ण का अवलेह कुष्ठ, कृमि, मेह, नाइट्रेन एवं भगवद्गर नामक रोगों का विनाश होता है। जो मनुष्य कुष्ठ रोगी हो तो हरीत की नीम, कृंतकी, आँवला तथा दारुहल्दी का सेवन करना चाहिए। उष्ण मक्खनस, कुम्भ (गुगुल) अदरक, खदिर अक्ष (बरेड्हा) आवला तथा चम्पा नामक योग भी कुष्ठ का विनाश होता है यह औषधियों का एक रसायन है जो खदिर मिश्रित जल का यथा विधि सेवन करता है उसे कुष्ठ रोग पर विजय प्राप्त हो जाती है। पिपली, गुड़ी चिरायता अद्रू तोकु कितके पितपाप्दा खैर और लहसुन से बना क्वाल्फ़ फोड़ा-जुंजी तथा उचर रोग का विनाशक है लहसुन के चूर्ण को धिनसे से कुष्ठ विसर्म, फोड़ा तथा खजुली आदि चर्म रोगों का विनाश होता है। चौराई तथा रसौत को पीसकर मधु अथवा चावल के धोबन में पीने से सभी प्रकार के रक्त प्रदर रोग विनष्ट हो जाता है। चावल के जल के साथ पान किया हुआ कुष्ठ का मूल भी रक्त प्रदर रोग की विनाशक है।

स्त्रियों के रोगों की चिकित्सा

चव, उपकृंविका (काली जीरा) जातीफल (जायफल) कृष्णा (काली तुलसी) वासक (अंहुसा) सैन्धव (सेंधा नमक अजमोदा (अजवाइन) यक्षवार, चित्रक तथा शरकरा को पीस कर सभी को मिश्रित करके घी में भूनकर जल या दूध के साथ सेवन किया जाय तो स्त्रियों के योनि भाग में होने वाला शूल, हँड प्रदर, गुल्प, अर्द्ध विकार दूर हो जाता है।

काँजी में जमपुष्प (अइल के पूल) ज्योतिष्मती दल, मालगांगनी की पत्ती और चित्रक को पीसकर शरकरा के साथ पान करवें योनि रोग दूर हो जाता है। आँवला, रसौत तथा हरीतकी का चूर्ण जल के साथ पान कराने से वह स्त्रियों के रजोगुण को दूर करता है। ऋतुकाल में में लक्षण (व्येतकशकारी) की जड़ को दुध के साथ पान कराने से या
नस्य लेने से स्त्री को पुत्र प्राप्त होता है धृत के साथ व्योष (सोठ, पिपली और काली मिर्च) तथा केसर के चूर्ण का सेवन करने में वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती बन जाती है। पाठा (पाढ़), लाइलि (कलियारी) सिंहस्य (कचनार) मयूर (चिढ़ा) और कुटज (गिरिमलिका या गुरैया) को अलग-अलग पीसकर नाश्च्छ पेड़ू तथा योनिभाग में लेप करने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव होता है। मदार या बकुल की जड़ का लेप प्रसूता स्त्री के हृदय, मस्तक और पेड़ू के भाग में होने वाली पीड़ा का हरण करता है। दुर्ग के साथ साठी चावल का चूर्ण सेवन करने से प्रसूता स्त्री को दूध होने लगता है तनन शोधन के लिए प्रसूता स्त्रियों को मूँग का जूस पीना चाहिए। कूट, वच, हरितकी, ब्राह्मी, द्राक्षफल, मधु और धृत का योग रंग आयु और सीन्द्र का वर्धक है।

जो औषधि बृद्धावस्था को दूर करने का सामान्य रखती हो उसको रसायन फ़ा जाती है। रसायन की अभिलापा करने वाले लोगों का वर्षा आदि ऋषदों में संधा नमक, शर्करा, सोठ पिपली, मधु तथा गुड़ के साथ हरीत नामक औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

रुचि चिकित्सा

गुड़वत्ती और मोथे का क्वाथ वातज्वर विनाशक है। दुरालभा अर्थात धामसा नामक औषधि के धृत पान करने से पित्र-ज्वर दूर होता है दुरालभा तथा सोठ से सिद्ध धृत-मिश्रित क्वाथ कफ ज्वर का नाशक है। बालक सोठ और पित्र पपड़ा से सभी ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

1. लाभी पाथो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्। (सु.-सं.-सू. अ. 1)
2. गुरुद्वाराण अध्याय 172।
हल्दी, नीम, त्रिफला, नागरमोथा, देवदारु, अदरक चन्दन, परवल की पत्ती का क्वाथ पीने से त्रिदोष जन्य अर्थात सत्रिपात उच्च दूर हो जाता है।

कष्टकारी, सोंथ, गुड़ूची कमल तथा नागबला नामक औषधियों के योग से बने चूर्ण का सेवन करने से श्वास और खोँसी आदि से मुक्ति मिल जाती है।

चिरायता, पाढ़ा। पित्र पाप्दा, विसाला (इन्द्रायण) त्रिफला तथा निसोतका क्वाथ दूध के साथ प्रायः है। यह मलावरोधक का भेदन करने वाला एवं समस्त स्वरों का विनाशक है।

गर्भ-दन्त तथा कर्णशूल सम्बन्धी उपचार

मुलेठी तथा कष्टकारी नामक औषधियों को समभाग में लेकर गो दुध में पाक तैयार करके चौथा भाग शेष रहने पर उस पाक का गरम जल के साथ पान करने पर स्त्री को गर्भ रुक जाता है। बिजौरा नीबं के बीजों को दुध के साथ भावित करके उसका पान करने से स्त्री का गर्भ रुक जाता है। पुत्र प्राप्त की इच्छुक स्त्री को बिजौरा नीबू के बीज को तथा एरण्ड वृक्ष की जड़ को धी के साथ संयोजित करके उसका सेवन करना चाहिए। अख्वगन्धा के क्वाथ का दूध एवं धी के साथ सेवन पुत्र कारक है। पत्लाक के बीजों को मधु के साथ पीसकर पान करने से रजस्वला स्त्री मासिक धर्म तथा गर्भधारण सेरहित हो जाती है।

हरिताल, यवक्षार, पत्राङ (तेजपत्ता) लाल चन्दन जायफल, होंग तथा लक्षारस का पाक तैयार करके उसे दूंत में भली-भाँति लगाना चाहिए किन्तु उससे पहले हरीत की क्वाथ से दूंत साफ कर लें। ऐसा करने से मनुष्य के लाल पड़ गये दूंत भी सफेद पड़

1. गरुड़पुराण अध्याय 175।
हल्दी नीम की पत्ती, पिपली, काली मिर्जा, विंडङ-भद्र, मोथा और सोँठ - इन सात औषधियों को गोमूत्र के साथ पीसकर बटी बनाना चाहिए। इसकी एक बटी अजीर्ण एवं दो बटी विशूचिका (हेजा) नामक रोग को दूर करता है। मधु के साथ इसको पीसकर लगाने से नेत्रों की सूजन दूर हो जाती है। गोमूत्र के साथ प्रयुक्त होने पर अरुंद (कैंसर) नामक रोग दूर हो जाता है।

वट जटामांसी, बिल्ल, तगर, पंचकेसर, नागकेसर और प्रियंगु को समान भाग में लेकर चूर्ण बना लेना चाहिए। इस चूर्ण को धूप में लेने से मनुष्य रूप-सौन्दर्य से समान्यत बना हो जाता है।

पिपली और त्रिफला के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से भयंकर पीनस, खाँसी और त्वास के विकार नष्ट हो जाते हैं। सोँठ, शर्करा और मधु मिलाकर बनायी गयी गुटिका खाने मात्र से मनुष्य का स्वर कोयल के समान हो जाता है।

प्रायः शरद, ग्रीष्म और वसन्त ऋतु में दही का उपयोग निन्दनीय है तथा हेमन्त, शिशिर एवं वर्ष ऋतु में दही प्रशास्त होता है।

भोजन करने के पश्चात् नवनीत (मक्खन) के साथ शर्करा पान करना बुझिकारक होता है। यदि पुरुष एक पल पुराणा गुढ़ प्रतिदिन (भोजन के पश्चात्) खाता है तो वह बलवान होकर अनेक स्त्रियों से सम्पर्क करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। यथा, औषधि, अश्वगन्धा, मृसली, सरला (काली तुलसी) और गुढ़ का परस्पर मिलाकर बनायी गयी बटी

1. शरद् ग्रीष्मवसन्तेऽमुः प्रायशो दधिः सहिततम्।
हेमन्तेऽशिशिरः वर्षस्तृ पद्ध शास्तिते।।
गरुङ्ग पुराण (182/1)
खाने से मनुष्य तरुण एवं बलवान हो जाता है।

त्रिफला अदरक कूट और चन्दन को घूर्ण में मिलाकर पान करने से बिंदू का विष विनष्ट हो जाता है।

ग्रहणी, अतिसार, अर्श, अनिमान्धर आदि रोगों का उपचार

काली मिर्च, शृंगवेर और कुटज की छाल का पान करने से ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। पिपली, पिपली मूल, काली मिर्च, तगर, वच, देवदारु का रस और पाठा को दूध के साथ पीसकर सेवन करने से निशचत ही अतिसार रोग विनष्ट हो जाते हैं।

पुष्य नक्षत्र में ईंठल एवं पत्तियों-सहित शंखपुष्पी को उखाड़कर बकरी के दूध के साथ पीने से अपस्मार (मिर्च) का रोग दूर हो जाता है। जामुन का फल, हल्दी तथा साँप की केंचुल का धूप सभी प्रकार के ज्वरों का विनाशक है। गोमूत्र के साथ पिपली हल्दी और उसका चूर्ण मिलाकर उसे गुदाग्राम में डालने से अर्श रोग दूर हो जाता है। बकरी का दूध और अदरक का चूर्ण मिलाकर पान करने से पीली रोग दूर हो जाता है। सेंधा नमक, विहंग सोम लता, सरसों हल्दी, दारू-हल्दी, विष और नीम की पत्ती को गोमूत्र के साथ पीस लेना चाहिए। इसका लेप करने से कुष्ठ रोग का विनाश होता है।

सिवा, अर्श, मूत्रकृच्छ, अजीर्ण तथा गण्डमाला आदि रोगों की औषधियाँ

हरीतकी, शर्करा और पिपली का चूर्ण नवनीत के साथ सेवन करने से वह

1. ग्रहंपुराण (अध्याय 183)।
अर्श रोग का विनाश करता है। जंगली आइसे के पत्तों का घी में मंद-मंद आँच पर पकाकर उसका लेप करना अर्श रोग दूर करने की श्रेष्ठतम औषधि है।

गुगुल और त्रिफला का चूर्ण बनाकर पान करने से भर्गंधर रोग को विनष्ट किया जा सकता है। जीरा, अदरक, दही तथा चावल की मांड को अथिन में पकाकर नमक के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ नामक रोग दूर हो जाता है।

घूत के साथ सिद्ध त्रिफला का चूर्ण कुष्ठ-विनाशक है। पुनर्वावा, बिल्ल और पिपली के चूर्ण से सिद्ध घूत के द्वारा हिंचकी श्वास तथा खाँसी दूर किया जा सकता है। इस घूत का पान स्वियों के लिए गर्भकारक होता है।

दूध और घी के साथ वानरबीज (केबाँच) को पकाकर घी तथा शार्केस में मिलाकर सेवन करने से वीर्य कभी भी नष्ट नहीं होता। मधु घी, गुड़ करते रस और ताँबे को एक साथ पकाने से चाँदी बन जाता है। पीले धूरका पुष्प और सीसा एक पल तथा लालेञ्जिका (करियारी) की शाखा को एक साथ मिलाकर अथिन में पकाने से सोना बन जाता है। लौह-चूर्ण और मध्य से सेवन से पाण्डुरोग का शमन हो जाता है। चमेली और बेर की जड़ को मह्दे के साथ पीने से अजीर्ण दूर होता है।

बला, अतिवला, मधुयष्टि, शार्केस तथा मधु का पान करने से बन्ध्या स्त्री गर्भधारण कर लेती है। श्वेत अपराजिता की जड़ पिपली और सोंठ का पिसा हुआ लेप सिर में लगाने से शूल नष्ट हो जाता है। निर्गुण्डी की फुनगी को पीसकर पान करने से गंधमला नामक रोग दूर हो जाता है।

1. गरुड़पुराण (अध्याय 184)।
प्रमेह, मूत्र-निरोध, शर्करा, गण्डमाला अर्श तथा भगंदर आदि रोगों का निदान

मधु के साथ गुड़ची का रस पीने से प्रमेह रोग विनष्ट हो जाता है। गोहालिका की जड़ को तिल, वही तथा घी के साथ पान करने से यह वस्तिभाग में अवरूढ़ मूत्र को बाहर निकाल देता है। ब्राह्मी की जड़ को चावल के पानी में घिसकर तैयार किया गया लेप असाध्य गण्डमाला तथा गलगण्डक रोग को दूर करता है।

दत्तीमूल हल्दी और चिन्त्रक के लेप से भगंदर रोग विनष्ट होता है, स्नूही (सेहूँड) के दूध से अनेक बार भावर्त हल्दी की वटी का लेप अर्श रोग दूर करता है। धोषाफल और संधान्मक को पीसकर बनाया गया लेप अर्श रोग में लाभदायक है। बेल के फल को भूनकर खाने से खूनी अर्श विनष्ट होता है। मक्खन के साथ काला तिल खाने से भी अर्श रोग का नष्ट होता है।

आयुर्वृद्धिकरी ओषधि

यदि मनुष्य हस्तिकर्ण पलाश के पत्तों का चूर्ण करके सौ पलकी मात्रा में इस चूर्ण को दूध के साथ मिलाकर लगातार सात दिनों तक सेवन करे तो वह वेद विद्याविशारद, सिंह के समान पराक्रमी, पदराग के समान कान्तियुक्त और सौ वर्ष की आयु में भी सोलह वर्ष का नवयुक्त बन जाता है। किंतु सतत दुर्घपान करना अत्यावश्यक है। त्रिफला चूर्ण के साथ मधु का सेवन नेत्र ज्योति को बढ़ाता है। घी के साथ इस चूर्ण को खाने से अंधा व्यक्ति भी देख सकता है। खलवाट के बाल भी इस लेप के प्रयोग से निकाल आते हैं।

1. गरुडपुराण अध्याय 186।
चूर्ण को तेल में मिलाकर शरीर में लगाने से बाल पकने का प्रभाव तथा लच्चा की झुरियों का प्रकोप समाप्त हो जाता है।\(^1\)

**ब्रण आदि रोगों की चिकित्सा**

प्रहार से हुआ धाव व मवद्युक्त फोड़ा धी के प्रयोग से ठीक हो जाता है। दोनों हाथों से अपामार्ग की जड़ मलकर उसके रस से चोट के धाव को भरने से रक्षावर्धन रुक जाता है। नाड़ी के धाव में बालमूल (मोथा) की जड़ को अथवा भोज्नश्रृष्ठिकी की जड़ को जल में धुसकर लगाने से उसका धाव सूख जाता है। भैंस के वही में कोंदो का भात मिलाकर खाने से और होंग की जड़ का चूर्ण धाव भरने से भी नाड़ी का ब्रण सूख जाता है।\(^2\)

**नेत्र रोग, गुल्म, दन्तकृष्मि, विविध ज्वर**

श्वेत अपराजिता-पुष्प के रस नेत्रों में डालने से पलट नामक नेत्र रोग नष्ट हो जाता है। गोरखुँद की जड़ चबाकर दौंटों में लगे हुए कीटों की व्यथा को दूर किया जा सकता है।

यदि श्रीतुकाल में उपवास पूर्वक स्त्री गोरखुँद के साथ मन्दार की जड़ को पीसकर पान करती हैं तो उसके शरीर में दोनों गुल्म औरशृंखल विनष्ट हो जाता है। पलाशी की जड़ को हाथ में बोंधने से सभी प्रकार के ज्वरों का विनाश होता है। सुदर्शन वृक्ष की जड़ को माला में मध्य पिरोकर कण भरने से त्याहिक (तिजौरिया) आदि ज्वर समाप्त हो जाता है।\(^3\)

\(^1\) गरुडपुराण अध्याय 187।
\(^2\) गरुडपुराण (अध्याय 188)।
\(^3\) गरुडपुराण (अध्याय 189)।
गण्डमाला, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ दु:ध आदि विविध रोगों का उपचार

गोमूत्र के साथ अपराजिता की जड़ पीने से गण्डमाला रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जिज्ञासी (मंजीठा) एरण्ड तथा शूक शिबी (केर्वॅंच) को मिलाकर शीतल जलयुक्त लेप लगाने से भुजाओं में होने वाली व्यथा को दूर किया जा सकता है।

भैंस का मक्खन, अस्वास्थ्य, पिपली, वधा और दोनों प्रकार का कूट में मिलाकर बनाया गया लेप लिङ्गोत तथा स्तनगत दुःखों का विनाशक है। कूट और नागबला के चूर्ण को मक्खन में मिलाकर सिंधु किया गया लेप युवर्षियों के वक्तः स्थल को सुधौल ओज से सम्पन्न तथा सुन्दर बनाता है।

चावल के धोबन में श्वेत पुनर्वा की जड़ पीसकर पीने से निश्चित ही विद्रधि रोग नष्ट हो जाता है। केले की जड़ गुढ़ और घी मिलाकर अभिन में पकाकर खाया जाय तो वह उदर जनित क्रिमियों को विनाश कर देता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल ऑवले और नीम की पत्तियों का चूर्ण भक्षण करने से कुष्ठ रोग दूर हो जाता है। गोमूत्र से युक्त कुष्णाण्ड (कुम्हड़ा) के नाल का श्वार और जल में पीसी गयी हल्दी को भैंस के गोबर में मिलाकर मंद-मंद ऑवंच पर सिंधु करना चाहिए, उसका उबटन लगाने से शरीर का सौन्दर्य बढ़ जाता है।

चूर्णों, काक जंघा, अर्जुन के पुष्प जामुन की पत्तियों तथा लोधु-पुष्प - इन सभी को एक में मिलाकर पीस तेना चाहिए। इसका प्रतिदिन प्रयोग करने से शरीर की दुर्गन्ध दूर हो जाती है और वह मनोहर हो जाता है। प्रातःकाल गरम दूध की भाव से शरीर संक्त करने पर धर्मदोष (स्वेदःधिकप) नष्ट हो जाता है।
मुलेठी शर्करा, अद्वृत का रस और मधु का सेवन करने से रक्त-पित्त, कमला और पाण्डु रोग का विनाश होता है। प्रातःकाल मात्र जल पीकर भयंकर पीनस रोग को दूर किया जा सकता है।

आयुर्वेदोत्तक वृक्ष विज्ञान

गृह के उत्तर दिशा में लक्ष (पाकड़) पूर्व में वट (बरगद), दक्षिण में आम और पश्चिम में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष मंगल माना गया है। घर के समीप दक्षिण दिशा में कॉन्टेडार वृक्ष भी शुभ है। आवास के आस-पास उद्यान अथवा पुष्पित तिलों से सुशोभित करें।

वृक्षारोपण के लिए उत्तरा, स्वाती, हर्ष तथा रोहिणी नक्षत्र अत्यन्त प्रशस्त है। उद्यान में पुष्करिणी (बावली) का निर्माण करावे, वरुण, विष्णु और इन्द्र का पूजन करके इस कर्म को आरम्भ करें। नीम, अशोक, पुन्नांग (नागकेसर) शिरीष, प्रियंगु अशोक कदली (केला) जम्बू (जामुन)वकुल और अनार वृक्षों का आरोपण करके ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल और सायंकल, शीत ऋतु दिन के समय एवं वर्षा ऋतु में रात्रि के समय भूमि के सूख जाने पर वृक्षों को सींचे।

फिर विडंग घृत और पद्म-मिश्रित शीतल जल से उनको सींचे। वृक्षों के फलों का नाश होने पर कुलधी, उड़ग, मूंग, जौ, तिल और घृत से मिश्रित शीतल जल के द्वारा यदि

1. अनिन्दुराण (अध्याय 282/1-2)
2. अनिन्दुराण (अध्याय 282/3-4)
3. 282वें अध्याय में 6-7 दोनों श्लोक में अशोक वृक्ष का नाम है, पुनरूक्ति दोष नहीं है। अशोक स्वेत और रक्त दो प्रकार का होता है दोनों भवन के पास प्रशस्त है।
वनौषधि

गहन, कानन और वन- ये जंगल के बोधक है। कृत्रिम (लगाये हुए) वन को आराम या उपवन कहते हैं। यही कृत्रिम वन जो केवल राजा सहित अंतःपुर की रानियों के उपभोग में आता है वह प्रभवन कहलाता है। जिसमें फूल लगकर फल लगते हों उस वृक्ष का नाम वानस्पत्य है तथा जिसमें बिना फूल के ही फल लगते हैं उस गुलार आदि वृक्ष को वनस्पति कहते हैं।

फलों के पकने पर जिनके पेड़ सुख जाते हैं उन धान, जो आदि को औषधि कहा जाता है। पलाशी, ढुं, ढुम और अगम - ये सभी वर्ग वृक्ष के अंतर्गत आते हैं। बोधिद्वाम और चलदल - ये पीपल के नाम है। दधित्य, मन्तथ, दधिफल, और दन्तशाल ये कपित्य (कैथ) के नाम हैं। हेमदुधा शब्द उदुम्बर (गुलार) तथा द्रिपुत्रक शब्द कोविदनार (कचनार) के अर्थ में आता है दन्तसङ्ग-शब्द, जम्बीर (जमीरी नीम) के अर्थ में आता है। पुनागास, पुरुष तुक़ केसर तथा देववल्लभ - ये नामकेसर के नाम हैं।

गुडपुष्प और मधुदुम - ये मधुर (महुआ) के वाचक है। शिम्र, तीक्षण गन्धक का कशीर मोचक - ये शोभाजन अर्थात सहिजन के नाम हैं। लाल फूल वाले सहिजन को मधुशिमु पकहते हैं। शोलु, शोभायतक शीत, उद्हाल और बहुवार - ये सब लसोड़े के नाम हैं।

तिनदुक, स्फूर्तिक और काल ये तेंदू वृक्ष के वाचक हैं। नदियो, भूमि जम्बुक ये नारंग अर्थात नारंगी के नाम है।
निर्दिष्ट है कि भूमि-जम्बुक ये नागरंग अर्थात नारंगी के नाम है। पीलुक शब्द काकतिन्दुक अर्थात कुचिला के अर्थ में आता में भी आता है। जारक, असन, जीव और तीपसाल ये विजयसार के नाम है, सर्व और अश्वकर्ण - ये साल वृक्ष के वाचक है। इन्द्रुणी तपस्याओं का वृक्ष है इसलिए इसे ताज्जुस तर हो भी कहते हैं। मोचा और सामलि ये सेमल के नाम है। गायत्री बाल तनय खदित दन्त धावन मे खेला नाम वृक्ष के वाचक है। तीपदारु, दारु देवदारु और पूर्वकाष्ठ ये देवदारु के नाम हैं। अरिाष्ट पिच्चुर्मलक्ष और सर्वत्रो श्रद्ध - ये निम्न वृक्ष के वाचक हैं, शिरिय है और कपीतन - ये शिरिय वृक्ष के अर्थ में आते हैं। पिछला अग्रो शिशिमा ये शीर्ष के अर्थ में आते हैं। जया जयन्ती और तर्ककारी ये जैंतून वृक्ष के नाम हैं। वस्त्र और गिरिमलिका में कुट्ज वृक्ष के अर्थ में आते हैं। लन्तुली और अत्याचारिष ये चौराई के बोधक हैं। गणिका यूथिका और अम्बस्षा - ये जूही के अर्थ में आते हैं अतिमुक्त और युपुपु - ये मध्यवीणा लता के नाम हैं कुमारी तरणी और सहा - ये धूलकुमारी के वाचक हैं धुस्तूर वितव और धूर्त - ये धूतूर के नाम हैं रुचक और मालुतुंग विजौरा नीबू के वाचक हैं। कुठेरक और पर्णास - ये तुलसी वृक्ष के पर्याय हैं। आस्फीत वसुक और अर्थ (मदार) ये मदार के नाम हैं। शिवमली और पाशुपति ये अगस्त्य वृक्ष के नाम हैं। गुड़ी, तत्त्रिका अमृता सोमवल्ली और मधुरपर्णी ये गुरुदिव के वाचक हैं। मोरवा, मोरटी मधुलिका मधुरस्यस्त्री गोकणि पीलुपणिय - ये मोरवा नाम वाली लता के नाम हैं। पाठ, अम्बस्षा विद्वकर्ण प्राचीन वन वितिका - ये पाठा नाम के वस्तिर्द लता के वाचक हैं। अपामार्ग जैशिक प्रस्वकर्ण तथा मयूरक - ये अपामार (चिचिड़ा) का बोध कराने वाला है। मण्डक पर्णी भण्डेरी समंगा और काल मेरिका में मजीठ के नाम हैं।

निर्दिष्टिका स्पीशी व्यापक छुद्र और दुर्योगी ये भटकट्जैया के अर्थ में आते हैं।
कणाउण्डा और उपकुल्या - ये पिपली के बोधक हैं। चन्द्र और चवाक-ये वचा के नाम हैं
काकचिन्ची, गुज्जा कुष्टला-ये घुपुची के अर्थ में आते हैं। वन श्रृंगार और गोथुर-ये गोथुरु
के वाचक हैं। संतुरस क्षास कु- ये अण्डा के अर्थ में आते हैं। मिसीमधुरिका और
क्षत्रा मे वनस्फोक के वाचक हैं। वज्रु सुकु सिन्ही और सुधा ये सेहुण के अर्थ में आते हैं।
मृगुक्ता गोपाक्ती और द्राक्षा ये मुनक्का के नाम है। विदारी शीर शुक्ला इकुणाण्डा और या
शिता - ये कुष्टाण्ड के बोधक हैं। मोचारभा और कदली - ये केले के नाम हैं। भण्डाकी
और दुष्यधर्मीणी - ये भाटे के अर्थ में आते हैं। ज्योतिषी पाटोलिका और जाली ये तरोई
के अर्थ में आते हैं। तम्बुली तथा नागवल्ली ये तम्बुल या वान के नाम हैं। कालानुसार्य,
वृद्ध अश्मपुष्प श्रीतिसिंह और शैलेय मे शिलाजीत के नाम के वाचक हैं। बला त्रिपुटा और
tुटु-ये छोटी इलायची के वाचक हैं कुटन्नट दार्भुर वानेत और परिपेलव ये मोधा के नाम
हैं। तपस्विनी तथा जटामासी-जटामासी के अर्थ में आते हैं तपस्विना सितचछत्रा, अचिच्छत्रा
मधुरामिसी अवक पुष्पी और कार्वी - ये सोफ के नाम हैं। करबूर और सदी ये कच्छ के
अर्थ में आते हैं। पटोल कुलक तितक और पदु - ये परवल के नाम हैं। कारवेन्य और
cकटिक ये करेला के अर्थ में आते हैं। कटिक मे करेला के अर्थ में आते हैं। कुष्टाण्डक
और कार्वी मे कोहडा के वाचक हैं इक्काकु तथा कुटलुमी मे कड़ी तोकी के वाचक हैं।
विशाला और इक्काकुवाणी मे तुम्बी नामक लता के नाम हैं। अशोभण सुरण और कन्द मे
सूरन या ओल के वाचक ताड़ के वृक्ष का नाम ताल और तृणराज है। घोटा क्रमुक तथा
पूणा- ये सुपारी के अर्थ में आते हैं।

सिद्धौषधानी

मुखें को जीत करने वाले सिद्ध योगों और सिद्ध मन्त्रों तथा मनुष्य अभ्यास एवं
हस्ती के रोगों को नष्ट करने को आयुर्वेद कहा है।

ज्वराक्रान्त व्यक्ति के बल पर ध्यान रखते हुए उसे लहँन (उपवास) करवाये।
तदन्तर उसे सोठ से युक्त लाल मण्ड (धान के लावे की मौंड) तथा नागर मोथा, पिता
पापड़ा खस, लाल चन्दन, सुगन्धवाला और सोठ के साथ शूर (अध्ययक) जल को प्यास
और ज्वार के लिए दें छः दिन बीत जाने के बाद चिरागता जैसे द्रव्यो का काढ़ा दें।

ज्वार निकालने के लिए (आवश्यकता हो तो) स्नेहन (पश्चिम) करवाये। रोगी के
वातावरि जब शान्त हो जायें तब विरेचन-द्रव्य देकर विरेचन कराना चाहिए साठी, तिली,
लाल, अगहनी और प्रमोदक के तथा ऐसे ही अन्य धान्यों के पुराने चावल ज्वार में हिलकर
होते हैं। व्य के बने (बिना भूसी के) पदार्थ भी लाभदायक होते हैं। मूंगा, मसूर, चना,
कुल्थी, मोठ, अरहर, खेखशा, जायफर, उत्तम फल के सहित परवल, नीम की खाल पिता
पापड़ा एवं अनार भी ज्वार में लाभदायक होते हैं।

1. आयुर्वेद प्रक्षयामि सुश्राताय यमब्रवीत्।
   देवो धनस्नाति सारं मूलसंजीवनीकरम्॥
   अगियुपाण (अध्याय 279/1)

2. रक्षन्वल हि ज्वरितं लक्षितं योजवेदिभंक।
   सदिष्ठं लाजमण्ड तु वृक्कवर्णं शूर ज्वाल।॥
   मुस्तपुर्णकीरजनवदीद्वहानागरः।
   पद्मे च व्यालिक्रान्ते तिरुक्क पापयेदद्वहम्॥
   अगियुपाण (अध्याय 279/3-4)

3. स्नेहेत्यत्वदहारं तु तततस्त च विरेचयत्।
   जीविः षड्यक्षीवाररकरकालि प्रमोदकः॥
   तदेद्वारे ज्वरेशु यवानां विकृतिस्थाय।
   मूदूरा मसूरश्चाणकः कुल्थास्खल सकृष्टकः॥
   अगियुपाण (अध्याय 279/5-7)
रक्तपित्त नामक रोग यदि अधोग (गुडा, लिंग, योनि) हो तो वमन हितकर होता है तथा उद्वग (मुख, नासिका, अभिकर्ण) हो तो विरेचन लाभदायक है। इसमें बिना साँठ के छड़ (मुस्त पपर्टकोशीर चन्दनोदिच्छा) - नागर मोथा, पिल्ल पापड़ा खस, चन्दन एवं सुगन्धबाला) ये बना व्याब देना चाहिए। \(1\) इस रोग में (जौकां: सच्च, गेहूं का आटा धान का लावा, जो के बने विभिन्न पदार्थ, अगहनी धान का चावल मसूर, चना साँठ खाने योग्य है। अतिसार पुराना अगहनी का चावल लाभदायक होता है।

गेहूं धान का लावा, यज्ञ, शाळि मसूर, मोधी चना, मूंग एवं गेहूं का भोजन हितकर है। घृत एवं दुःख में अदूसे का स्वरस पाकर उसमें मधु मिलाकर पीने को दें। \(2\)

अतिसार में पुराना चावल खाने को दे एवं जो भी अन्न कबिज्यत करने वालें न हों वह खाने को दें। गुल्म रोग में वायू से रक्षा करें। \(3\) कुष्ठ रोग में गेहूं, चावल, मूंग, ऑंवला खैर और हरड़ पंचकोल, जंगली पशुओं का मांस, निम्ब, तीनों ऑंवले (पहाड़ी जमीन का और कलमी) परवलका पत्र, विजीरे नीम्बू का रस, काला जीरा, सुखी मूली, सेन्द्र नामक खड़ि पोथक का काढ़ा अथवा खादिराष्ट्र देना चाहिए। भोजन में मसूर और मूंग का जुस, बासमती चावल का भात, निम्ब पत्र, पटोल पत्र का शाख जंगली पशु-

1. अधोगे वमन शस्त्रमूर्त्यं च विरेचनम्।
रत्न पिल्ले तथा पानं छड़कूलवर्जितं।

2. सत्कुष्ठमलाजाश्च यक्षालिनिमसूरकः।
सत्कुष्ठकं मुदःकं भक्ष्या गोधमकं हितः।
साधिता घृतदुधाम्यं क्षौंद्रं वृश्चिरसो मधु।

अगिनपुराण (अध्याय 279/9)

3. अतिसारं पुरानो शाळानां भक्ष्यं हितं
अनमयणं च वच्चान्या लोपवल्लसयम्।
मांसं वर्जयेद्रः कायम् गुलमेशु सर्वथा।

अगिनपुराण (अध्याय 279/10-11)
पक्षियों का रस देना चाहिए। लेपन के लिए - वायविंग, मरिच, नागरमोथा, कूट, लोध, हुरहुर, मैनसिल और चच को गोमूत का प्रयोग करें।

प्रमेही को यव का अपूर्प पुआ बनाकर खिलाएँ एवं यव के अन्य पदार्थ बनाकर खाने को दें। कूठ, कुथली का भी अनेक प्रकार से अपूर्प आदि बनाकर दें। बोजन में मूंग एवं कुथली की दाल, पुरानी शाली चाल का भात दें। हरे विक्क एवं कक्क शाक खाने को दें। तिल, सहिजन, बहेड़ा एवं इंगुड़ी के तेल का प्रयोग करें। राजयक्षमा के रोगी को भोजन के लिए एक वर्ष का पुआ यव एवं गेहूँ की रोटी तथा मूंग की दाल दें। जंगली पशु एवं पक्षियों के मांस का रस भी दें।

श्वास कास रोग में रोगी को भोजन के लिए कुथली, मूंग, सूखबेर, सूखी मूली एवं जंगली पशु-पक्षियों के मांस से पुआ बना लें। उसे दधिये में भिगो दें और उसमें अनार का रस, बिजों नीबू का रस, मधु, मुनक्का, सांठ, मिर्च, नींबर मात्रा के अनुसार मिलाकर बनायें।

1. गोधूमशालयो मुद्राम ब्रह्मस्थिरसिद्धभया।
   पंचकोलं जांगलाश्च निम्ब्धियं: पटोलकाः।।
   ‘मातुलप्रसाजिज्ञशुभमूलकसौन्यवा।
   कुणिनां च तथा शस्तं पानार्थ खरिदोबदकम्।।
   मसूर मुद्रां गुपार्थ भोज्या जीर्णस्वच्छ शालयाः।।
   निम्ब्धर्मांको शाकाँ जार्लानां तथा रसं।।
   विडंग मरिचं मुस्तं कण्ठलं लोधं सुवर्षिका।।
   मनं: शिला वचा लेपः कुणिनां मूतपेषितः।। अनिन्पुराण (अध्याय 279/13-16)

2. अपूपकुणठकृतामृन्दासंहिन्नाः हिताः।
   यवान्विकृतितमृंदुगाः: कुलत्था जीर्णशाल्यः।।
   तिक्कलक्षणं शाकानिन तिक्कानि हरितानि
   तेलानि तिलिस्युकविभीतकं दानि च।।
   मुद्राः सधवगोधुमा धान्यं वर्गस्थितं च यत्।।
   जंगलस्प मस: शस्तो भोजने राजयक्षणाम्।। अनिन्पुराण (अध्याय 279/17-19)
दें। जवा, गेहूँ तथा वासमती चावल भी खाने को दें। श्वास एवं हिंकका रोग में रोगी को जो पेया मण्डहेद बनाकर या घूत पकाकर या काढा बनाकर दें।

शोध रोग वाले के भोजन के लिए, पुराना जवा, गेहूँ और वासमती चावल के सूखी मूली, कुथली, पुनर्नवा की जड़ तथा जंगली पशु पक्षियों के मांस रस से पका कर दें।

बातरोगिये के लिए पुराना जवा, गेहूँ तथा वासमती चावल का भात और जंगली पशु-पक्षियों का मांस रस भोजन के लिए दें। मूंग की दाल पकाकर उसमें आँवला, खजूर, मुनकका और बेर डालकर दें। मधु, धूत, मछा वक्रित दुध एवं नीम, पिल्ले, पापड़ा और अदृश्य का निरन्तर सेवन करावें। हुद्य रोग वाले को रोधक औषधि (जुलाब) दें।

1. कुलत्थमूलक कोलभूमिलजानेः शुष्कमूलकजाजाले।
   पूर्णाविकरैः सिद्धीदिनाकामसाधिते॥
   मातुलुकःसोकेशकालवशोंषाधितस्फुटः।
   यथागूढःमालकालवैहृिजयेष्ठवस्वासकाशिनम् ॥
   दशामूल बालासनाकुलतैःसूतरुपसाधिता॥
   पेया गूढःसवाधः श्वासहिंककानिवरणा॥।

अरिपुराण (अध्याय 279/20-22)

2. शुष्कमूलक कोलत्थमूलजालजी रसः।
   यथागूढःमालकालवैहृिजयेष्ठवस्वासकाशिनम् ॥
   शोधवानस पथ्यां घादे गुडनागरम् ॥
   तत्रत्र दशासाधनानां ग्रहणीरोगनाशनाः॥।

अरिपुराण (अध्याय 279/23-24)

3. पुरानायगूढःमालकालवैज्ञानी रसः।
   मुद्गामलकन्जूरसमठीक वदराणी च॥
   मधु सर्वः प्रयत्न कियोंस्वर्पः विवणम्
   तत्रत्र दशासाधन शस्त्रनां सततः वातरोगधिनाः ॥
   हुद्योगियो विरेच्यस्तु पिपिल्या (ल्यो) हिंकिनां हिताः।

अरिपुराण (अध्याय 279 /25-27)
सतिर (बवासीर) के रोगी को जवा के बने विभिन्न प्रकार के आहार मांस रस के साथ दें। हुर्हुर के पत्ते का शाक खिलावें। कचूरे एवं हरडा का चूर्ण मंड से तथा मधे से जल के साथ दें।

धान का लावा, सतुआ, मधु, हल्का मांस, फाल्सा, मोटा लावा, पक्षी का मांस, मयूर का मांस और पना ये सब वमन रोग के नाशक हैं।

विसर्जन रोग वाले को चाहिए कि पुराने गेहूं का जवा की रोटी बासमती चावल का भात, मूंग अरहर मसूर की दाल में सेन्था नमक घृत, सोठ मुनकका, आमला और बेर को डालकर भोजन करें सेंधा नमक से लेकर ये सब चीजें तथा तिल जंगली पशु पक्षियों के मांस रस में डालकर आहार भोजन करें।

वात रोग को नाश करने के लिए मिश्री, मधु, मुनकका, अनार को जल में घोलकर पीये। लाल, चावल, साठी का चावल गेहूं जौ की रोटी भोजन करें, मूँग की दाल दें जो भी घूल

1. मुस्ता सौंचवलांकजी मध्य शास्त्र मदात्यये।
   सक्षीमप्रययास लाक्षां पिवेच्छ क्षतिवाकः।।
   अनिपुरण (अध्याय 279/28)

2. याबृत्त विकृतरचास शाकं सौरचालं शती।
   पथ्या तथैवार्जस यन्मण्डस्ताः च वारिणा।।
   मूर्त्रकृच्छे च शास्त्राः स्यु: पाने मण्डसुरावर्याः।।
   अनिपुरण (अध्याय 279/30-32)

3. लाजाः सकृष्टस्तथा क्षाद्रे शून्त्यं मांसं परुषकर्म।
   वार्ताकुलाव शिशिनशिशिर्मस्य: पानकनि च।।
   शाक्य्यत्र तौपपयस्ती केवलोक्षेण शूरेंधिपि व।
   तृषाछन्मुस्ताङुहृगुप्तीका वा मंढे धृताः।।
   अनिपुरण (अध्याय 279/33-34)
आहार हो उसे दें। मकोप वेत के अग्रभाग के पते, बलुआ और हुरहुर के पते का साग दें। जल में मधु मिश्री मिलाकर दें। नासा रोग में दुर्विदु का नस्य लें।

मंगरेया के रस में अथवा आरका के रस में पकाया तेल सम्पूर्ण मस्तिष्क के रोगों में तथा कृति जन्म रोगों में लाभकारी होता है। ढप्पे जल पीने से ढप्पे ही अन्य पान करने से एवं तिलों के विशेष भक्षण से दाँत दुःख हो जाते हैं एवं सन्तुष्टि अधिक मिलती है। तिल के तेल से गंधुर (कुल्ला) लेने से दाँत अत्यन्त दुःख हो जाते हैं। जहाँ क्रमिनाश करना हो वहाँ विड़दग चूर्ण तथा गोमूर्त का प्रयोग खाने-पीने के लिए तथा लेप के लिए भी प्रयोग करना चाहिए।

शिरोरोग के विनाश के लिए सिराध एवं उष्ण भोजन करें सिर पर आँख का लेप अथवा का लेप उत्तम होता है। कर्णशूल में तैल या बकरे का मूत्र कान में डालें अथवा शुक्ल (सिरका) कान में डालें।

शिवत्रं (सफेद कोड) को दूर करने के लिए गुरु, लाल चन्दन, लाही और मालती के पुष्प की कली इन सब को पीकर बती बना लें उसे समय पर धिककर लगाने पर सम्पूर्ण रिक्त नष्ट हो जाते हैं।

प्योस (सोठ, सिर्दि़ और पिपर) स्रिकला (आँख लड़ा और बढ़ा) तुलिया और रंसाजन को जल से वारीकी पीकर आँख में अंजन लगाने से नेत्र के सम्पूर्ण रोग नष्ट

1. अनिपुराण (अध्याय 279/17-19)
2. धानीकलत्रायासिद्ध च शिरोपदेशाः।
   शिरोगिनाशाय सिराधुः। भोजनम्।
   तेलं वा बस्तमूलं च कर्णपूर्णमुतम्।
   कर्णशूलिनाश वर्द्धयोक्तिः वों ब्रजः।
   गिरिव्रत्मन्वं लाल्सा मालतीकल्लिकां तथा।
   संयोज्य या कृत्वा वर्त्तं क्षत्रियबहरी तुस्तः।। अनिपुराण (अध्याय 279/43-45)
हो जाते हैं। लोध की धी में भूनकर कांजी और सेंधा नमक से पीसकर आंख में लगाने पर नेत्र के सभी रोग दूर हो जाते हैं। गेरू चन्दन को पीसकर नेत्र के ऊपर लेप करने से नेत्र में अधिक लाभ होता है तथा निरन्तर त्रिफला के सेवन से नेत्ररोग दूर हो जाता है।

जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति रात्रि में मधु और घृत को (असमान मात्रा में) खाणें तो आयु लाम्बी हो जाती है।

इसी तरह सतावरी के रस में घृत या दुर्ग फकर कर पीने से वह घृत वृथ्य हो जाता है। (मैथुन की शक्ति बढ़ जाती है) केवाढ़ का बीज, उद्द दूध और घृत वृथ्य कहे जाते हैं। मुलहटी मिलाकर त्रिफला के ब्राह्मण सेवन पूर्व के कहे की शक्ति आयुष्यक है। मुलहटी के रस के साथ त्रिफला का सेवन करने से चमड़े पर ही झुरियाँ और बाल का सफेद हो जाना दूर हो जाता है। वच औषधि से घृत पकाकर सेवन करने से विशेष रोगों का नाश हो जाता है। घृत बुद्धिप्रद है और अनेक अर्थों का साधन है। बला के कक्ष और कान्ढे से सिद्ध घृत आँख में अभ्याजन के लिए हितकारी है।

1. व्योष त्रिफलया युक्तं तुथकं च तथा जलम् ।
सर्वकारसुमन तथा चैव रसाधजनम् ॥
आश्वोत्न विनाश्याय सर्वनेत्रायहिततम् ॥
गिरिन्धनुषरेणैैव वहिनेषु शर्यते।
गिरिमुच्छः नेत्रायद्वितार्तात त्रिफला शीतोत्सवात। अनिन्युराण (अध्याय 279/46-48)

2. रात्रि तु मधुपिभ्या दीर्घमायुजिजीविशुः।
शतावरीर्शस्तिठ्ठी वृथ्यो श्रीरघुरूपस्मृती।
खलविखमि मापावः वृथ्यो श्रीरघुरूपस्मृता तथा। आयुष्य त्रिफला झेय वृत्तमनमथुराविवता।
मधुकारिसुपेता बलीपिलिताशिनी।
वच भृद्धिप्रतं तवं भूतकोषिविज्ञानम्।
कयं बुद्धिप्रद तवं तथा सर्वसाधानम्।
कलाकंकक्ष्यायेन सिद्धमन्यजने हितम्।
अनिन्युराण 279/49-52
रासना और कदसरैया द्वारा सिख दिया हुआ तेल सम्पूर्ण वात-व्याधियों को दूर
करने वाला है। जो अन्य काव्यिक लाने वाला न हो उसे फोड़े वाले रोगी को देना चाहिए। ब्रान
फोड़ा को पकाने के लिए सत्तू का फिंड जो कांजी से सान कर बना हो वह हितकर है। पके
फोड़े के सेवन के लिए और घाव को भरने के लिए नीम का चूर्ण (नीम के वटकल का चूर्ण)
हितकारी है।

उसी तरह सूई के द्वारा उपयोग करे (सूरी बेध करे) विशेषरूप में (बलिकर्म का
अर्थ है कि भोजन का) कुछ भाग देवो तथा पितरो आदि के नाम पर निकाल कर बाहर
रख दें जिसे कौं, कुश्ती आदि खा जाते हैं इसी प्रकार सूतिका स्त्री (बच्चा पैदा होने ।
मास तक के प्रायः बच्चों की माँ को सूतिका कहते हैं। का भी जीवाणुओं से सदा रक्षा
करने चाहिए। यह रक्षा हितकारी होता है।

नीम के पत्तों का चबाना छोट के काटे की दवा है। बाल को काले करने के लिए
झाड़ने के बचाने के लिए नीम के पत्ते को एक में महीने पीस कर लें राख करें। इसी तरह
पुराणा तेल और धूत तथा जवा भी केश के हितकारी है। बिचिं दे काटने पर मयूरपत्री
और धूत का धूप देना चाहिए तथा मदार के दूध के पलाश का बीमा पीस कर लें करें।

1. रासनासहसहर्विचिप्ति तेल वात विकारिणाम्।
अनभिस्मिनि चच्चात्रित तदनुष्ठ अभास्तते॥
सत्तूपिण्डी तथावाचरं तापनाय प्रारम्भते॥
पवस्त च तथा भैरे निम्बूरुण्या च रूपने॥
अनिपुराण 279/53-54।

2. तथा सूचुपुरावरुच बलिकर्म विशेषत।
सूतिका च तथा रक्ष व्रतमानां तु सदा हिता॥
अनिपुराण (अध्याय 279/55)

3. भक्षण निम्बूरुणां सर्पदस्य भेषजम।
तालिमिश्वर केस्व जीर्ण वै वव घृतम्॥
धूपो वृत्तिकदस्य शिखरप्रभुतिनेता वा।
अर्कपौरेन संपित्त लोपोबीजं पलाशाणम्॥
अनिपुराण (अध्याय 279/56-57)
सर्वरोगहराप्योषधानिः

शारीरिक, मानसिक, आग्नेयक तथा सहज व्याधियों होती हैं। ज्वर कुष्ठ आदि शारीरिक और क्रोध आदि मानस व्याधि कही जाती हैं। चोर प्रहार या अन्य किसी प्रकार के बाह्य अभिघात के कारण जो व्याधि होती है। उसे आग्नेयक व्याधि कहते हैं। भूख, जरा (बुड़ापा) आदि व्याधियाँ स्वाभाविक व्याधि कही जाती हैं।

शारीरिक एवं आग्नेयक व्याधियों के नाश के लिए रविवार के दिन घुट गुड़ और सोना का ब्राह्मण की पूजा करके उसे दान दें।

उष्ण जल से स्नान करने पर शरीर की थकान दर कम हो जाती है। हृदय से श्वास के वेग को न धारण करें। व्यायाम से कफ तथा मर्दन से वायु का नाश होता है। स्नान से पित्त शान्त होता है। स्नान के बाद धूप प्रिय लगती है। घूपसेवन कठिन श्रम आदि के पूर्व में ही व्यायाम करना शेष होता है।

1. त्रिवृद्धि रचने श्रेष्ठा वमन स्नान तथा। वसित्विषेको वमन स्नान तेलं सर्पिन्तथा मधु। वातपितबलाषानं क्रमणे परम्पौष्ठम् ॥ अभिनुपुराण (अध्याय 279/63)
2. शारीरिकमानासागुनसहजाः व्याधयोमताः। शारीरिक ज्वरकुष्ठाषां। क्रोधादा मानसा मताः॥ अभिनुपुराण (अध्याय 280/1)
3. आग्नेयवी विधातोद्वा सहज भुजजराद्वा। शारीरिक-तुनाशाय सूर्यवरे घुट गुढ़म ॥ अभिनुपुराण (अध्याय 280/2)
4. स्नान पिताधिकं हन्यातस्वात चासत्तयः प्रियाः। आत्मक्षेत्रकर्माद्वी क्षमत्यायम् उत्तरः॥ अभिनुपुराण (अध्याय 280/3)
वृक्षायुर्वेद

वृक्षायुर्वेद को कहते हैं। पाखरी (पाकरी) उत्तर दिशा में पूर्व में बरागत, दक्षिण में आग्र और पश्चिम में पीपर शुभ है।

दक्षिण में काटे वाले वृक्ष (बबूर बेर आदि) समीप शुभ है। ग्रह के पास उद्यान होना चाहिए। उद्यान में तिल होना चाहिए या फूल वाले वृक्षों का रोपण करना चाहिए। रोपड़ के पूर्व ब्रह्मण और चन्द्रमा की पूजा कर लें। वृक्षों के आरोपणों ध्व (तीनों उत्तरा रोहणी, रेवती) अभिजित (यह मूहूर्त का नाम है दोपहर को नित्य आता है) हस्त पूर्वाशाख शतभिष मूल नक्षत्रों में करना चाहिए। उद्यान में नदी-नदी के प्रवाह का प्रवेश करावे अथवा एक बाली बनवा दे।

पुष्करणी (जलाशय) बनवाने के लिए हस्त, मधा, अनुराधा, अशिवनी, पुष्य, घनिष्ठा, शतभिषा और तीनों उत्तरा उत्तम माने जाते हैं। जलाशय बनवाने से पूर्व करण विषु और पर्जन्य की पूजा करे तब कार्य प्रारम्भ करें। नीम, अशोक कोपारी, शिरीप, प्रियंगु, कदली (केश) जामुन वकुल और अनार के वृक्ष लगाये। वर्षा के प्रारम्भ में सांयकाल

1. वृक्षायुर्वेदमश्यायस्ये पलक्ष्चोतरत: शुभः।
   प्राग्वतो याम्यतस्वाम् आयेषेश्वतः क्रमेण तुष।।
   अनिपुराण (अध्याय 282/1)

1. दक्षिणानि दिशामुत्प्रवा समीपे कण्टकदुःः।
   उद्यान गृहवासे स्थातिलिन्वासत्य पुष्पिन् ॥
   प्रह्यात्रोपपेयदृक्षाशिजं चतुः प्रपूजय च।
   ध्वाणा पञ्च वायत्यं हस्तं प्रजेशनेश्वायम् ॥
   नक्षत्राणि तथा मूलं शरणेन दुमोपः।
   प्रवेशयेत्रदीवाहन्युप्करिण्यां लु करेत् ॥
   अनिपुराण (अध्याय 282/2-4)
और प्रातःकाल वृक्षों का आरोपण करें और शीतकाल में दिन के अन्त में वृक्षारोपण उत्तम होता है। वर्षाकाल में रात्रि में वृक्ष लगाना उत्तम है। पृथ्वी के सूखे जाने पर वृक्ष को सींचना चाहिए।

वृक्षों का एक से दूसरे से अन्तर बीस हाथ पर उत्तम माना जाता है सोलह हाथ का अन्तर है, एवं बारह हाथ का अन्तर अधम माना जाता है। क्योंकि घनी वृक्षों में फल नहीं लगता है वृक्षों के आरोपण के लिए पहले शास्त्र से जानिए पर गढ़ बनाकर उसकी शुद्धि कर लें।

जिस गढ़े में वृक्ष लगाया जाय उसे जल से भर दे और उसमें वायादिंग का चूर्ण घृत से लपेट कर छोड़ दे इससे भूमि शुद्ध हो जाती है। जिस वृक्ष का फल लगकर हड़ जाता है उसकी जड़ में कुलथी उदड़, मूंग, तिल और यव के चूर्ण में मिश्रित शीतलजल से सींचन करे तो सदा पुष्प और फल लदा रहेगा। इसी तरह भे बकरी लेडी का चूर्ण जवा का चूर्ण और तिलका चूर्ण घृत से सान कर शीतल जल में मिला दें और

1. हस्तौ मध्य तथा मैत्रमाय पुष्पं सवासवम् ।
   जलाशयसमरणे वारणं चोतरार्यम् ॥
   समपूर्ण करुणां विषुं पञ्चन्य तत्तसमागरे।
   अरिष्टाशोक्यं नागशिरीषा: स्पिन्गवः॥
   अशोकः कदली जन्मुद्वर बकुलदाहिना॥
   सां प्रातस्तु धर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे॥
   वर्षारात्री भुवः सेकलया सोपिता दुमा॥

अनिपुराण (अध्याय 282/5-7)

2. उत्तमा विशालिशसा मध्या: श्रोष्यान्तः॥
   स्थानालस्थानान्तः कार्य वृक्षाणां ज्ञातार्यम् ।
   विफला: स्पुर्धन्ता वृक्षां: शलेषणांस्य विशोधनम् ॥

अनिपुराण (अध्याय 282/8-9)
उसमें वृक्ष को सींचने से फल लगते हैं।

सात रात्रि तक जल में गोमांस रख दे और उसमें वृक्ष को सींचने से वृक्ष पुष्प फल से लदें रहते हैं। मखली के धोवन (जल) से सींचने पर वृक्षों का दोहद है (गर्भित होते हैं) और सामान्य रूप से सभी वृक्षों के रोगों को नष्ट करने वाला है।

नानारोग हराण्योषधानि

व्याघ्र, कचूर, हरदी, दारू हरदी तथा इन्द्रजव का कांडा माता के दूध के दोष से उत्पन्न बच्चों के सब प्रकार के अतिसार को दूर करता है।

काकड़िसिंगी पीपरी और अतिस को बराबर की मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें उसमें से मात्रा के अनुसार चूर्ण को मधू से बालक को घटाने पर सभी अतिसार दूर हो जाते हैं। (इसकी मात्रा 1-6 माशों तक बल के अनुसार है) केवल अतीस ही अकेला बच्चों के कास वमन और ज्वर का नाशक है।

1. विद्रृत्तपुष्पकान्तेचन्द्रयेच्छीतवरिणा।
   फलनाशो कुलतैंशद एवंदुपुर्वित्तीयस्तम्भोऽसः॥
   घृतशीतपापः सेल्यः फलपुष्पाय सर्वदा।
   अविकाजराकृच्छूर्ण घवघृच्छुर्णतिलामिचि।
   अग्निपुराण (अध्याय 282/10-11)

2. गोमास्सुदकं चौव सप्तरात्रेन निधापयेत्।
   उल्लेख सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृज्जितः॥
   मेत्याम्बसद वु सेकन्व वृत्तियं शार्ज्जिनः।
   विद्रृत्तांगुलोपेत्त मात्य भूमा हि दोहम् ॥
   अग्निपुराण विषोषण वृक्षाणाः रोगमद्वन्न ॥
   अग्निपुराण (अध्याय 282/12-14)

3. सिद्धश श्रीशायुमं वल्लकः क्वात्रिसमवम्।
   शिशोः सषुकितारशुष्टत्वद्वयोद्धेषु शास्त्रोऽसः।।
   अग्निपुराण (अध्याय 283/1)
   अग्निपुराण (अध्याय 283/2)
बच्चों को चाहिए कि बच के सेवन घृत और दुध के साथ करें या कहीं तेरे के साथ सेवन करें अथवा भीड़ या शंखुपुष्प दुध के साथ हो तो बच्चे की वाणी स्वरूप आयुवृद्धि और श्री की वृद्धि हो जाती है। वच अग्नि शिखा अद्वृत, सोठ, पीपरी, हरदी ओषधि को मुलहटी और सेन्द्रवचूर्ण के साथ बालक प्रातःकाल जल से ले तो वृद्धि की वृद्धि होती है।

1. वाले: सैत्या वचा साज्या सदुध्या साक्ष्य तैलुरुक।
वागिका शंखुपुष्प वा बाल: क्षीरविन्त्रां पिवेत् ॥
वा ग्रामसंयुक्तः बुधमेधा श्रीविधये शिशो:।
वचा हार्षिकेशा वासाशुश्रुभी कृशाशिणमयदम् ॥
सुविधा नौन्नवं बाल: प्रातःमेधाकरं पिवेत।
देवदार्शिक्षितुत्रपत्रययमुदाम् ॥
वचा: सकृष्णामुदवीकाकलः सर्वस्मृतीमीलः ॥

अर्निपुराण (अध्याय 283/3-5)
आठवाँ अध्याय
पर्यावरण एवं अत्यधिक
पर्यावरण रचना अन्योक्ति

मृत्यु के उपरांत मानव को क्या होता है? यह एक ऐसा प्रश्न है जो आदिकाल से ज्यो-का-त्यों चला आया है: यह एक ऐसा रहस्य है जिसका भेदन आज-तक संभव नहीं हो सका। आदिकालीन भारतीयों, मिसियों, चालियों, यूनानियों एवं पारसीयों के समक्ष यह प्रश्न एक महत्वपूर्ण जिज्ञासा एवं सस्मास्त्र के रूप में विद्यमान रहा है। मानव के भविष्य इस पृथ्वी के उपरांत उसके स्वरूप एवं इस विश्व के अन्त के विषय में भाँति-भाँति के मत प्रकाशित किये जाते हैं। जो महत्वपूर्ण एवं मनोरम है। प्रत्येक धर्म में इसके विषय में पृथक दृष्टिकोण रहा है। मृत्यु के उपरांत व्यक्ति की धिनति, आत्मा की अमरता, पाप एवं दण्ड तथा स्वर्ग एवं नरक के विषय की चर्चा से और दूसरे का संबंध है अपितु ब्रह्माण्ड, उसकी सृष्टि परिणति एवं उद्घाटन तथा सभी वस्तुओं के परम अन्त के विषय की चर्चा से। प्राचीन ग्रन्थों में प्रथम स्वरूप पर ही अधिक बल दिया गया है। किंतु आजकल वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले लोग बहुधा दूसरे स्वरूप पर ही अधिक सोचते हैं।

सामान्यतः: मृत्यु विकाश एवं भयावह समझी जाती है: यद्यपि कुछ दार्शनिक मनोवृत्ति वाले व्यक्ति इसे मंगलप्रद एवं शरीरसिद्धि दामी गृह में आत्मा की मुक्ति के रूप में ग्रहण करते हैं। मृत्यु का भय बहुतों को होता है। किंतु यह भय ऐसा नहीं है कि उस समय अर्थात मरण काल के समय की सम्भावित पीड़ा से वे आक्रान्त होते हैं, प्रत्युत्त उनका भय उस रहस्य से है जो मृत्यु के उपरांत की घटनाओं से संबंधित है तथा उनका भय उन भावनाओं से है जिनका गम्भीर निर्देश जीवनोपरांत सम्मानित एवं अचिन्त्य परिणामों के उपभोग की ओर है।

मृत्यु के विषय में आदिमकाल से लेकर सभ्य अवस्था तक के लोगों में भाँति की
धारणाएँ रही हैं। कठोरनिष्द (1/1/20) में आया है - ‘जब मनुष्य मरता है तो एक सन्देह उत्पन्न होता है, कुछ लोगों के मत से मृत्युपरान्त जीवात्मा की सत्ता रहती है।1 किन्तु कुछ लोग ऐसा नहीं मानते।’ नचिकेता ने इस भ्रम को दूर करने के लिए यम से प्रार्थना की है। मृत्युपरान्त जीवात्मा का अस्तित्व मानने वालों में कई प्रकार की धारणायें पायी जाती हैं।2 कुछ लोगों का विश्वास है कि मृत्युकर्मों का एक लोग जहाँ मृत्युपरान्त जो कुछ बचा रहता है वह जाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि सुकृत्यों एवं दुःसुकृत्यों के फलस्वरूप शरीर के अतिरिक्त प्राणी विद्यमानांश क्रम से स्वर्ग एवं नरक में जाता है। कुछ लोग आवागमन एवं पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं।

ब्रह्मापुराण (214/34-39) ने ऐसे व्यक्तियों का उलेख किया है, जिन्हें मृत्यु सुखद एवं सरल प्रतीत होती है; न कि पीड़ाजनक एवं चिंतायुक्त है।3 वह कुछ योग है - जो झूठ नहीं बोलता, जो मिथ्र या स्नेही के प्रति कृत्यन्त नहीं है जो आस्तिक है, जो देवपुरा-परायण है और ब्रह्माण्ड का सम्मान करता है तथा जो किसी से ईर्ष्या नहीं करता वह सुखद मृत्यु पाता है।

वायु पुराण (19/1-32), मार्कण्डेयपुराण (43/1-33) या (40/1-33), लिंगपुराण (पूर्वाधि, अध्याय 91) आदि पुराणों में मृत्यु के आगमन के संकेतों एवं चिन्हों की लम्बी-लम्बी सूचियाँ मिलती हैं। जब अंगुलियों से बन्द करने पर कानों में स्वर की धमक नहीं झाली होती या ओँख में प्रकाश नहीं दीखता तो समझना चाहिए कि मृत्यु आने ही वाली है। अन्तिम दो लक्षणों का वायुपुराण (18/28) एवं लिंगपुराण (युवाधि 91/24) ने सबसे बुरा माना है।4 जब यज्ञमन के मरने का भय हो जाय तो यज्ञशाला में पृथ्वी पर बालू बिखा देनी चाहिए और इस पर दर्श फैला देना चाहिए जिनकी नोक दक्षिण की ओर होती है, मरणासन दायरे ।

1. कठोरनिष्द (1/1/20)।
2. सी.ई. वृहत्यामी का इम्पार्टेल मैन, पृष्ठ -11।
3. ब्रह्मापुराण (214-34-39)।
4. द्वे चात्र परमेष्टिन्द्रे एतदूपम परं भवेत्। घोषः न श्रृणुपालकर्मों ज्योतिर्नित्रे न पश्यति ।।
     वायुपुराण (19/7) नर्मण व श्रमण दृढ्वाव मन्थानपुरा धुरुपुरुष्यपुरस्थिकम्।
     लिंगपुराण (पूर्व भाग 91/19)।
कान में आयुषः प्राणं सन्तनुं से आरभ होने वाले अनुबाक का पाठ (पुत्र या किसी अन्य संबंधी
द्वारा) होना चाहिए।

जब कोई व्यक्ति मृत्युप्राय हो जाय, उसकी आँखें बंद हो जाय वह खात के नीचे उतार
dिया गया हो, उसके पुत्र या किसी संबंधी को चाहिए कि निम्न प्रकार कोई एक या सभी प्रकार
kे दस दान करायें - गौ, भूमि, तिल, सोना, घुट, वस्त्र, धान्य, गुड़, रजत (चाँदी) एवं नमक।
ये दान गया श्राद्ध या सैकड़ों अवशेषों से बढ़कर है। संकल्प इस प्रकार का होता है - 'अभ्युदय
(स्वर्ग) की या पापमृत्ति के लिए में दस दान करँगा' दस दानों के उपरान्त उत्कान्तित-धेनु (मृत्यु
को ध्यान में रखकर बछड़े के साथ गो) दी जाती हैं और इसके उपरान्त वैतरण का दान दिया
जाता है। भरणास्र व्यक्ति को स्नान द्वारा या पवित्र जल से मार्जन करके या गंगाजल पिला कर
पवित्र करता है स्वयं स्नान संयोगे से पवित्र हो लेता है, द्वीत जलाता है, गणेश एवं विष्णु की
पूजा करता है। भरणास्र व्यक्ति को या पुत्र को या सम्बंधी को सर्वप्राच्यस्विध करना पड़ता है। वह
क्षोर कर्म करके स्नान करता है, पंचगव्य पीता है, चन्दन लेप एवं अन्य पदार्थों से एक ब्रह्मण
kो सम्मानित करता है, यो पूजा करके या उसके स्थान पर दिये जाने वाले धन की पूजा करके
संचित पापों की ओर संकेत करता है और बछड़ा सहित एक गो का दान या उसके स्थान पर धन
का दान करता है।

गरुड पुराण (2/4/7-9) ने महादान संज्ञक अन्य दोनों की व्यवस्था दी है, यथा -
तिल, सोना, तोहा सैत प्रकार के अतुल, धूमि, गौ, कुछ अन्य दात भी है यथा - छाता, चन्दन,
अंगूठि, जलपात्र, आसन, भोजन जिन्हें पदार्थ कहा जाता है। गरुड पुराण (2/4/36) के मत
से यदि मरणासन्न आतुर संयास के नियमों के अनुसार संयास ग्रहण कर लेता है तो वह

1. गरुड पुराण (प्रेत खण्ड 4/4)।
2. गरुड पुराण (प्रेत खण्ड 4/6) में आया है - नदी वैतरणी तत्वं दयाघातरणी च गाम्
कः कृपया सन्तन सकृपणां सा वै वैतरणी स्मृता ॥। और स्कन्द पुराण (6/22/32-
33) जहाँ वैतरणी की चर्चा है, पृष्ठकले प्रयोगमिति में धेनु ब्रह्मणाय वै। तस्या: पुत्रं
समाभिषेकः ते तत्वत ्ते तथा नृप॥।
3. गरुड पुराण (2/4/7-9)।
आवागमन (जन्मर) से छूटकारा पा जाता है।

आदिकाल से ही ऐसा विश्वास रहा है कि मरते समय व्यक्ति जो विचार रखता है, 
उसी के अनुसार दैनिक जीवन के उपरान्त उसका जीवात्मा आक्रान्त होता है (अन्त या मति: 
सागरति:) अतः मृत्यु के समय व्यक्ति को सांसारिक मोहमाया छोड़कर हरि या शिव का समरण 
करना चाहिए।

पुराणों के आधार पर कुछ निबन्धों का ऐसा कथन है कि अन्तकाल उपस्थित होने पर 
व्यक्ति को यदि सम्भव हो तो किसी तीर्थ स्थान (यथा गंगा) में ले जाना चाहिए। शुद्धि तत्व (पृ. 
299) ने कुर्म पुराण को उद्घृत किया है - गंगा के जल में, वाराणसी के स्थल या जल में, 
गंगासागर में या उसकी भूमि, जल या अंतरिक्ष में मरने से व्यक्ति मोक्ष (संसार से अंतिम छूटकारा 
pाता है।)

स्कन्दपुराण में आया है - गंगा के तटों से एक गत्यतिः (दो कोस) तक क्षेत्र (पवित्र 
स्थल) होता है, इतनी दूर तक दान, जप एवं होम करने से गंगा का ही फल प्राप्त होता है जो 
इस क्षेत्र में मरता है वह स्वर्ग जाता है वह पुनः जन्म नहीं पाता।

यदि कोई अनार्य देश (कीकट) में भी शालग्राम से एक कोश की दूरी पर भी मरता 
है वह बैकुण्ठ (विष्णु लोक) पाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति तुलसी के कन में मरता है वह मरते 
समय जिसके मुख में तुलसीदल रहता है वह करोड़ों पाप करने पर भी मोक्ष प्राप्त करता है।

1. गरुड़ पुराण (2/4/37)।
2. पद्म पुराण (547/262) - 'मरणे या मतिः पूंसां गतिर्मवति तादृशी।'
3. कुर्म पुराणम् - गंगायां च जले मोघो वाराणस्यां जले स्थले। जले स्थले चान्तरिक्षे 
गंगासागरसंगमे ।।
4. स्कन्द पुराण
5. लिंग पुराण- शालग्रामसमीपे तु क्रोशामात्रं समन्तः। कीकटपिमृतो याति बैकुण्ठ 
भवनं नरः।।
6. वैष्णवमृते व्यासः-तुलसी कानने जन्तोत्तरति मृत्युभवेतुः कचित्। स निर्भरत्त्वं नरं 
पापी तीलोम्बः हरि विशेषः।। प्रयायकाले यस्याये दीयते तुलसीदलम्। निर्विरा याति 
पक्षीन्द्र पापकोपपितुतोपि सः।।
अन्न ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण सूर्य के छः मासः जब ध्रुपदनी इन कालों में मरते हैं तो ब्रह्मलोक जाते हैं। धूम, रात्रि, कृष्ण पक्ष, दक्षिणायन सूर्य के छः मासों में मरने वाले भक्तगण चन्द्रलोक में जाते हैं और पुनः लौट आते हैं।

अन्त्येष्ठि एक संस्कार है। यह द्विजों द्वारा किये जाने वाले सोलह या इससे अधिक संस्कारों में से एक है।

ऋग्वेद (90/16) -

(1) "हे अन्न। इस (मृत व्यक्ति) को न जलाओं चतुर्दिक इसे न हुलाओऽ, इसके चर्म (के भागों को) इतस्ततः न फेंकोऽ; हे जातेवा (अन्न)! जब तुम इसे भली प्रकार जला तो तो इसे (मृत को) पितारों के यहाँ भेद दो।

(2) हे जातेवा! जब तुम इसे पूर्णरूपिण जला तो तो इसे पितारों के अधिन कर दो। जब यह (मृत व्यक्ति) उस मार्ग का अनुसरण करता है जो इसे (नव)जीवन की ओर ले जाता है, तो यह वह हो जाय जो देवों की अभिलाषाओं को ढूँढता है।

(3) तुम्हारी ओऽखों सूर्य की ओर जायें तुम्हारी सांस हवा की ओर जाय और तुम अपने गुणों के कारण स्वर्ग या पृथिवी को जाओ या तुम जल में जाओ यदि तुम्हें वहाँ आन्त्र मिले (या यदि तुम्हारा यहीं भाग्य हो तो) अपने सारे अंगों के साथ तुम औषधियों (जड़ी-बूटों) में विराजमान होओऽ।

(4) हे अन्न, (इस मृत को) पितारों की ओर छोड़ दो, यह जो तुम्हें अर्पित है, चारों ओर धूम रहा है। हे जातेवा यह (नव) जीवन प्राप्त करें और अपने हत्यों को बढ़ायें तथा एक नवीन (बायव्य)शरीर से युक्त हो जाय।

(5) हे अन्न तुम उस जल को जिसे तुमने शववाह में जलाया, (जल से) बुझा दो। कियाम्बु (पौथा) यहाँ उगे और दूर्वाग्यास अपने अंकुरों को फैला हुई यहाँ उगे।

1. ऋग्वेद - (10/16)।
सोमया या सत्र के लिए दीक्षित व्यक्ति के (यज्ञ समाप्ति के पूर्व ही) मर जाने पर जो कृत्य होते थे उसका वर्णाश्वलायण-शौलसूत्र (6/10) में हुआ है। इसमें आया है कि - "जब दीक्षित व्यक्ति मर जाता है तो उसके शरीर को वे तीर्थ से ले जाते हैं उसे उस स्थान पर रखते हैं जहाँ अन्नभू (सोमया या सत्र यज्ञ की परिसमाप्ति पर स्थान) होने वाला था और उन्हें उन अलंकरणों से सजाते हैं जो बहुधा शव पर रखे जाते हैं। वे शव के सिर, चेहरे एवं शरीर के बाल और नख काटते हैं। वे नलद (जटामासी) का लेप लगाते हैं और शव पर नलदों का हार चढाते हैं। कुछ लोग अंतःहिंजों का काटकर उसने मल निकाल देते हैं और उसमें पृष्ठायु (मिश्रित पृथ्वी एवं दही) भर देते हैं।" वे शव के पाव के बराबर वस्त्र का एक नवीन तुकड़ा काट लेते हैं और उसके शव को इस प्रकार टक देते हैं कि अंचल पश्चिम दिशा में पड़ जाता है (शव पूर्व में स्थान रहता है) और के पाँच खुले रहते हैं। सृष्टि की श्रृंग अर्थात् अर्थमों पर रखी रहती है। शव को वेदी से बाहर लाया जाता है और दक्षिण की ओर ले जाते हैं, घर्षण से अभिन उत्पन्न की जाती है और उसी में शव जला दिया जाता है। शमशान से लौटने पर उन्हें दिन का कार्य समाप्त करना चाहिए। दूसरे दिन शत्रूंगों का पाठ, स्तोत्रों का गायन एवं संस्तरों (सामवेत रूप में मन्त्रपाठ) का गायन बिना दुहारे एवं बिना ‘हिम’ स्वर उच्चारित किये होता है। होता शमशान के पश्चिम में, अध्वर्यु उत्तर में, उदगाता अध्वर्यु के पश्चिम और बहन के दक्षिण में। इसके उपरान्त धीमें स्वर में ‘आयं गौ: पश्चिमक्रमित से आरम्भ होने वाला मंत्र गाते हैं। गायन समाप्त होने के उपरान्त होता अपने बाँधे हाथ का शमशान की ओर करके तीन परिक्रमा करता है और बिना ‘ओम् का उच्चारण किये उदगाता के गायन के तुर्न पश्चात धीमें स्वरमें स्तोत्रिय का पाठ करता है और निम्न मंत्रों को, जो यम एवं याम्यायनो (ऋषियों एवं प्रणेताओं) के मंत्र है, कहता है - इसके उपरान्त किसी चढ़े में अस्थियाँ एकत्र करनी चाहिए, चढ़े को तीर्थ की तरफ ले जाना चाहिए और उस आसन पर रखना चाहिए जहाँ मृत यज्ञमान बैठता है।

आश्वलायण गृहसूत्र का कहना है - "जब आहितापिनि मर जाता है तो किसी को चाहिए कि वह दक्षिण-पूर्व में या दक्षिण-पश्चिम में ऐसे स्थान पर भूमि-खण्ड खुदवाये जो दक्षिण या

1. शतपथ ब्राह्मण (12/5/2/5)।
दक्षिण-पूर्व की ओर ढालू हो या कुछ लोगों के मत से वह भूमि खण्ड दक्षिण-पश्चिम की ओर भी ढालू हो सकता है। गढ़ा एक उठे हुए हाथों वाले पुरुष की लम्बाई का एक व्याम (पूरी बाँह तक) के बराबर चौड़ा एवं एक वितरित (बारह अंगुल) गहरा होना चाहिए।

1 इस स्थान से पानी चारों ओर जाता हो, अर्थात् स्मशान कुछ ऊंची पर होना चाहिए। यह सब उस स्मशान के लिए है जहाँ शव जलाये जाते हैं उन्हें शव के सिर के केश एवं नख काट देने चाहिए।

2 इसके उपरान्त विषम संख्या में बूढ़े (पुरुष और स्त्रियां साथ नहीं चलती) लोग शव को ठोकते हैं। स्मशान पहुँच जाने पर अन्त्येष्टि किया करने वाला व्यक्ति अपने शरीर के वामांग को उसकी ओर करके चिता स्थल की तीन बार परिक्रमा करते हुए उस पर शमी की ठहरी से जल छिड़कता है और दअपेत बीता विच सर्पतात।

पताका (अ 10/14/9) का पाठ करता है।

जो व्यक्ति यह सब जानता है, उसके द्वारा जलाये जाने पर घूम के साथ मृत व्यक्ति स्वर्ग लोग जाता है ऐसा ही (श्रुति से ) जात है। इसमें जीवा? (अ 10/18/3) पाठ के उपरान्त सभी (सम्बन्धी) लोग दाहिने से बाँधे घूमकर बिना पीछे देखे चल देते हैं। वे किसी स्थिर जल के स्थल पर जाते हैं और उसमें एक बार घुमकर लेकर और दोनों हाथ ऊपर की ओर करके मृत का नाम, गोट्र उच्चापित करते हैं, बाहर आते हैं, दूसरा वस्त्र पहनते हैं एक बार पहने हुए वस्त्र को निचोड़ते हैं और अपने कूस्तों के साथ उन्हें उत्तर की ओर दूर रखकर वे तारों के उदय होने तक बैठते हैं, जब सूर्यस्त तक एक अंश दिखाई देता है तो वे घर लौट आते हैं। घर लौटने पर वे पत्थर अगिन, गोबर, जौ, तिल एवं जल स्पर्श करते हैं, जहाँ अन्य कृत्य भी दिये गये हैं। यथा जल सन, तर्पण करना, बैलर को घूमा, आँख में अंजन लगाना, तथा शरीर में अंगाराग लगाना।

बराहपुराण के अनुसार पैराणिक मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए, अन्त्येष्टि कर्ता को चिता की परिक्रमा करनी चाहिए और उसके उस भाग में अगिन प्रज्वलित करनी चाहिए जहाँ पर सिर रखा हो।

1. आश्वलायन गृहसूत्र (2/7/5)
2. अ 10/49
आधुनिक काल में अन्तस्त्र एवं अन्य क्रिया की विधि सामान्यतः उपयुक्त आश्वलायनमृद्गसूत्र के नियमों के अनुसार या गुरुद्वारक (2/4/41) वर्णित व्यवस्था पर आधारित है।

ब्रह्मचारी को किसी व्यक्ति या अपने जाति के शव को ढोने की आज्ञा नहीं थी, किन्तु अपने माता-पिता, गुरु, आचार्य एवं उपाध्यय का शव ढो सकता था और ऐसा करने से उसे कोई कलम्ब नहीं लगता था। यदि कोई ब्रह्मचारी व्यक्ति उक्त पाँच व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी अन्य का शव ढोता है तो उसका ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य छोड़ दिया जाता है और उसे व्रलोप का प्रायश्चित करना पड़ता है जो लोग स्वजनातीय व्यक्ति का शव ढोते हैं उन्हें वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए, नीम की पत्तियाँ दाँत से चबानी चाहिए, आचमन करना चाहिए, अग्नि, जल गोबर, स्वेत सरसों का स्पर्श करना चाहिए: धीरे से किसी पत्थर पर पैर रखना चाहिए और तब घर में प्रवेश करना करना चाहिए। सपिष्टों का यह कर्तव्य है कि वे अपनी सम्बन्धी का शव ढोते, ऐसा करने के उपरान्त उन्हें केवल स्नान करना होता है, अग्नि को छूना पड़ता है और पवित्र होने के लिए घी पीना पड़ता है।

सपिष्ट-रहित ब्रह्मण के भूत शरीर को ढोने वाले की पराशर ने बड़ी प्रशंसा की है और कहा है जो व्यक्ति भूत ब्रह्मण के शरीर को ढोता है वह प्रत्येक पर एक-एक यज्ञ के सम्पादन का फल पाता है और पानी में दुबकी लगा लेने और प्राणायाम करने से ही पवित्र हो जाता है। आदि पुराण में लिखा है यदि क्षत्रिय या वैश्य किसी दरिद्र ब्रह्मण या क्षत्रिय (जिसने सब कुछ खो दिया है) के या दरिद्र बैश्य के शव को ढोता है वह बड़ा यज्ञ एवं पुण्य पाता है और स्नान के उपरान्त ही पवित्र हो जाता है। सामान्यतः आज भी (विशेषतः ग्रामों में) एक ही जाती के लोग शव ढोते हैं या साथ जाते हैं, और वस्त्र सहित स्नान करते हैं के उपरान्त ही पवित्र मान लिये जाते हैं। मध्य काल की टीकाओं, यथा मितक्षर ने जाति संकीर्णता से प्रेरित होकर व्यवस्था दी है “यदि कोई व्यक्ति प्रेम वश शव को ढोता है, मूर्त परिवार में भोजन करता है और वहीं रह जाता है तो वह दस दिनों तक अशौच रहता है।यदि मूर्त व्यक्ति के यहाँ केवल रहता है भोजन नहीं”

1. ब्रह्मपुराण (पराशरमाधवी 1/2 पृ. 278)
करता, तो तीन दिन तक, लेकिन यह नियम तभी लागू होगा जब शाव ढोने वाला व्यक्ति मृत जाति का हो।

कूर्म पुराण ने व्यवस्था दी है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी मृत को शुलक देकर शाव को ढोता है या किसी अन्य स्वार्थ के लिए ऐसा करता है तो वह दस दिनों तक अपवित्र (अशोच में) रहता है और यदि इसी प्रकार कोई क्षत्रिय, वैश्य शूद्र करता है तो वह 10, 15 एवं 30 दिनों तक अपवित्र रहता है।

विष्णु पुराण का कथन है यदि व्यक्ति लेकर शाव ढोता है तो वह मृत व्यक्ति की जाति के लिए व्यवस्थित अवधि तक अपवित्र रहता है। हारीत (मितारा, याज्ञा 312) के मत से शाव को मार्ग के गाँवों में से होकर नहीं जाना चाहिए।1 यम एवं गरुण पुराण (2/4/56-57) का कथन है कि चिता के लिए अमित, काष्ठ, तृण, छवि आदि उच्च वर्णों के लिए शूद्र द्वारा नहीं ले जाना चाहिए, नहीं तो मृत व्यक्ति सदा प्रेतावस्था में रह जाता है।2 स्मृतियों एवं पुराणों ने व्यवस्था दी है कि शाव को नहलाकर जलाना चाहिए, शाव को नग रूप से कभी भी नहीं जलाना चाहिए, उसे वस्त्र से ढका रहना चाहिए,

उस पर पुष्प रखना चाहिए, चन्दन का लेप लगाना चाहिए, अमित को शाव के मुख की ओर लगाना चाहिए। किसी व्यक्ति को कच्ची मिठी के पात्र में पकाया हुआ भोजन ले जाना चाहिए और किसी अन्य व्यक्ति को उस भोजन का कुछ अंश मार्ग में रख देना चाहिए और चाप्पाल आदि (जो शमशान में रहते हैं) के लिए वस्त्र आदि दान करना चाहिए।

बह्पुराण (शुद्धि प्रकाश, पृ. 159) का कथन है कि शाव को शमशान ले जाते समय वाद यंत्रों का पर्याप्त निनाद किया जाना चाहिए।3

1. हारीत (मितारा, याज्ञा 312)
2. गरुण पुराण (2/4/56-57)
3. तत्त्वीयादिनकच्चवाद्यादिनको युराज्ञीदिनक्संभादिनक। तु सुवर्ण कास्तियादिनक घनम्।।
ब्रह्म (शुद्धि प्रकाश पृ. 159)।
शव को जलाने के उपर्युक्त, अन्येष्ठ-क्रिया के अंग के रूप में कर्ता को वपन (मुड़न) करवाना पड़ता है और उसके उपरान्त स्नान करना पड़ता है, किन्तु वपन के विषय में कई नियम हैं। स्मृतियों - 'दाढ़ी-मूंछ बनवाना सात बातों में घोषित है, यथा - गंगा तट पर, भास्कर क्षेत्र में, माता-पिता या गुरू की मृत्यु पर श्रीतातिनयों की स्थापना पर एवं सोमयज में।

अन्त्यकर्मदीपक (पृ. 19) में अन्येष्ठ क्रिया करने वाले पुत्र या किसी अन्य सम्बन्धी को सबसे पहले वपन कराकर स्नान कराना चाहिए और तब शव को किसी पवित्र स्थान पर ले जाना चाहिए तथा वहाँ स्नान कराना चाहिए यदि ऐसा स्थान वहाँ न हो तो शव को स्नान कराने वाले जल में गंगा, गया या अन्य तीर्थों का आवाहन करना चाहिए इसके उपरान्त शव पर धी या तिल के तेल का लेप करके पुनः उसे नहलाना चाहिए, नया वस्त्र पहनना चाहिए और सम्पूर्ण शरीर में चंदन, कुकुम, कपूर, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। यदि अन्येष्ठ क्रिया रात्रि में हो तो वपन क्रिया रात्रि में नहीं होनी चाहिए।

गरुड पुराण (2/4/67-69) के मत से घोर रुदन शव दाह के समय क्रिया जाना चाहिए, तिन्तु दाह-कर्म एवं जल-तर्पण के उपरान्त रुदन कार्य नहीं होना चाहिए।

सपिष्टों एवं समानोदकों द्वारा मृत के लिए जो उदक क्रिया या जलदान होता है उसके विषय में मलैक क्या है। आश्वाम्ग्रह में केवल एक बार जल-तर्पण की बात करते हैं किन्तु सत्यार्धश्रो (28/2/62) आदि ने व्यवस्था दी है कि तिलमिश्रित जल अंजलि मृत्यु के दिन मृत का नाम गोत्र बोलकर तीन बार दिया जाता है और ऐसा ही प्रतिदिन 11वें दिन तक दिया जाता है। गरुड पुराण (मेलखंड, 5/22-23) ने भी 10, 55 या 100 अंजलिया की चर्चा की है।

कूर्म पुराण, उत्तरार्द्ध 23/70 के मत से अंजलि से जल देने के उपरान्त एक 'हू' चावल या जो का छाड़ देने के साथ दर्शन पर दिया जाता है। विष्णु पुराण (19/13) के मत से अशोच

1. गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोपरामृतो। आधान काले सोमेन च वपनं सप्तसु स्मृतम्।। - मिता. (फ़्राइ. 29/96), पराम. (1/2 पृ. 296), शुद्धि प्रकाश (पृ. 161) प्रायश्चित्तच (पृ. 493)। भास्कर क्षेत्र प्रायण का नाम है।

2. रात्री दंडव्य व पिणाणत्रे कृपाव वपनवर्जितम्। वपनं नेह्द्रसु रात्रि दंडवत्तान वपन क्रिया।। शुद्धि प्रकाश (पृ. 161)

3. गरुड पुराण (2/4/67-69)
के दिनों में प्रतिदिन एक पिण्ड दिया जाता है। किन्तु मंत्र नहीं पढ़ा जाता, या पिण्ड पत्थर पर दिया जाता है। जल तो प्रत्येक पिण्ड या अन्य कोई भी दे सकता है किन्तु पिण्ड पुत्र (यदि कई पुत्र हों तो ज्येष्ठ पुत्र) देता है। पुत्रहीनता पर भाई या भतीजा देता है और उनके अभाव में माता के सपिण्ड यथा मामा या ममेरा भाई आदि देते हैं।

गरुढ़ पुराण में उन सभी को जिन्होंने मृत्यु के दिन के कर्म करना आरम्भ किया हो, चाहे वह सगोत्र होया अन्य किसी गोत्र के हों दस दिनों तक सभी कर्म करने पड़ते हैं।

मत्स्य पुराण का कथन है कि मृत के लिए पिण्ददान 12 दिनों तक होना चाहिए, ये पिण्ड मृत के लिए दूसरे लोक में जाने के लिए पाथेय होते हैं और वे उसे संतुष्ट करते हैं, मृत 12 दिनों के उपरान्त मृत्युतात्माओं के लोक में चला जाता है। अतः दिनों के भीतर वह अपने घरों, पुत्रों एवं पत्नी को देखता है।

मृत को जल देने के लिए कुछ लोग अयोग्य माने गये हैं और कुछ मृत व्यक्ति भी जल पाने के लिए अयोग्य माने गये हैं। नापुंसक, सोने के चोर, विधवाएँ, श्रुण्हत्वा या पति की हत्या करने वाली स्त्री, निषिद्ध मध्य पीने वालों को जल देना मना है। गौतमधर्म सूत्र (14/11) ने व्यवस्था दी है कि उन लोगों की न अन्नसुद्धा किया होती है, न अशोच होता है, न जल तर्पण होता है और न पिण्दादन होता है, जो क्रोध में आकर महाप्राण करते हैं, जो उपवास से या शत्रू से या अग्नि से या विष से या जल में या फांसी लगाकर लटक कर या भर्त या भीड़ से कूद कर आत्महत्या कर लेते हैं। भरदत्त (गौ. 14/11) ने ब्रह्मपुराण से तीन पद उद्घत कर कहा है जो ब्राह्मण शाप से या अबिचार से मरते हैं या जो पतित है वे इसी प्रकार गति पाते हैं।

1. असमो: संस्कारो या यदि स्त्री यदि वा पुण्यमृ. प्रधातेष्ठति यो दधाते दशानाधिनम्।। गरुढु पुराण (प्रेत खण्ड 5/19-20)।।
2. प्रायानिकश्चतिविकेराधिकोदनुस्थन प्रतिप्रेत्येत्सत्ता।। (तस. 14/11) क्रोधत्व प्रथयि विषस्य वर्धः शहस्मुद्धेत्वतं प्रतिप्रेत्येत्सत्ता।। ब्रह्मपुराण ये च ये वै महाप्राणं हृतानि।। महापातकोि ये च परार्थ पराभृत:।। पराभृतां न वहास्य स्वमस्य स्वाध्यायिकोऽन्यचन्तचन्ताः।। ब्रह्मपुराण (हरदत्त गौ. 14/11 अर्थम् पृ. 902-903), कृष्ण पुराण (उत्तरार्ध 23/60-63)।।
यदि आहितांगि (जो श्रौत अग्नि होत्र करता हो) विदेश में मर जाय तो उसकी
अस्थियाँ मंगाकर कले मृगचंभ पर फैला दी जानी चाहिए और उन्हें मानव-आकार में सजा देना
चाहिए और सूई एवं घृत तथा श्रौत अग्नियाँ एवं यज्ञपत्रों के साथ जला डालना चाहिए।

यदि अस्थियाँ न प्रकाश हो सके तो पुराणों एवं अन्य प्राचीन ग्रंथों में व्यवस्था दी है
कि पलाश 360 पत्तियों से कले मृगचंभ पर मानव पुतला बनाना चाहिए और उसे ऊन के सूत्रों
से बाँध देना चाहिए, उस पर जल से मिलित जूत का आटा डाल देना चाहिए। ब्रह्मपुराण (शुद्धि
प्रकाश, पृ. 187) ने ऐसे नियम दिये हैं और तीन दिनों तक अशौच घोषित किया है। गरुडःपुराण
के मत से पत्तियाँ इस प्रकार सजायी जानी चाहिए - सिर के लिए 40, गर्दन के लिए 10, छातीके
लिए 20, उदर के लिए 30, पैरों के लिए 6, पैरों के अंगुलों के लिए 10, दोनों बाँहों के लिए 50,
हाथों के अंगुलियों के लिए 10, लिंग के लिए 8 एवं अण्डकोशों के लिए 12।

ब्रह्मपुराण को उद्धर कर कहा है कि आकृतिदन्त वेशली आहितांगियों तक ही सीमित नहीं
मानना चाहिए यह कर्म उनके लिए भी है जिन्होंने श्रौत अग्नि होत्र नहीं किया है। इस विषय में
आहितांगियों के लिए अशौच 10 दिनों तक तथा अन्य लोगों के लिए वेशली तीन दिनों तक होता है।

गरुडः पुराण (2/4/169-70) में ऐसी व्यवस्था दी गयी है कि यदि विदेश गया हुआ
व्यक्ति आकृतिदन्त के उपरान्त लौट आये अर्थात मृत समझा गया व्यक्ति जीवित अवस्था में
लौटआये तो वह घृत से भरे हुए कुण्ड में दबकर बाहर निकाला जाता है, पुनः उसको स्नान
कराया जाता है और जातकर्म से लेकर सभी संस्कार किये जाते हैं। इसके उपरान्त उसको अपने
पत्ती के साथ पुनः विवाह करना होता है किन्तु यदि उसकी पत्ती मर गयी हो तो वह दूसरी कन्या
से विवाह कर सकता है और तब वह पुनः अभिनेत्र प्रारम्भ कर सकता है। विष्णु (22/27-28)
ब्रह्मपुराण (परा. मा. 1/2, पृ. 238) के मत से गर्भ से पतित बच्चे, भूषण, मृतोत्तन
शिशु तथा दत्तोत्तन शिशु को वस्त्र से ढँककर गाड़ देना चाहिए। छोटी अवस्था के बच्चों को नहीं
जलाना चाहिए। ऐसे बच्चों के शरीर पर घृत एवंचन्दन का लेप लगाना चाहिए, उस पर पुष्प आदि
रखने चाहिए उन्हें न तो जलाना चाहिए और न जल तर्पण करना चाहिए और न ही उनकी अस्थि-
चयन करनी चाहिए।
यति (सन्यासी) को प्राचीन काल में भी गाड़ा जाता था। ब्रह्मचारी एवंयति का शव उत्पन्न अर्थिन से जलयाय जाता है। इस विषय में शुद्धि प्रकाश (पृ. 136) ने व्याख्या की है कि यहाँ पर यति कृदीचक श्रेणी का सन्यासी है और उसने यह भी बताया कि चार प्रकार के सन्यासी लोग (कुटी चक, बहुदक, हंस एवं परमहंस) की अन्वेषित किस प्रकार की जाती है। जिसे स्मृत्यवसार (पृ. 98) ने कुछ इस प्रकार ग्रहण किया है और परिव्राजक की अन्त्येष्ठित्रिया का वर्णन उपस्थित किया है। किसी को ग्राम के पूर्व या दक्षिण में जाकर पलाश वृक्ष के नीचे या नदी-टल स्थल पर या किसी स्वच्छ स्थल पर व्याख्यातियों के साथ यदि ढंढ के बराबर गहरा गड्ढा खोदना चाहिए; इसके उपरान्त प्रत्येक बार सात व्याख्यातियों के साथ उन पर तीन बार जल ख़ीकना चाहिए। गड्ढे में दभ बिछा देना चाहिए; मला, चन्दन लेप से शव को सजा देना चाहिए। परिव्राजक के दाहिने हाथ में ढंढ तीन खड़ों में करके थमा देना चाहिए और ऐसा करते समय मन्त्रपाठ करना चाहिए। शिक्षक को बांधे हाथ में मन्त्रों के साथ रखा जाता है और फिर क्रम से पानी छानने वाला वस्त्र मुख पर, गायनी मंत्र के साथ पानी को पेट पर और जल पानी को गुलांग के पास रखा जाता है।। इसके उपरान्त 'चतुहांतर' मंत्रों का पाठ किया जाता है। अन्य कृत्य नहीं किये जाते; न तो शवदाह होता है, न अशोच मनोहार जाता है और जल-पार्श्व किया जाता है क्योंकि यति संसार की विषयवस्तु से मुक्त होता है। समृत्यवसार ने इतना जोड़ दिया है कि न तो एकोदिप्त श्राद्ध और न सप्तदीकरण ही किया जाता है केवल 11वें दिन पार्श्व श्राद्ध होता है। किन्तु कुदीचक जलयाय जाता है, बहुदक गाड़ाजाता है, हंस को जल में प्रवाहित कर दिया जाता है और परम हंस को भलीभांति गाड़ा जाता है। गाड़ने के उपरान्त गढ़े को भली-भाँति ढंक दिया जाता है जिससे कुते, श्रृंगार आदि शव निकल न डाले। कुटी चक को छोड़कर कोई भी यति नहीं जलयाय है। आजकल सभी यति गाड़ी जाते हैं क्योंकि बहुदक और कुदीचक आजकल पाये नहीं जाते केवल परम हंस ही देखने को मिलते हैं। यति को क्यों गाड़ा जाता है? संभवतः उत्तर यही हो सकता है कि वे गृहस्थों की भांति श्रौतास्थियों या स्मार्तास्थियों नहीं रखते और वे लोग भोजन के लिए साधारण अर्थि भी नहीं जलाते। गृहस्थ लोग अपनी श्रीत या स्मार्त अर्थि...
के साथ जलाये जाते हैं किन्तु यति लोग बिना अग्नि के होते हैं अतः गाइ जाते हैं।

जो स्त्रियाँ बच्चा जनते समय या जनने के उपरान्त ही या मासिक धर्म की अवधि में उनके दाह के विशिष्ट नियम है। गरुड पुराण (2/4/171) में उद्धृत में है कि एक पत्र में जल एवं पंचगम्य लेकर मंशोधारण करना चाहिए और सूतिका को स्नान कराकर जलाना चाहिए। मासिक धर्म वाली मृत स्त्री को भी इसी प्रकार जलाना चाहिए किन्तु उसे दूसरा वक्त बदल देना चाहिए।

विभिन्न कालों एवं विभिन्द देशों में शव-क्रिया (अन्त्येष्टि क्रिया) विभिन्न दृश्यों से की जाती है। अन्त्येष्टि-क्रिया के विभिन्न प्रकार ये हैं - जलाना(शव-दाह), भूमि में गाइना, जल में बहा देना, शव को खुला छोड़ देना जिसेस सिद्ध, चील को आदि उसे ख दालें (पारसियों)। पारसियों में शव को गाइना महान पाप है। गुफाओं में सुरक्षित रख छोड़ना या ममी रूप में (यथा मिश्र में) सुरक्षित रख छोड़ना। जहाँ तक हर्म साहित्यक प्रमाण मिलता है, भारत में सामान्य नियम शव को जलाना ही था: किन्तु अपवाद भी थे यथा शिशुओं, संज्ञादियों आदि के विषय में प्राचीन भारत में शव गाइ देने की बात अज्ञात नहीं थी (अथवाच 5/30/14 'मानु भूमिग्रहों भुवत्
किवेद एवं 18/2/34)। अन्तिम मंगढ का रूप यो है “हेअगिन, उन पितारों को यहाँ से ले जाओ, जिससे कि वे छवि ग्रहण करें, उन्हें भी बुलाओं जिनके शरीर गाइ गये थे या खुले रूप में छोड़ दिये गये थे या ऊपर रख दिये थे।

आदि कल्तीन रोम के लोग शवदाह को समाव्य समझते थे और शव गाइने की रीति
केवल न लोगों के लिए बरती जाती थी जो आत्महान्त या हत्या होते थे।

कुछ समय तक शव को विकृत होने से बचाने के लिए रूप छोड़ना ज्ञात नहीं था।

शतपथ ब्राह्मण ने व्यवस्था दी है कि यदि आहितागिन अपने लोगों से सुधूर मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो उसके शव को तिल-तेल से पूर्ण द्वार (नाद) में रखकर गाइ द्वारा घर लाना चाहिए। रामायण में यह कई बार कहा गया है कि भरत के आने के बहुत दिन से पूर्ण से ही राजा दशरथ का शव

1. गरुड पुराण (2/4/171)।
तेलपूर्ण लम्बे द्रोण या नाद में रख दिया जाता है। विष्णुपुराण में आया है कि निमित्त का शाल तेल या सुगन्धित पदार्थों से इस प्रकार सुरक्षित रखा हुआ था कि वह सड़क नहीं और लगता था कि मृत्यु मानों अभी हुई हो।

हारलता (पृ. 126) ने आदिपुराण का एक वचन उद्धृत करते हुए लिखा है कि मग लोग गाड़े जाते थे और दरद लोग एवं लुकक लोग अपने सम्बन्धियों के शरीर को पेड़ पर लटकाकर चल देते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भिक बौद्धों में अन्त्येष्टि क्रिया की कोई अलग विधि प्रचलित नहीं थी चाहे मरने वाला भिक्षु हो या उपासक। बौद्ध अन्त्येष्टि क्रिया यथापि सरल है तथापि वह आश्वलायनगहयसूत्र के नियम से कुछ मिलती है।

जब मृत के सम्बन्धीगण (पुत्र आदि) जलार्पण एवं स्नान करके जल से बाहर निकलकर हरि घास के किसी स्थल पर बैठ गये हो, तो गुरुजनों को उनके दु:ख को कम करने के लिए प्राचीन कथायें कहनी चाहिए।

विष्णुपुर्ण सूत्र (20/22-53) में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है कि किस प्रकार काल (समय, मृत्यु) सभी को, याहूं तक इन्द्र, देवों, देवताओं, महान राजाओं एवं याहूं तक की महान ऋषि मुनियों को धर दबोचता है कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से लेकर एक दिन मरन को प्राप्त होता ही है (मृत्यु अवस्थयमावै है) कि (पतनी को छोड़कर) कोई भी मृत व्यक्ति के साथ यमलोक नहीं जाता कि किस प्रकार सत्कर्म मृत्युमा के साथ जाते हैं कि किस प्रकार आद्व मृत्युमा के लिए कल्याणकर है।

गरुड पुराण (2/4/81-84) में भी आया है कि जो व्यक्ति मानव जीवन में, जो केले के पौधे के समान साराघरीय है और जो पानी के बुलबुले के समान अस्थिर है, अमरता खोजता है, वह भ्रम में पड़ा हुआ है। रूदन से क्या लाभ है जब कि शरीर पूर्व जन्म के कर्म के कारण पंचतत्त्वों से निर्मित हो पुन: उन्हीं तत्त्वों में समा जाता है। गोभिलसृष्टि (339) ने बलपूर्वक कहा है कि जो नाशवान हैं जो सभी प्राणियों की विशेषता है उसके लिए रोना-धोना क्या? केवल शुभ
कर्मों के सम्पादन में, जो तुम्हारे साथ जाने वाले हैं, लगे रहो। गोभिल ने याज्ञा (3/8-10) एवं महाभारत को उद्धत किया है - “सभी संग्रह क्षय को प्राप्त होते हैं, सभी उदय पतन को, सभी संयोग वियोग को और जीवन मरण को”।

गुरुदेव पुराण (2/4/91-100) ने पति की मृत्यु पर पत्नी के (पति के चिता पर) बलिदान अर्थात मर जाने एवं पतिव्रता को चमत्कारिक शक्ति के विषय में बहुत कुछ लिखा है और कहा है कि ब्राह्मण स्त्री को अपने पति से पृथक नहीं चलना चाहिए। किन्तु क्षत्रिय एवं अन्य नारियों ऐसा नहीं भी कर सकती हैं। उसने यह भी लिखा है कि सती प्रथा सभी नारियों के लिए, यहाँ तक कि चाणक्य नारियों के लिए भी समान है है केवल गर्भवती नारियों को या उनके जिनके बच्चे अभी छोटे हो ऐसा नहीं करना चाहिए। उसने यह भी लिखा है कि जब तक पतनी सती नहीं हो जाती तब तक वह पुनर्जन्म से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकती।

गुरुजनों का दाशरथ के उपदेश सुनने के उपरान्त सम्बन्धी गण अपने घर लौटते हैं। बच्चों को आगे करके घर के द्वार पर खड़े हो कर और मन को नियन्त्रित कर नीम की पत्तियों दाँतों से चबाते हैं आच्छादन करते हैं। जल, अग्नि, गोबर एवं श्वेत तरसों को पूरे हैं, इसके उपरान्त किसी पत्थर पर धीरे से किन्तु दृढ़ता से पाँव रखकर घर में प्रवेश करते हैं। शंख के अनुसार समाधियों द्वारा दूर्गीर्वालान (दूब की शाखा), अग्नि बैल को फूल चाहिए मृत को घर के द्वार पिण्ड देना चाहिए तब घर में प्रवेश करना चाहिए। बैजवाद ने समी प्रभाव (पत्थर) अग्नि को स्पर्श करते हुए मंत्रों के उच्चारण की व्यवस्था दी है और कहा है कि अपने एवं पशुओं के सीच अग्नि रखकर उन्हें फूल चाहिए, उसे केवल एक ही प्रकाश का भोजन खरीदना या दूसरे के घर से लाना चाहिए उसमें नकम नहीं होना चाहिए, उसे केवल एक दिन और वह भी केवल एक बार भी खाना चाहिए तथा सारे कर्म तीन दिनों तक स्थगित रखना चाहिए। याज्ञा (3/14) ने व्यवस्था दी है कि उनके बतलाये हुए यथा - नीम की पत्तियों को कुतरने से लेकर गुह-प्रवेश तक के कार्य

1. सर्व क्षयान्त निधिया: पतनान्त: समुचित:। संयोग वियोगान्त मरणान्त: च जीवितम्।।
2. दूर्गीर्वालानमिं कृषभ्य चालभ्य गुहद्वारे प्रेतायिन्स पिण्ड दत्ता पश्चात्विधेय।। (सिटा. याज्ञा. 3/13, परा. मा. 1/2, पृ. 293)
उन लोगों द्वारा भी सम्पादित होना चाहिए जो सम्वन्धी नहीं हैं किन्तु शव ठोके, जलाने एवं संवारने आदि में सम्मिलित थे।

विष्णु. (19/14-17) गुरुद्व पुराण (प्रेर खंड 51-5) एवं अन्य ग्रन्थों में उन लोगों (पुरुषों एवं स्त्रियों) के लिए कविताय नियम दिये हैं जिनके सपिष्ट मर जाते हैं और लिखा है कि समशान से लौटने के तीन दिन तक क्या करना चाहिए। शाखा. ऋषि. ने व्यवस्था दी है कि उन्हें खाली (विस्तरहीन) भूमि पर सोना चाहिए, केवल याज्ञिक भोजन करना चाहिए, वैदिक अभियोगों से संबंधित कर्म करना चाहिए अन्य धार्मिक क्रियाओं नहीं करना चाहिए, ऐसा एक रात्रि के लिए या नौ रात्रि के लिए या अस्थि संचयन तक करना चाहिए।

आजकल भी अभिनवोत्त्री लोग स्वयं श्रीत नित्य होम अशोच के दिन करते हैं या अन्य लोगों से कराते हैं। विष्णु. (22/6) ने व्यवस्था दी है कि जन्म एवं मरण के अशोच में होम (वैश्व देव) दान देना एवं प्रहन करना तथा वेदाध्ययन रूप जाता है।

अस्थि संचयन या संचयन वह क्रिया है जो शव दाह के उपरांत जली हुई अस्थियाँ एकत्र की जीत हैं। यथा विष्णु. (19/10-12) गुरुद्व पुराण (प्रतेक खंड 5/15) के मत से पहले, तीसरे सालव पर शंभिस और विशेषतः द्विजों के लिए चाहिए दिन अस्थि संचयन होना चाहिए। वामन पुराण (14/97-98) ने पहले चाहिए या सालव दिन की अनुमति दी है। यम (87) ने सम्बन्धियों के शव दाह के उपरान्त प्रथम दिन से लेकर चाहिए दिन तक अस्थियाँ एकत्र कर लेनी चाहिए। विष्णु. (19/10) कूर्म पुराण (उत्तर 23) विष्णुपुराण (3/13/14) आदि ने कहा है कि संचयन दाह चाहिए दिन अवश्य होना चाहिए।

आजकल विशेषतः गावों एवं कसबों में शवदाह के तुरंत बाद ही अस्थियाँ एकत्र कर ली जाती हैं। अस्थि संचयन उपर्युक्त आष्ठ. गृह. की विधि का समावेश करती है। इसका कथन है कि कर्ता चिता स्थल को जाता है आचरण करता है, काल एवं स्थान आदि का नाम लेता है और मृत का नाम और गोत्र बोलकर वह संकल्प करता है कि अस्थि संचयन करेगा। अपने सामान को चिता स्थल की ओर करके उसकी तीन बार परिक्रमा करता है, उसे शामी की दहनी से बुहरता है उस पर 'श्रीतिके' (ऋ. 10/16/14) के साथ दूध मिश्रित जल छिड़कता है। इसके
उपरान्त विषम संख्या में बूढ़े व्यक्ति अस्थि संचयन करते हैं। छोटी-छोटी अस्थियाँ किसी नये पात्र में चुनकर रख दी जाती है तथा भरस्म गंगा में बहा दी जाती है।

पुराणों में ऐसा आया है कि कोई सदाचारी पुत्र, भाई या दौहित्र (लड़की का पुत्र) या पिता या माता के कुल का कोई संबंधी गंगा में अस्थियों को डाल सकता है। जो इस प्रकार संबंधित नहीं है उसे अस्थियों को गंगा प्रवाह नहीं करना चाहिए यदि वह ऐसा करता है तो उसे चान्द्रापण प्रायश्चित्त करना चाहिए। आजकल भी बहुत से हिन्दू अपने माता-पिता या अन्य सम्बन्धियों की अस्थियों को प्रयोग में जाकर गंगा या किसी पवित्र नदी में डालते हैं या समुद्र में प्रवाहित कर देते हैं। उन्हें पंचगय या स्नान करना चाहिए। इसके उपरान्त उसके (पवित्र अर्थात) वस्त्र, मिठी, मधु, कुशपूर्ण, जल, गोमूत्र, गोबर, गोदूध गोपूर्ण एवं जल से दस बार स्नान करना चाहिए।
नौवाँ अध्याय
वास्तुशास्त्र पर्यावरण स्वर्ण ईष्टापूर्त
वास्तुशास्त्र पर्यावरण एवं ईश्टापूर्त

वास्तु या निवास स्थान को वास्तु कहा जाता है और इससे सम्बन्धित बातों का जिस शास्त्र में वर्णन रहता है, वह वास्तु शास्त्र है। मुख्य रूप से वास्तु शास्त्र के अन्तर्गत भूमि सम्बन्धी-नगर आदि की रचना सम्बन्धी तथा गृह के उपकरण भूत-वाणी कूप, तडाग, उद्यान रचना, वृक्षारोपण, भैंसज दोहन आदि विषयों का वर्णन रहता है। पुराणों के अनुसार भूमि शोधनादि की क्रिया सम्पन्न करने पर निर्माण कार्य करना चाहिए यदि वास्तु अशुभ हो तो गृहस्थ को पद-पद पर कष्ट होता है तथा शुभ होने पर सुख लान्त्रि रहती है। इस दृष्टि से वास्तुशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। वातावरण एवं पर्यावरण को ध्यान में रखकर ही निवास स्थान का निर्माण करना चाहिए।

मुख्यतः वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध स्थापत्य कला से है। ऋग्वेद तथा अर्थवेद में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु पुराणों में विशेष रूप से वास्तुशास्त्र के महत्वपूर्ण विषय का वर्णन हुआ है।

जिस भूमि पर मनुष्यादि प्राणी निवास करते हैं उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह देवप्रासाद ग्राम नगर पुर, दुर्गा आदि अनेक भेद हैं। प्राचीन काल में पर्यावरण की कोई समस्या नहीं थी। फिर प्रासाद निर्माण में पर्यावरण को विशेष ध्यान दिया गया था। विधिवत वास्तु

1. मत्स्यपुराण आचार्यवाच (252-256)
   विस्मृत धर्मेतर पुराण (द्वितीय खण्ड अ. 29, तृतीय खण्ड अ. 94-95)
   अग्नि पुराण (अ. 93, 104-106)
   गरुण पुराण
नियमों को ध्यान में रखकर निर्माण कार्य किया जाता है। पुराणों में मत्स्य अर्थिन तथा विष्णु धर्मेंतर पुराण में वास्तुशास्त्र की विख्यात चर्चा है। वास्तु के अविभाज्य के विषय में आया है कि अन्धकार के बदले के समय भगवान शंकर के ललाप से जो स्वेच्छ बिन्दु गिरे उससे एक भयंकर आकृति वाला पुरुष प्रकट हुआ जब वह त्रिलोक भक्षण के लिए उत्तर हुआ तब शंकर आदि देवताओं ने उसे पृथ्वी पर सुलाकर वास्तुदेवता (वास्तु पुरुष) के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसके शरीर में सभी देवताओं ने वास किया इसीलिए यह वास्तुशास्त्र कहलाया। वास्तु कला में वास्तु देवता की पूजा करके उससे सर्वावधि शान्ति एवं कल्याण की कामना की जाती है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि वास्तु निर्माण में प्राचीन ऋषियों भूत ही सजग थे। क्योंकि निर्माण कार्य में पर्यावरण को भूत ही ध्यान देते हैं। अतः इसकी सुचिता बनाये रखने के लिए धर्म का सहारा लिया जाता था। जिससे तत्कालीन समाज के लोग उसे आसानी से समझ सके। पुराणों में वास्तु निर्माण में पर्यावरण को कोई समस्या न होते हुए भी वास्तु निर्माण में प्रकृति संरक्षण का विशेष ध्यान दिया जाता था।

भविष्य पुराण के अध्याय 10-13 में वास्तु निर्माण की विख्यात सूचना प्राप्त होती है। विष्णु पुराण में ऐसी मान्यता है कि वास्तु मंडल में निर्माण से पहले विद्वान ब्राह्मण को चाहिए कि वह एक वह एक वस्तुवेदी के मध्य एक कलश की स्थापना करे। कलश निर्माण में स्वच्छंदता को विशेष ध्यान देते थे। कलश निर्माण में पर्वत के शिखर, गजशाला, नदी-संगम राजद्वारा बाल्यकी चौराहे तथा कुश के मूल की मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए। वायु को शुद्ध रखने के लिए हवन का विधान पुराणों में है।

वास्तुशास्त्र

पर्यावरण का गृह निर्माण से धनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। क्योंकि घर ही व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकता के अन्तर्गत आता है। इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषियों गृह निर्माण के लिए विशेष उत्साहित दिखते हैं। क्योंकि हमारे पुराणकारों की ऐसी मान्यता रही है कि शुद्ध पर्यावरण
में ही शुद्ध सृष्टि का विकास संभव है। इसलिए गृहनिर्माण में हवा प्रकाश आदि के लिए विशेष व्यवस्था रखते थे। इसके लिए पुराणकार वास्तु विन्यास के लिए नियम बनाये थे। उनकी मान्यता है कि गृह व्यक्तिव निर्माण के लिए एक आवश्यक स्थल है। इसलिए गृह निर्माण के लिए पर्यावरण को ध्यान में रखकर वास्तुशास्त्र के नियम से आवासीय क्षेत्र का निर्माण करना चा�हिए।

गरुड़ पुराण के 46वें अध्याय में गृह निर्माण के लिए वास्तु पूजन विधि का उल्लेख किया गया है कि आवास अर्थात भवन, गृह आदि, नगर ग्राम, व्यापारिक पथ, प्रासाद, उच्चानु दुर्ग, देवालय मंडल आदि के निर्माण में वास्तु देवता की स्थापना पूर्वक पूजा करनी चाहिए।

गरुड़ पुराण के अनुसार देवालय, अन्नकोष में पाकशाला पूर्व दिशा में यज्ञ-मण्डप, ईशानकोण में काण्ठ या प्रस्तर से बनी पट्टिकाओं के द्वारा सुगन्धित पदार्थों तथा पुष्पों को रखने वाला स्थान, उत्तर दिशा में भण्डारागार वायुकोण में गोशाला पश्चिम दिशा में खिड़की तथा जलाशय नैक्त्यकोण में संभिषा कुशा ईंधन तथा अस्त्रशास्त्र का कक्ष, दक्षिण दिशा में सून्दर शय्या आसन पादुका जल अभ्यास दीप सजन भूत्वों से युक्त अतिथि गृह निर्माण करना चाहिए तथा घर के समस्त खाली पड़े भाग में कुप, जलसिद्धित कदली गृह और पुष्पों को सुनियोजित करना चाहिए।

प्रसाद लक्षण

प्रसाद बनाते समय सर्वप्रथम नीव के पश्चात प्रासादिक जंगला (कुस्ती) बनाना चाहिए। भवन की यह जंगला मानव जंगल की ढाई गुना अधिक होनी चाहिए। मुख्यद्वार के स्थान में गर्भ गृह का निर्माण करना चाहिए। गर्भ को समानान्तर वातावरण (रोशनदाम) अथवा वातावरण से सहित बनाना चाहिए। देव प्रसाद भूमि फल, पुष्प और जल से परिपूर्ण होनी चाहिए।

देव प्रतिष्ठा की सामान्य विधि

प्रसाद निर्माण के अन्तर्गत देव प्रतिष्ठा विधान है। प्रसाद के अग्रभाग में दस अवऽ का वारह हाथ का एक वर्गाकार सोलह खंभों वाला मण्डल तैयार करके मण्डप में चार हाथ परिमापा

1. गरुड़ पुराण आचार्यकण्ड (47 अध्याय)
की एक वेदी का निर्माण करना चाहिए तथा उस वेदी के ऊपरी भाग में नदियों के संगम स्थल के
किनारे से लायी गयी बालुका बिछाने का विधान है मण्डप की भूमि को गाय के गोबर अथवा स्वच्छ
मिट्टी से लीपना चाहिए।

मण्डप में लगे तोरण द्वार का न्यायोध (बट) उदम्बुर (गुलर) अख्तत्थ (पीपल) बिल्व
(वेल) पलाश खदिर (खैर) की लकड़ी से बनवाना चाहिए) ऐसी मान्यता है कि ये सभी वृक्ष
प्रयागरण के अति महत्वपूर्ण अंग हैं। मानव ही नहीं पशु पक्षी भी इन वृक्षों में आश्रय पाते हैं।
इसीलिए इसकी उपयोगिता को देखते हुए पुराणकारों ने इसकी महता को स्वीकार किया है तथा
इन वृक्षों की श्रेष्ठता ज्ञापित करने के लिए इन वृक्षों को धार्मिक क्रियाओं से जोड़ते हुए इन वृक्षों
को यज्ञ मण्डप के द्वार को सजाने के लिए इन वृक्षों का उपयोग किया जाता था।

ईष्टपूर्ति

तालाब, बगीचा, कुआं बालवी, पुष्करिणी तथा देवमन्दिर प्रतिष्ठा आदि का विधान -
ईष्टपूर्ति है।

सूर्य पुत्र मनु ने जलाशय के भीतर अवस्थित मत्स्यरूप धारी भगवान विष्णु1 से पूछा
देवेश! अब में आप से तालाब, बगीचा, कुआं, बालवी, पुष्करिणी तथा देवमन्दिर की प्रतिष्ठा
किस प्रकार होनी चाहिए। तालाब आदि की प्रतिष्ठा का जो विधान है उसका पुराणों में वर्णन है।
पुराणों का कथन है मनुष्य को कृपणता त्यागकर कुआं, तालाब, पुष्करिणी का निर्माण करना
चाहिए। मत्स्यपुराण पुक्कर निर्माण के लिए इस प्रकार बताया गया है -

1. जलाशयगंत विष्णुमय विविन्दनः।
तालाबारामकृपान वापशुनसमनीषु च।।1
विश्व पुराण 58 अध्याय
भविष्यपुराण मध्यपर्व भाग - 3 अध्याय 20
अग्नि पुराण - 64 अध्याय
पथ पुराण सृष्टिखण्ड 27 अध्याय
भविष्य पुराण
प्रावृट्काले स्थिततोत्ये अभिन्दोन्तं स्मृतम्।
शर्तकाले स्थितं यत् स्मातुतवलद्वायकम्।
वाजपेयितत्रात्राभ्यं हमन्ते शिष्यिरे स्थितम्। ॥५३
अश्वमेधसमरं प्राह बसन्तसमये स्थितम्।
प्रीष्मेषपि तत्स्थनं तोम राजस्याद् विशिष्यते॥ ॥५४

मत्स्य महापुराणे तदाविनिर्माणश्चपंचद्वयां:

जिस पोखरे में केवल वर्षा का जल रहता है वह उसे जो व्यक्ति निर्मित कराता है उसे अभिन्दोन्त यज्ञ का फल मिलता है जिस तदां में शर्तकालीन तक जल उसका भी यही फल है। हमन्त और शिष्य तपस्या तक जल रहने वाले तदां निर्मित करने वाले व्यक्ति को वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञ का फल मिलता है और बसन्तकालीन तक बिखरने वाले जलशाय का निर्माण करने वाले व्यक्ति को अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। तथा जिस जलशाय का जल प्रीष्मिका तक टिका रहता है उस तदां के निर्माण करने वाले व्यक्ति को राजसूय यज्ञ से भी ज्यादा फल प्राप्त होता है।

अत: इससे ज्ञात होता है कि तालाब बगीचा कुआं बावली आदि के निर्माण कराना अति महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता था। क्योंकि इन तालाबों के निर्माण से मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु पक्षी भी उनके ही लाभार्थी होते थे। क्योंकि पशु पक्षी भी पर्यावरण के अभिन्न अंग होते हैं।

अत: इसका भी उत्तर ही संरक्षण जरूरी होता है जितना मानव के लिए क्योंकि वृक्ष तालाब आदि के निर्माण से प्राकृतिक संभुलन बना रहता है। जिससे मानव तथा अन्य जीवों की देवीय आपदाओं से सुरक्षा होती है। यह ज्ञात है कि वहाँ वज्र के पुराणों में इस कार्य के सम्बन्ध के लिए धर्म का आश्रय लिया गया। क्योंकि तत्कालिक समाज में व्यक्ति भौतिक जगत की अपेक्षा लोकिक जगत को ज्यादा महत्त्व देता था। इसलिए इस प्रकार के निर्माण कार्य के लिए धर्म का सहारा लिया जाता था। जैसा कि मत्स्यपुराणमें कहा गया है।

एतानु महाराज विशेषधर्मानु करेति योजयित्वागमसुल्खवृद्धि:।
स याति रुद्रालयमाशु पूर्तः कलपानेकादिवि मोदते च।।५५
अनेकलोकान् स महतमादीन भुकतवा परार्धे दयमें जनाभि।
सहैव विषयः परम पदं यत् प्रापनेति तदगमबलेन भूयः। 1156

मत्स्यपुराण 58 अध्याय

जो मनुष्य पृथ्वी पर इन विशेष धर्मों का पालन करता है वह शुद्ध चित्त होकर
शिवलोक में जाता है और वहाँ पर अनेक कल्याण तक विद्या आनंद का अनुभव करता है। वह पुनः
परार्धे (ब्रह्मा जी की पिछली आयु) तक देवान्तर्का से तक्षिण अनेक महतम् लोकों का सुख भोगने
के पश्चात् लोकों का सुख भोगने के पश्चात् ब्रह्मा जी के साथ ही योगबल से विषयः के परम् पदः
को प्राप्त करता है।

इससे यह स्पष्ट है कि तालाब आदि के निर्माण करने व्यक्ति को सामाजिक तथा
परमार्थक दोनों लाभ होते थे।

नूतन तदाग्यः का निर्माण करने वाला अथवा जीर्ण तदाग्य का नवीन रूप में निर्माण
करने वाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुल का उद्देश्य कर स्वर्ग लोक में प्रवेश करता है। वापी कूप
tालाब बनाने तथा जल के निर्माण स्थान को जो व्यक्ति बार-बार स्वच्छ करता है वह मुक्ति रूप
उत्तम फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वापी आदि का निर्माण नहीं करता उसे अनुष्ठ क्रया होता
है और पाप का भय होता है। पुष्करिणी बनाने वाला अन्तर्गत प्राप्त कर ब्रह्मलोक से पुनः नीचे
नहीं आता।

तालाब के जल को स्वच्छ रखने के लिए तालाब में कुछ जलचरों को छोड़ा जाता था
जैसा कि भविष्य पुराण के मध्यम पर्व के द्वितीय भाग के 20-21 अध्याय में तालाबों में नागायुक्त
वरुण, मकर, कच्छप आदि की मूर्तियों छोड़े जाने का उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि जल
को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए तालाबों में पर्यावरण के मित्र उपरोक्त जल चरों का तदाग्य में छोड़ा
जाता था और तड़ाग के संरक्षण के लिए जलाशयों को दैवी रूप में स्वीकार किया गया है तथा

1. भविष्य पुराण मध्यम पर्व प्रथम भाग नवम् अध्याय।
तदागे में पूजन का विधान बताया गया है और उस तदाग के जल के मध्य में जलमातृभ्यो नमः।
ऐसा कहकर जलमातृकाओं का पूजन करना चाहिए और मातृकाओं से प्रार्थना करना चाहिए कि मातृका देवियाँ। तीनों लोकों के चराचर प्राणियों को संतप्ति के लिए जल मेरे द्वारा छोड़ा गया है यह जल संसार के लिए आनंद दायक हो। इस जलाशय की आप लोग रक्षा करें। ऐसी ही मंगल प्रार्थना भगवान वरुण देव करें।

वृक्ष

अनेन विधिना यस्तु कुर्याद वृक्षोऽस्य बुधः।
सर्वान कामानवापनेति फलं चानत्यमाचुङ्कते।।16
यशोक्षमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेतः।
सोऽपि स्वर्गो वसेद राजन यावदिन्यायुवनम्।।17
भूतानु भव्यांशच मनुजांश्च राज्यां दुमसममितान्।
परमा सिद्धमापनेति पुनरावृत्तिभाम्।।
य इंद्र श्रणुयाचित्वं शावयेद वापि मानवः।
सोऽपि सम्युजितो देवेः ब्रह्मालोके महीयते।।

मत्स्यपुराण वृक्षोऽस्य 59वें अध्याय

जो विधान विधिपूर्वक वृक्षारोपण का उत्सव करता है उसकी सारी कामनायें पूर्ण होती है वह अक्षय फल का भागी होता है। राजेन्द्र! जो मनुष्य इस प्रकार एक भी की स्थापना करता है वह भी जब तक तीस इन्द्र समाप्त हो जाते हैं तब तक स्वर्गलोक में निवास करता हैवह जितने वृक्षों का वह अपने पहले और पीछे की उतनी ही पीढियों का उद्भार कर देता है तथा उसे पुनरावृत्ति रहति परम सिद्ध प्राप्त होती है जो मनुष्य इसके विषय में अन्य मनुष्यों का वृक्षारोपण के प्रति उत्साहित करता है वह भी देवताओं द्वारा सम्मानित तथा ब्रह्मालोक में प्रतिष्ठित होता है।

* भविष्य पुराण मध्यम पर्व 2/20/21
1. मत्स्य 58 अध्याया, भविष्य मध्यम पर्व भाग 3 अध्याय 201, अनि. 764 अध्याय, पद्म सृष्टि ख. 27 अध्याय
वृक्ष मुनियों तथा कवियों को बहुत प्रिय थे वृक्ष उदान रोपण-प्रतिष्ठा की सभी विधियाँ पढ़ पुराण, भविष्यपुराण तथा स्वदेश पुराण में इसकी विस्तृत चर्चा हुई है। अमर सिंह तथा कालिदास ने भी इसकी विधि पूर्वक वृक्षों का रोपण करने से उसके पत्र, पुष्प तथा फल के रज रेणुओं से प्रतिदिन पितर तृप्त होते हैं।

जो व्यक्ति छाया, पूल और फल देने वाले वृक्षों का रोपण करता है या मार्ग या देवालय में वृक्षों को लगाता हैवहापने पितरों को बढ़े से बढ़े पाप से आत्मा है तथा इस भौगोलिक जगत में महती की नतीजा को अर्जित करता है। अतः पुराणकारों की मान्यता है कि वृक्ष लगाना अति पुनीत कार्य हैं ऐसी मान्यता है कि जिसको पुत्र नहीं हैं उसके लिए वृक्ष ही पुत्र हैं। अतः व्यक्ति पुत्र विहीन होने के बाद भी वृक्ष रोपण करके पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है। क्योंकि जहाँ पुत्र से व्यक्ति की संतुष्टि आगे बढ़ती है वहीं जो व्यक्ति का नितान्त एकांगी मामला हो जाता है वहीं वृक्ष रोपण के द्वारा समस्त जीवों का उद्देश्य होता है जहाँ पर वृक्षों के नीचे पथिक विश्राम करके अन्न जीवन को दूर करके पुत्र: अपने मार्ग की ओर अग्रसर होता है वृक्षों के द्वारा मानव ही नहीं बल्कि पशु पक्षी भी आश्रय पाते हैं। इसीलिए प्राप्त: सभी पुराणों में वृक्षों के सम्बद्धन को पुनीत कार्य माना गया है। क्योंकि वृक्ष पर्यावरण के अभिनव अंग होते हैं। प्राचीन काल में पर्यावरण का इतना संकट नहीं था फिर भी हमारे मननीय गण पर्यावरण के प्रति बहुत ही जागरूक दिखाई देते हैं। आम व्यक्ति में वृक्षों के सम्बद्धन के लिए धर्म का सहारा लिया। क्योंकि धर्म के द्वारा व्यक्ति जल्दी ही इसकी महत्ता को समझने लगता है जो पर्यावरण के लिए अति उपयोगी है उन पर दैवी शक्ति का आरोपण कर पूजा का विधान बताया गया है।

अतः कवितारेपुराण की ऐसी मान्यता है कि कोई व्यक्ति अश्रुत (पीपल) का एक वृक्ष लगाता है उसके लिए लाख पुत्रों से बढ़कर है अतः अपनी सदगति के लिए एकदम तीन तीन पीपल के वृक्ष लगाने चाहिए। अशोक के वृक्ष लगाने से कभी शोक नहीं होता। पाकड़ वृक्ष दीर्घ आयु

1. भविष्य पुराण मध्यम पर्व प्रथम भाग 10-11 अध्याय
प्रदान करता है। जामुन का वृक्ष धन देता है तेन्दू का वृक्ष कुल वृद्धि कराता है। अनार (दाड़िया) का वृक्ष स्त्री सुख प्रदान करता है वट वृक्ष मोक्ष प्रदान कराता है आम वृक्ष लगाने से सभी मनोकामनाओं की पूर्ति होती है। कदम्ब वृक्ष के रोपण से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शामी वृक्ष रोग नाशक है। केशर से शत्रु का विनाश होता है। शीशम अर्जुन जयन्तो करबीर बेल तथा पलाश वृक्षों के आरोपण से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। विधि पूर्वक वृक्ष का रोपण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा वृक्षरोपण कर्ता के तीन जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं सौ वृक्षों का रोपण करने वाला ब्रह्मा के स्वरूप हो जाता है तथा हजार वृक्षों का रोपण करने वाला विष्णु के स्वरूप हो जाता है।

अतः इससे ज्ञात होता है कि पुराण कालीन समाज में व्यक्ति पर्यावरण के प्रति काफी सचेत था क्योंकि पुराणों के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पुराण कालीन समाज में पर्यावरण के सत्तलन को बनाये रखने के लिए वृक्षों को अति महत्त्व दी गयी थी क्योंकि जो वृक्ष पर्यावरण के लिए अति उपयोगी है। उन वृक्षों में दैवीय रूप प्रत्यारोपण प्रक्रिया गया है क्योंकि ऐसा ज्ञात है कि जन साधारण के द्वारा पर्यावरण को सत्तलित रखने के लिए किसी ठोस आधार की आवश्यकता थी धर्म से बढ़कर इसके संरक्षण का और कोई माध्यम नहीं हो सकता था। अतः पुराणकारों ने वृक्षरोपण को एक धार्मिक कर्तव्य बताया है। अतः जो व्यक्ति इन वृक्षों को क्षति पहुँचाता था उसके लिए पाप का विधान बताया गया है जैसे - अश्रूत्व (पीपल) वटवृक्ष ताताथ श्रीवृक्ष को क्षति पहुँचाने वाला व्यक्ति ब्रह्मायाती कहलाता है।
दसवाँ अध्याय
परिशिष्ट
पर्यावरण एवं वृक्ष
पर्यावरण एवं कालिदास का साहित्य
पर्यावरण एवं पर्यटन
पर्यावरण रचन वृक्ष

हमारे सौर मण्डल में पृथ्वी ही एक भाग ऐसा ग्रह है जो हरा भरा है पृथ्वी की
हरियाली वृक्षों के कारण है। वन एवं वन्य प्राणियों का बड़ा प्राचीन सम्बन्ध रहा है।
जीवित रहने के लिए वृक्ष मनुष्य प्राण वायु के रूप में आक्सीजन प्रदान करते हैं और
आरोग्यता हेतु प्राणदायिनी जड़ो-बूटी प्रदान करते हैं और क्षुद्र शान्त करने के लिए कन्द-
मूल फल आदि वृक्षों की ही देन है। पर्यावरण सन्तुलन हेतु विभिन्न गैसों को पीकर
प्राणवायु के रूप में अमृत उगलने का सत्कार भी वृक्ष ही करते हैं।

भारतीय धर्म और संस्कृति में अनेक वृक्ष पूजनीय माने गये हैं अनेक वृक्षों में
देवता का वास स्वीकार किया गया है। तुलसी का पौधा विष्णु प्रिया के रूप में घर-घर
पूजनीय है तो केले का पौधा गुरू वृहस्पति की पूजा का प्रतीक माना जाता है। सन्तान
प्राप्ति के लिए बरगद पूजा का विधान है।

आनन्द पुराण में पीपल के वृक्ष में ब्रह्मा विष्णु और महेश का वास बताया गया
है। वैज्ञानिक भी इस मत से सहमत है कि तुलसी और पीपल जैसे वृक्ष अधिक मात्रा में
आक्सीजन देते हैं। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा है - "अश्वत्थ: सर्व
वृक्षाणाम" अर्थात् वृक्षों में में पीपल हूं। पीपल और बरगद का विशाल वृक्ष थके हारे
पत्थरों को न केवल छाया प्रदान करते हैं वरन वातावरण में प्रबुद्ध मात्रा में आक्सीजन
छोड़ते हैं। भक्त जनों तथा देवताओं के तिलक लगाने में चन्दन वृक्ष का प्रयोग किया जाता
है। हवन में सनिधा के रूप में पीपल, बराद, शामी, पाक़ आदि की लकड़ी तथा बेल नीबू धनुरा आदि वृक्षों का फल आहुतियों के रूप में प्रयोग किया जाता है। शास्त्रों में वरुण देवता का वास खजूर वृक्ष तथा बादलों के आहवान के लिए जम्बू वृक्ष का प्रयोग किया जाता था। वृक्ष और बगीचा की प्रतिष्ठा से पापों का नाश होता है।

वृक्षों के प्रति असीम प्रेम से प्रेरित होकर श्री राम चन्द्र ने दंडकवन, श्री कृष्ण ने ब्रंदावन शौकिक की ओशियों ने ने प्रभुजय में वास किया। वृक्ष अपनी उपयोगिता के कारण सदा से बन्दनीय रहे हैं कुछ वृक्षों का वर्णन पुराणों तथा धर्म प्रत्यों में इस प्रकार रहा है।

वाराह पुराण में वृक्षारोपण का स्वर्ग प्राप्त का साधन बताकर इस पक्ष ने पुर्जीर सिफारिश की गयी है। मत्स्य एवं पदमपुराण में भी वृक्षारोपण समारोह का वर्णन कर इसकी वृक्षमहोत्सव नाम दिया। वृक्षारोपण के महत्त्व को मत्स्य पुराण में एक वृक्ष लगाकर दस पुन्त के बराबर महत्व बताया है।

भारतीय लोग प्रकृति को दैवीय रूप में स्वीकार करते हैं। इसी आधार एवं विश्वास के कारण भारत में विभिन्न पेड़ एवं पौधों की पूजा की जाती हैं। कुछ विशेष पेड़ एवं पौधों में देवताओं का निवास माना जाता है। नरसिंह पुराण में पेड़ों को वृहन के रूप में मानवीकृत किया गया है। अर्धवेद में ऐसी धारणा स्पष्ट है कि पीपल के वृक्ष के ढेर सारे देवता निवास करते हैं।

विभिन्न वृक्षों को दैवीय एवं देवताओं से सम्बन्धित माना गया है जो निम्नवत

(1) अशोक - बुढ़, इन्द्र, विष्णु, आदित्य आदि।

(2) पीपल - विष्णु लक्ष्मी, वान दुर्गा इत्यादि
जीवन की जरूरत के रूप में एवं अन्य विशुद्ध आनन्द के रूप में मानते हैं।

प्रकृति पहले से ही बोझिल हो चुकी है अतः हमें इस प्रकृति के प्रति आपराधिक
गतिविधि के तुरन्त रोकना होगा क्योंकि पहले ही बहुत देर हो चुकी है।

तुलसी

तुलसी एक बहुश्रृंखल उपयोगी वनस्पति है। भारतीय धर्म संस्कृति में तुलसी अति
पवित्र और महत्वपूर्ण है। प्रत्येक हिंदू के घर-आँगन में तुलसी का पौधा होना, घर की
शोभा, घर के संस्कार, पवित्रता तथा धार्मिकता का अनिवार्य प्रतीक है। मात्र भारत में ही
नहीं वरन् विश्व के कई अन्य देशों में भी तुलसी को पूजनीय तथा श्रद्धाशील स्थान मिला है।
समस्त पौधों और वनस्पतियों में सर्वाधिक धार्मिक आध्यात्मिक आरोग्य लक्ष्मी
पद्धति से तुलसी को मानव-जीवन में महत्वपूर्ण, पवित्रता तथा श्रद्धाशील स्थान मिला है। यह
भगवान नारायण को अति प्रिय है। वृन्दा विष्णुप्रिया, माधवी आदि भी इसके नाम हैं।
धार्मिक आध्यात्मिक महत्ता तो इसकी है ही आरोग्य प्रदान करने में भी इसका विशेष
स्थान है। इसीलिए यह 'आरोग्य लक्ष्मी' भी कहलाती है।

प्रदूषित वायु के शुद्धिकरण में तुलसी का विलक्षण योगदान है। यदि तुलसी वन
के साथ प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ पद्धतियाँ जोड़ दी जायें तो प्राण धातक और दुर-साध्य
रोगों को भी निर्मूल करने में सफलता मिल सकती है।

तुलसी शारीरिक व्याधियों को तो दूर करती है साथ ही मनुष्य के आन्तरिक
भावों और विचारों पर भी कल्याणकारी प्रभाव डालती है। तुलसी के भीतर भरे मच्छरों को
दूर भगाने का गुण है और इसकी पत्तियाँ खाने से मलेरिया दूषित तत्वों का मूलतःनाश
होता है। तुलसी और काली मिर्च काढ़ा बनाकर पीने के सरल प्रयोग से ज्वर दूर किया जा सकता है।

निसर्गपरारकों का कहना है कि तुलसी की पत्तियों का दही या छाँट के साथ सेवन करने से वजन कम होता है, शरीर की चर्बी कम होती है अतः शरीर सुधार बनता है साथ ही थकान मिटती है। दिन भर स्फूर्ति बनी रहती है रक्त कणों में वृद्धि होती है।

लग्नेशर के नियमन, पाचनतंत्र के नियमन तथा रक्तकणों की वृद्धि के अतिरिक्त मानसिक रोगों में भी तुलसी के प्रयोग से असाधारण सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं।

पीपल

पद्म-पुराण के अनुसार पीपल को प्रणाम और इसकी परिक्रमा करने से आयु लम्बी होती है। इसमें सब तीर्थों का निवास भी माना गया है। इसी विश्वास के कारण हिन्दू अपने मुण्डन आदि संस्कार पीपल के नीचे करवाते हैं और पीपल का वृक्ष धार्मिक चहल-पहल का स्थान बन जाता है।

ऐसी धारणा है कि जो व्यक्ति इस वृक्ष को चुल्लू भर पानी देता है वह भी करोड़ों पापों से छुटकारा पाकर स्वर्ग को जाता है।

पीपल को देव वृक्ष कहा गाय है कहते हैं कि इस वृक्ष में भगवान का निवास है।

तुलसी के अतिरिक्त पीपल ही ऐसा वृक्ष है जो दिन रात आक्सीजन प्रवाहित करता है। यह अशुद्ध वायु अर्थात वातावरण की कार्बन डिएक्साइड को ग्रहण करता है और दिन रात शुद्ध वायु छोड़ता है। शायद यही कारण है कि हिन्दू धर्म में पीपल की लकड़ी काटना जलाना पाप समझा जाता है। पीपल की रक्षा के लिए ही सम्भवतः उसमें ब्रह्मा
आदि देवताओं के निवास की कल्पना की गई और कालान्तर में उसमें ब्रह्म राक्षस का निवास 
भी कल्पित कर लिया गया ताकि लोग भयभीत होकर इस वृक्ष का हानि न पहुँचाये।

बेल (बिल्व)

बिल्व वृक्ष प्रायः धार्मिक स्थानों विशेषकर भगवान शशीकर के उपासना स्थलों पर 
लगाने की भारत में एक प्राचीन परम्परा है। यह वृक्ष अधिक बड़ा न होकर मध्यम आकार 
वाला होता है। शाखाओं पर तीक्षण कांटे होते हैं। पतंग तीन-तीन कभी-कभी पाँच-पाँच के 
गुच्छे में होते हैं। बेल का फूल सफेद तथा सुगन्धपूर्ण होता है।

श्री शिव-पुराण के अन्तर्गत बिल्व माहात्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है

बिल्वमूले महादेवं लिङ्कुर्णिणि मध्यमम्।

येपुजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्याद ध्रुवम्॥

विल्वमूले जलैंरस्तु मूर्धनंमभिविज्ञविट।

स सर्वतीर्थस्नातः स्यात् एव भूति पावनः॥

श्री शिवपुराण श्लोक -13-14

अर्थात बिल्व के मूल में लिङ्कूर्णिप्रवर्णके प्राप्त जो पुण्यात्मा 
पुरुष करता है उसे शिव जी ही कल्याण की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य सब तीर्थों में 
स्नान का फल मिलकर पवित्रता प्राप्त होती है।

नीम

नीम एक बहुपत्यमंगी वृक्ष है। इसकी जड़ से लेकर फूल-पत्ती और फल तक 
सभी अवयव औषधीय गुणों से भरे-पूरे हैं। भारत वर्ष के गरीब लोगों के लिए यह कल्प 
वृक्ष है। इसके निम्न गुण हैं -
जड़ - नीम की जड़ को पानी में उबाल कर पीने से बुखार दूर होता है।

छाल- नीम की बाहरी छाल पानी में धिसकर फोड़े-फँसियाँ पर लगाने से वे जल्दी ठीक होते हैं।

दात्तन - प्रतिदिन नीम की दात्तन करने से मुँह की बदबू दूर होती है। दाँत और मसूड़े मजबूत होते हैं।

पत्तियाँ - दिन में सूर्य किरणें उपस्थित में नीम की पत्तियाँ आक्सीजन छोड़कर हवा शुद्ध करती हैं। इसलिए गर्मियों में नीम की पेड़ की छाया में सोने से शीतलता मिलती है तथा शरीर निरोग रहता है।

नीम की पत्तियों को संचित अनाज में मिलाकर रखने से उनमें धुन, ईली तथा खपरा आदि कीड़े नहीं लगते। नीम की सूखी पत्तियों के धुएँ से मच्छर भाग जाते हैं।

नीम की पत्ती की खादपेड़ पौधों को पोषक तत्व प्रदान करती है तथा जमीन में उपस्थित दीमक को भी समाप्त करती है।

रुद्राक्ष

रुद्राक्ष एक प्रकार का जंगली फल है, जो बेर के आकार का दिखायी देता है तथा हिमालय में उत्पन्न होता है। रुद्राक्ष नेपाल में बहुतायत पाया जाता है।

रुद्राक्ष की उपत्यका के विषय में पुराणों और ग्रन्थों में कहा गया है कि त्रिपुर नामक दैत्य बहुत ही दुश्मन था, उसने समस्त देवलोक में आतंक मचा रखा था। एक दिन समस्त देवताओं ने भगवान रुद्र अर्थात शहीर के पास जाकर त्रिपुर के आतंक से देवलोक की रक्षा करने की प्रारंभा की तब भगवान शहीर ने देवताओं की रक्षा के लिए दिव्य और
ज्ञात महाघोर रूपी अघोर अस्त्र का चित्तन किया। इस चित्तन के समय भगवान रूद्र नेत्रों से आँखों की बूंदें पृथ्वी पर गिरीं जिससे रुद्राक्ष वृक्ष की उत्पत्ति हुई।

इसकी प्रकृति और वर्गानुसार ही मनुष्यों को रुद्राक्ष धारण करना चाहिए अर्थात ब्राह्मण को सफेद रंग का क्षत्रिय को लाल रंग का वैष्णव को मिळित रंग का शूद्र को श्याम रंग का धारण करना श्रेष्ठ है।

रुद्राक्ष शिव के नेत्रों से उत्पन्न हुआ फलदायिनी वृक्ष है जो समस्त सुखों को देने वाला तथा समस्त दुःखों से मुक्ति प्रदान करने वाला है।

**ब्रह्म वृक्ष - पलाश**

वेदों में पलाश को ब्रह्मवृक्ष कह कर उसे बहुत महत्व दिया गया है और मन्त्रभूषणों का पलाश के प्रति कितना आदर भाव था उसका किचिंट भाव निम्न मन्त्र द्वारा प्राप्त होता है -

ब्रह्म वृक्ष पलाशस्त्रं श्रद्धा मेधा च देहि में।
वृक्षाधियो नमस्तेद्वसु तव चात्र सन्निधो भव॥

अर्थात् हे पलाश रूपी ब्रह्मवृक्ष! आप श्रद्धा और मेधा प्रदान करें। आपको मेरा नमस्कार है। मैं इस वृक्ष में आपका आहार करता हूं। इसमें आप सम्भित हो जाएं।

पलाश एक औषधीय वृक्ष है। सिंव वृक्ष के पत्र बड़े प्रशस्त मनोहर एवं सुंदर होते हैं अतः इसका नाम पलाश पद्म रक्त पलाश तथा भैरव पलाश आदि इसके कई भेद हैं। इसके छाल, क्षार, सूक्ष्म, काण्ड पत्र पुष्प तथा निर्पक्ष आदि का उपयोग होता है।
पर्यावरण रचना कालिदास का साहित्य

कालिदास के साहित्य में पर्यावरण की बहुत चर्चा की गयी है। कालिदास का रचना सृजन काल तथा कुछ पुराणों का सृजन लगभग एक ही समय में हुआ है। अतः उस समय के प्राकृतिक पर्यावरण के अध्ययन के लिए कालिदास के साहित्यों में वर्णित प्रकृति की छटा का वर्णन यहाँ अपेक्षित है।

मेघदूत

कालिदास के मेघदूत में कुबेर के ‘साप’ से स्थान भ्रमण एक यक्ष एक वर्ष तक के लिए निवास करता है। यह आसाद मास के प्रथम दिन शिखर से लिपटे हुए मेघ को देखकर प्रियतम के वियोग में विहंग हो जाता है। मेघ को चेतना मानकर प्रियतम को अपना संदेश भेजता है। प्रत्यय (ताजा) कुदुज दुमु से अर्थ निर्देशक का कल्पना करता है। मेघ धूम ज्योति सलिल मरूल का सन्निपात होकर चेतनावल्प्रतीत होता है वह कहता है -

जातं वंशो भुवनविदिते पुष्करावर्तकानं
जानामि त्वं प्रकृति पुरुषस्माप्रामुख्यं मधोऽः।
तेनार्थितं तत्त्वं विधिविशारदः दूरविभावहस्तः
याचजा मोघाव वर्माधिगुणे नागम्ये लघुकामां।६।।

(यक्ष बादल की लड़ाई करते हुए अपनी बातें प्रारंभ करता है) हे मेघ! तुम
लोकों में प्रसिद्ध पुक्कर आर्तक नाम के बादों के कुल में पैदा हुए हो, मैं तुमको जानता हूँ तुम इन्द्र के मन्त्रियों में से हो, और अपनी इच्छा के अनुसार और अपनी इच्छा के अनुसार अपना रूप धारण कर सकते हो। तुम्हारी कुलीनता और बड़प्पन समझकर भाय का मारा में जो अपने प्रिय जन से बिछुड़कर दूर देश में पड़ा हूँ तुम्हारे निकट प्रार्थी (याचक) बना हूँ। क्योंकि गुणवान से की गयी याचना यदि निष्फल हो जाय तो भी अच्छा है गुण अवगुण का भेद न समझने वाले ओँ के व्यक्ति के यहाँ याचना पूरी हो तो भी उससे प्रार्थना करना ठीक नहीं।

त्वामारूढ़ं वपनपदवीमुदृशीतालकान्ता:  
प्रक्षिण्ते पथिक वनिता: प्रत्यावाहसत्य:।

कः सन्नद्धे विरहबिधुराम तवपुक्कते जायां  
न स्याद्योपव्यहिंमव जनो यः पराधीनवृत्ति:।।पूर्वभेद ।।१८।।

(हे मित्र! प्रिया के लिए मेरा संदेश लेकर जब तुम आगे बढ़ोगे तब) रमणियाँ जिनके पति विदेश में है, इस विश्वास से इस असाध को देखकर मेरे कान्ता घर को चल पड़े होंगे और अवश्य ही राह में रहे होंगे। सुख की सांस लेती हुई तथा आंख पर लटकी हुई अलकों को ऊपर संवार कर प्रसन्न अंखें से तुमको आकाश में उड़ता हुआ देखेंगे। आसाध के दिन जब तुम उमड़-घुमड़ कर आकाश में छा जाते हो तब कौन है जो विरह से सताई अपनी प्रिया को उपेक्षा करेगा। कोई भी दूसरा ऐसा नहीं कर सकता, केवल उसको छोड़कर जो जन मेरी तरह अपने कर्म में परतंत्र न हो।

यक्ष मेघ की यात्रा में वायु आनुकूल्य का वर्णन करता है। चाचक और बलाकाम के सहयोग का भी वर्णन करता है। बलाकाम और राजहंसों-
मन्द मन्द नुदति पवनस्यानुकूलो यथा त्व
वामश्चायं नदति मधुरं चाकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानलक्षय रिचपाच्यानमाबद्माला:
सेविष्यते नयन सुभंगं खे भवन्तु बलाका:॥10॥ पूर्वमेघ

(मित्र! देखो चारो और तुम्हारा स्वागत ही स्वागत है) हवा तुम्हारे अनुकूल है
और जैसे ही वह एक और तुम्को धीरे-धीरे आगे बढ़ने को प्रेरित कर रहा है। बायों और
से तुम्हें देखकर प्रसन्नता से भरा यह पपीहा मीठी आवाज लगा रहा है और थोड़ा आगे
बढ़ाने अपने गर्भाधान के समय को जानकर निश्चित ही कतार बांधकर आकाश में
उड़ेगी और आंखों के सुहावने तुम्को भर आंखें देखती हुई तुम्हारी छाया में बिहार करेंगी।

कर्त्त यथा प्रभवति महीमुचिलिन्याग्रामवन्त्याः,
चतुर्थ त्वं ते श्रवणसुभंगं गर्जितं मानसोऽकरः।
आकेलासा द्विस किषलयचेदपाश्यवण्वतः
संपत्स्यते नभसि भवतो राजहंसः सहायः ॥11॥ पूर्वमेघ

तुम्हारे जिस मधुर-मन्द गर्जन के होते ही कुक्रमुत्रे धरती फोड़कर ऊपर निकलने
लगते है और पृथ्वी में खुब अन्न पैदा होने की जानकारी मिलने लगती है, कानों को प्रयर
लगने वाले उस गर्जन को सुनकर (वर्षकाल का आगमन जानकर) राजहंस मानसरोवर
जाने के लिए उतावले हो जायेंगे। और अपने चोचों में रास्ते का भोजन-कमलनाल का
तन्तुओं के दुकड़े को दबाये हुए आकाश में उड़ेगे। इस लिए वे कैलाश पहाड़ तक रास्ते में
तुम्हारे स्वामी बनेंगे। (यक्ष) सम्पूर्ण कृषि कार्य मेघ के आदेश से होता है। मेघ की प्रतीक्षा
में कामनियों पलकें बिछायें रहती है इस सन्दर्भ में अधोलिखित श्लोक -

त्वम्यां कृषिफलमिति भ्र निकारानभित्रः:
प्रतितिस्निर्धैर्जनपदविधूलोचनः पीयमाः।
साद: सीरोक्षण सुरभि क्षेत्रमारुध्यमालं
किष्किताप्दकाव ब्रज लघुगतिभूम्य एवतोत्तरेण।।16॥ पूर्वमेघ

अब थोड़ा पश्चिम की ओर मुड़ जाता वहाँ माल भूमि होगी जहाँं गाँव की ललनायं यह जानती है कि खेती की उपज तुम्हारे अधीन हैं - पानी बरसने पर निर्भर हैं
इसलिए तुम्हारे देखते ही भोली भाली चितवन में अनुराग से भीगी आँखों से टकटकी बांधकर तुम्हारे रूप को पियेंगी। तुम हल के अभी जोते हुए संधी महक बगाते उनके खेतों पर बरस कर हलके होकर तेजः गति से फिर उतर की ओर चल देना।

मेघ की पर्यावरण का मुख्य अंग है वृद्धि से ही वन हरे भरे रहते हैं। नदियों में जल प्रवाहित होता है। उद्यानों में पुष्पादि विकसित होते हैं। इस सन्दर्भ में मेघ के प्रति यक्ष का अनुरोध बहुत ही मनोहारी है -

विश्राम्यः सन् ब्रज नन् दीतिश्राणाम सिंवन
उद्यानानं नवजलकण्ठूर्धिकाजालकानन।।

गणवेदायपननूर्जावैकल्यानेकारणानं
छायादामारुध्यानपरिवृत्त: पुष्पलावीमुखानाम।।127॥ पूर्वमेघ

नीचे पहाड़ पर आराम करने के बाद आगे चलना वहाँ से आगे चलना वहाँ से चलते हुए नदियों के किनारे बगीचों में लहलहाई लता की कलियों अपनी बूंदों से साँचः देना और उनमें फूल तोड़ती हुई मालिनियों के मुख्य पर छा्याकार उनसे परिचय का आनन्द लेना, जिनके कानों में पहने हुए कमल के फूल धूप में गालों से बहते हुए पसीनों से तथ-पथ पोखरे में मुरझा गये हैं। यक्ष मेघ से कहता है कि यथापि तुम्हें असुविधा हो सकती है
किन्तु फिर भी अपने मार्ग से थोड़ा हटकर उज्ज्वली नगरी जाकर वहाँ की ललनाओं के
लोचनापांगों से देख जाने वाले सुख को मत छोडःना।
वक्रः पन्था यथापि भवतः प्रसिद्धतस्योत्तराशा
सौधोत्स्फङ्गेन्यविमुखो ना सम्भूरुजयिन्याः।

विषुदामसुपरिति चक्कितस्तत्र पौराणिनां
लोलायाःशयि न रमसे लोचनेविज्ञातोसि। पूर्वमेध।| 28।

यहाँ से अब उत्तर दिशा के यात्री हो, इसलिए उज्जैनी की ओर जाने में यथापि तुम्हारा रास्ता टेढ़ा हो जायेगा तो भी तुम उज्जैनी के ऊँचे भवनों के आलिंगन के अनुसार से अपने को विमुख न रखो। ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि तुम्हारा जीवन असफल रह जायेगा अगर तुमने उस नगर की ललनाओं की से खिलवाइ न किया हो। जो बिजली की रेखाओं के चमकने से चाकावृंद रहो जायेंगी और चंचल कटाक्षों से भर उठेंगी।

कवि कालिदास ने नदियों को भी सजीव चेतना युक्त माना है। यक्ष के मार्ग में गंभीरा नदी पड़ती है गंभीरा के ऊपर मेघ की छाया पड़ने का एक सुन्दर बिम्ब कवि ने इस प्रकार किया है -

गंभीराया: पवसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
खयात्मापि प्रकृति सुभगो लप्स्यते ते प्रवेशाम्।
तस्मादयथा: कुमुदविशादायहि त्व
धैयायमोक्तकृतं चढ़लश्चायदेवंप्रक्षितातनि। 44। पूर्वमेध

हे मेघ आगे गंभीरा नदी पड़ती उसका जल चित्र के समान निर्मल है। तुम्हारे सहज मनभावने शरीर की परछाई के रूप में तुम्हारी आत्मा उसके जल में अवश्य प्रतिबिम्बित होगी। तब यह नदी भी किलोल करती चंचल मछलियों के रूप में कुमुद के फूल जैसी उज्जवल अपने चित्तवन से तुम्हारी ओर देखेंगी। इस लिए तुमको यह उचित नहीं होगा कि कहीं काम के प्रति संयम भाव रखकर उसकी उस चित्तवन का निरादर कर दो।

तस्या: विखितकर्पूतमिति प्राप्त वानीरशाखं नीत्वा
नीलं सलिलवस्त्रं मुक्तरोधोतिनिम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमणि सखे! लम्बमानस्य मावि
झातास्वादो विन्दुजगन्धां को विहातुं समर्थः।। 45।। पूर्वेषाः

gabhīrā nadi ka jal sūkhkar tat ke nīche bēnt ke śākhāōṁ ko ḍhūtā hūa
pravahit hō raha hōga. usē dēkhkar tum ānuṣṭhav karoṛgē ki jal nadi ke tat rūpi nītmabh
se nīla-vāsra khsakar nīche chala gya jisē yah āpne bēnt ki śākha rūpi ānāōṁ se
lajāvās pākākār samhāle hēṁ. jissē kēṁ bīkūl nāṁgī n ho jāyē. usū sīmērē hūe jal
ekī pīkakār ek āōr to tum āpne vāsṛa ko hattakar nāṁgī kār dōgē. dūsṛē āōr śvāṁ
jalābhar se bōzhi hō jāōgōṁ. fīr to vēhrōṁ se āārē kē ṭumhārā bāṛī муśīkīl se
ho pāyeṇa bhāla kōin jāvān jisē nāthī-sūkh ke ānuṣṭhav āṁ hē vah ḍhūlī jāṅgāwalī tāṛūṇī kā
tīṛskār kār dēgē।

yakṣē mēgh se kahē hē ki yadṛī pi tumhēṁ āṣuviḍhā hō sakāti hē kīnēnī fīr bhī
apne mārg se ḍhōḍa hattakar ujjēnī nāgarī jākak vēhrōṁ ke lalnāṇōṁ ke lochānāpānōṁ se dēk
jānē vālē sūkh ko mat śhōṭōānā।

वक्रः पन्था यद्यपि भवतः प्रस्थितत्वोत्तराशाः
साधौसागरयामिविमुखो मा सम भूरूज्जोगिताः।।
विद्धामस्फूर्तिकिरतिस्तस्तंत्र पोराराजनानं लोलायंईयदि
न रमे लोचनैवज्ञतीसि।।28।। उत्तरेषाः

yēhrōṁ se āb uttār dīśa ke yāṭīrī hō, sī āōr ujjēnī ke āōr jānē mē yadṛī
kī tumhārā rāṣṭra ṭēḍha hō jāyēgā to bhī tum ujjēnī ke ōṅce bhavōṁ ke āalīṇgān ke
ānuṛāg se āpne ko viṃukh n karoṛgē. ēsā ēślīte kah rha hōṁ ki tumhārā jīveṇ anśफāl
rh jāyēgā āgar tumnē āṣ nāgar ke lalnāōṁ ke āōṅkōṁ se ḍhīla-wāṅh n kīya hō jō
tumhārī bījālī ke āṅkāōṁ ke chākārōṁ ke chāka-roḍh hō jāyēgī āōr ḍhāṅcāl kāṭākōṁ se bhr
उठेगी।

कवि कालिदास ने नदियों को भी सजीव चेतना युक्त माना है यक्ष के मार्ग में गंभीरा नदी पड़ती है गंभीर के ऊपर मेघ की छाया पड़ने का एक सुन्दर बिंब कवि ने इस प्रकार किया है -

गंभीराया: पवति सरतिक्षेतसीव प्रसन्ने छायात्मापि
प्रकृति सुभंगो लज्ज्यते प्रवेशांम्
तत्सादयस्यं कुमुदविशालदन्त्सिसं ततं धैर्यामोधरीकर्तवं
घटुलशाफ्रोढ़तन्त्र वेन्द्रकसानि।।44।। उत्तरमेघ

हे मेघ आगे गंभीरा नदी पड़ेगी उसका जल चित्र के समान निर्मल है। तुम्हारे सहज मनभावने शरीर की परछाई के रूप में तुम्हारी आत्मा उसके जल में अवश्य प्रतिभित होगी। तब यह नदी किलोल भी करती चंचल मक्खलियों के रूप में कुमुद के फूल जैसी उज्ज्वल अपने चित्रवन से तुम्हारी ओर देखेगी। इस प्रकार तुमको यह उचित नहीं होगा कि कही काम के प्रति संयम भाव रखकर उसकी उस चित्रवन का रिश्ता कर दो।

तत्सायः किष्ठिकरघुतमिव प्राप्त वानीरसाखं नीलताम्
नीलं सलिलवसनं नुकरोधादिनित्वम्।
प्रस्थानं ते कथमणि सखे। लम्बमानस्य मावि
झातास्वते विवृतजखण्डों को विहातुं समर्थं।। 45।। उत्तरमेघा

गंभीरा नदी का जल सूखकर तट के नीचे बेंट की शाखाओं को छूता हुआ प्रवाहित होता रहा होगा उसे देखकर तुम अनुभव करोगे कि जल नदी के तट रूप नित्य से नीलावस्त्र खिसकर नीचे चला गया है जिससे वह अपनी बेंट की शाखा करी हाथों से लज्जावश पकड़ कर सम्हाले। उस सिमटे हुए जल को पीकर एक ओर तो तुम अपने वस्त्र को हटाकर नंगी कर दोगे। दूसरी ओर स्वयं जलभाल से बोझिल हो जाओगे। फिर तो वहाँ से आगे के लिए तुम्हारा प्रस्थान बड़ी मुश्किल से हो पायेगा भला कौन जवान जिसे रति-
सुख का अनुभव है वह खुली जंगला वाली तरुणी का शिकार कर देगा।

यक्ष मेघ के अलकापुरी का परिचय देता है कि अलकापुरी के लोग पूरी तरह से प्रकृति से एकीकृत हैं। उनके जीवन में प्रकृति सर्वत्र विद्यमान है। स्त्रियाँ प्राकृतिक उपकरणों से ही अपना श्रद्धार्थ करती हैं।

हस्ते लीलाकमतमलके बालकुन्दानुविद्धभ्
नीता लोप्रप्रसवरजसं पाणुतामनने श्री:
चूङ्डापास्वे नवकुलकरं करुण कर्मो स्मरीय
सीमान्ते च तवदुपवगमज्य नीयं बधुनाम्। ॥2॥ उत्तरमेघ

जहाँ (अलकापुरी में) बहुओं के हाथ में क्रीडाकमल अलकों (घुंघराले केशों) नवीन कुन्द (नामक पुष्पों) का गुफ्फन मुख पर लोप पूष्प पराग से की गयी शुभ्र कान्ति जुड़े में नवीन कुरबक (नामक पुष्प) कान में सुन्दर श्रीरेष मौंग में तुम्हारे (मेघ के) आगमन से उत्पन्न कदम्भ (नामक पुष्प) रहते हैं।

यन्त्रन्तरभ्रमरमुखरा: पादपा निसपुष्पः
हंसश्रीवर्चितार्थानातिवधाव ललित्यः।
केकोत्तकणी भवन शिखनो नित्यभास्वकलाया।
नित्यज्योत्स्वत्: प्रतिपलन्नानुवृत्तिसंभ: प्रदोषा:। ॥३॥ उत्तरमेघ

जहाँ (अलकापुरी) सदा वृक्ष पुष्पों से युक्त मतवाले भ्रमरों के गुज्जन से युक्त हैं। कमलनिधियाँ (अथवा बालविया) श्रद्धालू सदा कमलों से युक्त हरणों की पंक्तियों से उनकी कठधनी बनी है। घरों के (पालतू) मोर सदा चमकने वाले पंकों से मुक्त अत: बोलने के लिए ऊपर गोला उठाये हुए हैं रात सदा चांदनी से युक्त (अत:) अंधकार के प्रसार के नष्ट हो जाने से रमणीय है।

अलकापुरी में नेत्रों में आंधू आनंद के कारण आते हैं वियोगजन्य दुःख के
अतिरिक्त कोई दुःख नहीं होता है प्रणयकलह के अतिरिक्त कोई कलह नहीं होती, वहाँ नित्य यौवन विराजमान है। मन्दाकिनी के सलिल शीतल से उनकी ऊष्मा शान्त होती है। मन्दार पुष्पों से उन्हें खाया प्राप्त होती है। यक्ष लोग प्रकृति के साथ एकीकृत हैं। पुष्पपत्र ही उनके आभूषण हैं। सितार का रात्रिकालीन घर के बाहर प्रिय मिलन अलकों से गिरे हुए मन्दार पुष्पों पल्लवों और कानों से गिरे हुए कनक कमलों से सृंचित होता है कि उन्हें स्वयं कल्याणकृत श्रंगारोपकरण प्रस्तुत करता है। भगवान शिव के डर से कामदेव परशुद्वज्य (भौरों) धारण करने में संकोच करता है। यक्ष के घर के निकट हस्तप्रार्थ स्नानमनिक मंदार वृक्ष लगा है। उसी घर में मरकतशिला बाढ़ सोपान मार्गिक एक वापी है। जिसमें सिनाध वैदूर्य के समान नाल बाले स्वर्णम विकसित कमल शोभित है हंस इसे मानसरोवर समझकर वहाँ वास करते हैं। उसके निकट इन्द्रनील से रचित शिखरवाला कनक कदली के आलवाल वाला क्रीड़ाशिल है। वहाँ पर चल किसलय रक्ता शोक है वहीं कान्त केसर हैं दोनों कुरबक से घिरे माघवी मण्डप से घिरे हैं। वापी के मध्य में स्फटिकफल का काचनी वासयष्टि है। जिसका आलवाल पके बांस के रंगवाले मणियों से जटिल है। वासयष्टि के ऊपर मयूर बैठता है। दक्षिणी से पुत्र रूप मानकर सिंजावलय युक्त तलों से नाचती है। परिचय के अनंतर मेघ को अपनी प्रियतमा की पहचान बताता है।

मेघदुत में कालिदास ने प्रकृति के विविध उपकरणों को संचेतन स्वीकारा है। पर्यावरण की उत्तमता का तथा सजीवता का शायद ही कहीं ऐसा रूप मिलता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

शाकुन्तल में शान्त वातावरण का बहुत ही रमणीय वर्णन मिलता है प्रीष्ठ समय का एक वर्णन इस प्रकार है-
शुभाकृतियाँ दयाभाव से भौरों के द्वारा कुछ-कुछ आस्वादित कोमल केसर शिखर युक्त शिरीष के फूलों का कान का आभूषण बना रही है।

राजा दुःखन्त कण्व के आश्रम में शिकार का पीछा करते हुए पहुंचते हैं। लेकिन वन्य पशुओं के प्रति दया का भाव प्रकट करते हुए वैकानस शिकार का विषेष्ठ करता है।

क्यों बत हरिणों जीवित चातिलों
क्यों च निर्मितिनिर्मान वद्वसारः शरास्तेः।

अभिज्ञानशाकुन्तल प्रथमसर्ग श्लोक 10

तपस्वी हाँ ठोकर कहता है, राजन यह आश्रम का मृग है, इसे न मारिये।
इस सुकुमार मृग के शरीर पर पुष्पराशि पर अर्नि के तुल्य बाण न चलाइये न चलाइये।
खेल की बात है कि कहाँ तुक्ष हरिणों का अतिरिक्त जीवन और कहा तीक्ष्ण प्रहार करने
वाले वज्र के तुल्य कठोर आपके बाण।

तत्त साधुकृतसन्धाते प्रतिसंहं साययकम्।
आर्त्त्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तमनागसिः।

शाकुन्तल प्रथम सर्ग 11 श्लोक
अच्छे प्रकार से धनुष पर चढ़ाये हुए अपने बाण को उतार लीजिए। आपका शस्त्र दुःखितों की रक्षा के लिए है निरपराधों पर प्रहार के लिए नहीं।

इस प्रकार आश्रम का वर्णन करते हुए दुधन्त आश्रम में कन्या जीवों के निशिचतता का वर्णन करते हैं।

नीवार: गुरुकर्मकोटरमुखश्रव्यस्तरुणामध: प्रसन्नाय: कविविदिहदीफलभिध: सूचन सत्य एवोपता।

विशवासोपगमादभिन्नगतयः शब्द सहन्ते मृगा स्तोयाधारयथात्सच बलकलिकानिष्ठन्द्रेखःखः।

शाकुन्तल धर्मस मर्ग श्लोक संख्या 14

tोलों से युक्त घोष (या कोटरों) से अग्र भाग से गिरे हुए नीवार (जंगली धान) बृक्षों से नीचे (दिखाई) देते हैं। कहीं इंगुड़ी (गँड़ी) के फलों को तोड़ने वाले चिकने पत्थर दिखाई पड़ गई रहे हैं। (कहीं पर) विश्वस्त होने के कारण निष्कांक गति से मृगा (रथ के) शब्द को सुन रहे हैं और (कहीं पर) सरोवरों के मार्ग बलकलों के अग्रभाग से ठपकर एक जल की रेखा से चित्तित हैं।

कुल्याभभोधि: पवनचपलतः शाखिनो धौतमूला भिन्न गाणः किसलयचामाज्ञ्यामोद्वत्ते।

एते चार्वगपवनवृष्वि चिन्नन्दशुकुरायायः
नकाशाकार्हिरणिश्रावो मन्दमन्दं चरति।।15।।

शाकुन्तलम् प्रथमोद्वृक्ष श्लोक संख्या 15

वायु के कारण चंचल नहर के जल से बृक्षों की जड़ ठुली हुई है। यज्ञ के घी के धुँधे के उठने से कोमल पत्तों (कोपलों) की कान्ति की लालिमा नष्ट हो गयी है और ये निर्मक मृगों के बच्चे जहाँ पर कुशों के अंकुर तोड़ लिए गये हैं ऐसी उद्यानभूमि में पास
ही धीरे-धीरे घूम रहे हैं।

शकुन्तला वृक्षों को सीच रही है उसे देखकर अनुसूचा कहती है कि कप्पा को शकुन्तला से अधिक आश्रम वृक्ष प्रिय हैं।

अनुसूचा - हला शकुन्तले, वद्योपि तात्काश्य-पस्याश्रमवृक्षकाः प्रिपतरा इति तर्क्यामि। येन नवमालिकाकु-सुमपेलवाकिः तृमन्तेषामालवालपूर्ण नियुक्ता।

शकुन्तलम् प्रथमोऽक गद्ध संख्या -47

अनुसूचा - सबी शकुन्तला पिता कश्यप (कण्व) को (ये) आश्रम के वृक्ष तुझसे अधिक प्रिय हैं। ऐसा मैं समझती हूँ अतएव नवमालिका के फूल तुल्य सुकुमार भी तुमको इनके आलवल (थौवले) भरने के कार्य में नियुक्त किया है।

दुःख्यत शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहताहै -

वाचं न मिश्रपपि यद्यपि मदव्योभि:
कर्ण ददात्यभिमुखं मपि भाष्मानं।

कामं न तिष्ठति मदानसम्मुखीना
भूर्षिण्डश्यमविषिण्य न तु दृष्टिरस्या:।।31।।

शकुन्तलम् प्रथमोऽक ऐतिहासिक संख्या -31

राजा - (शकुन्तला को देखकर मन में) क्या जिस प्रकार हम इस पर (अनुरक्त)
हैं। उसी प्रकार यह भी हम पर (अनुरक्त) है? अथवा मेरी इच्छा को अत्यावश्यक हो गया है। क्योंकि - यथापि यह मेरे वचनों से यह वचन नहीं मिलाती (किन्तु मेरे बोलते समय मेरी ओर कान लगाये रखती हैं। भले ही मेरे मुँह के सामने मुँह नहीं करती हैं, किन्तु इसकी दृष्टि प्रायः अन्य विषयों की ओर नहीं हैं।

अनुसूचा वृक्षों में मानवीय सम्बन्धों का आरोपण करती है।
अनुसूया - हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरबधूः सहकारस्य त्यया
कृतनामधेर्या वनज्योत्स्नेति नवमालिका। एनां विस्मृतासि ।
(प्रथम सर्ग गद्धकंठः 60)

अनुसूया - सखी शकुन्तला यह आम की स्वयंवर-बधू नवमालिका है, जिसका
तूने वन ज्योत्सना नाम रखा है। क्यों इसको भूल गयी हो।

शकुन्तला - तदात्मानमणि विस्मरिष्यामि (लतामुलेप्यावलोक्य च) हला रमणीये
खलु काळे एतस्य लतापादपमिधुनस्य व्यतिकरः संवृतः। नवकुसुममौवना वनज्योत्स्ता, बद्र
पल्लववत्योपभोगभमः सहकारः।

(शकुन्तलम् प्रथमोसर्ग गद्धकंठः 61)

शकुन्तला - तब अपने आपको भूल जाऊँगी। (लता के पास जाकर उसको
देखकर) सभी, सुन्दर समय में इस लता और वृक्ष के जोड़े का मेल हो गया है। वनज्योत्सना
नवीन फूल रूपी यौवन से युक्त है और आम पत्तों से युक्त होने के कारण (इसके) उपभोग
के योग्य हैं। (देखती हुई एक जाती हैं)

प्रियंवदा - अनसूयेय जातासि किं शकुन्तला वनज्योत्सनामतिमात्रं पञ्चतीति।

शकुन्तलम् प्रथम सर्ग गद्ध संख्या 62

प्रियंवदा-अनुसूया, तू जानती है कि शकुन्तला वनज्योत्सना को किस लिए बहुत
अधिक देख रही है।

अनुसूया - न खलु विभाव्यामि। कथय। (प्रथमअंक गद्ध संख्या 63)

अनुसूया नहीं जानती हूँ। बताओ।

प्रियंवदा - यथावनज्योत्सनानुरुपेण पादपेन संगता, अपि नामैवमहम्यालभनोनुरुपं
वरं लभेयेति।

शकुन्तलम् प्रथम सर्ग गद्ध संख्या 64।
प्रियवंदा - (वह सोचती है) "जिस प्रकार वन ज्योत्स्ना अपने अनुरूप वृक्ष से मिल गयी है क्या मैं, भी अपने अनुरूप वर को पाऊँगी।

द्वितीय अंक के 6वें श्लोक में दुष्प्राप्त मृगया से विरत होकर धनुष रख देता है और इस शस्त्र स्थगन पर अन्य प्राणियों की निन्मिशन्त्व का वर्णन करता है -

गाहन्तां महिषा निपानसलिंग शुभांसिमहस्ताक्ष्मि
छायाबद्धकरों मृगकुलं रोमन्यामभस्यतु।
विश्रामं क्रियातं वराहतात्रिभिर्मुस्ताक्ष्मि: पतच्ये
विश्रामं लभतामिदं च शिधिलज्याबन्धमस्मद धनुः।।16।।

अभिज्ञान शाकुण्तल द्वितीय सर्ग

भैसे सीघं से बराबर आलोड़ित तालाब में स्नान करें। छाया में छुंद में बांधकर बैठा हुआ मृग समूह जुगाली का अभ्यास करें। सुअरों का छुंद निर्भय होकर छोटे तालाबों (बावड़ी) में नगरमोथा निकाले और यह हसरा धनुष (भी) शिधि प्रत्यंचा वाला विश्राम करें।

इसी प्रकार तीसरे अंक के चौथे श्लोक में बालिनी नदी के स्पर्श से शीतल पवन वर्णन है -

शाक्यामरिब्रिन्दसुरभिः कणवाहो मालिनीतरंज्ञाणाम्।
अहैैैैवंजयतात्रिभिर्मालिनान्ध्रं पवनः।।14।।

शाकुण्तलम् तृतीय सर्ग

काम-सन्तप्त अझ्नों से कमल की सुगन्ध से युक्त और मालिनी के तरंगों के कणों से मिलकर वायु जोर से आलंग के योग्य हैं।

क्षोंम केनविदितिन्दुपाणु तरुणा माण्डल्यमविश्वुतं
निदृशयतशहरणोपरासुभगो लाखा: केनविदित।
अन्येऽभ्यो वन्देवता करतात्रार्पणभोगोत्थितः -
दर्षतान्याभरणानि न किसलयोद्योज्याद्विद्विन्धित्वः।।15।।

शाकुण्तलम् चतुर्थ सर्ग 5 श्लोक
हमको किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मात्रालिक कस्त्र दिया। किसी ने पैरों
को रंगने के योग्य लाक्षणिक (अलक्क महावर) प्रकट किया (दिया)। अन्य वृक्षों ने कलाई
उठे हुए, सुन्दर किसलयों (कोपलों) की प्रतिस्पर्धा करने वाले वन देवता के करतलों से
आभूषण दिये।

दुष्यन्तनेनहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि ततवं ब्रह्मन्त्रस्थिगार्था शमीमिव।।|| (चतुर्थ अंक)

प्रियंवदा - हे ब्रह्मन दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज (वीर्य) की पृथ्वी के कल्याण
के लिए धारण करने वाली (अपनी) पुष्पी के छिपी हुई अभिन से युक्त शमीवृक्ष के तुल्य
समझो।

(कोकिलरवं सूचयित्वा)

अनुमतस्थिना शकुन्तला
तरुभिरियं बनवा सबन्धिः।
परभृत्रितः कलं धया
प्रतिवचनीकृतंमेघिरीद्रश्मम।।10।।
अभिज्ञ शाकुन्तल चतुर्थ सर्ग श्लोक संख्या 10

(कोयल का शब्द सुनने का अभिनय करके) इस शकुन्तला को (इसके) वनवास
के साथी वृक्षों ने न जाने की स्वीकृति दे दी है। क्योंकि सुन्दर कोयल की आवाज को
इन्होंने इस प्रकार अपना प्रत्युत्तर बनाया है।

रम्यान्तरः कमलमीहरितः सरोभि-
श्वायामौरित्यमिताकथमयूरितायः।
भूयात् कुशेरारमोधुदेवजयस्यः
शान्ताकूलपवननिव शिवश्र स्वतः।।11।।
अभिज्ञ शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग

कमलनियों से हरे भरे तालाबों से मार्ग का मध्यभाग मनोहर हो। घनी छाया
वाले वृक्षों से सूर्य की किरणों का ताप दूर हो। इसका मार्ग कमलों के पराग से कोमल धूल युक्त शांत और अनुकूल वायु से युक्त तथा कल्याण कारी हो।

शकुन्तला की विदाई का वर्णन है इसमें कोयल की कुकों की कवि ने शकुन्तला की विदाई को स्वीकारा है। ऋषि कण्व शकुन्तला के मार्ग सुख्रान्त होने की कामना करता है।

प्रियंवदा कहती है -

न केवलं तपोवनाविरहकालं सख्येव।
त्योपस्थितिवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृष्टेत।

शकुन्तलम् चतुर्थं सर्गं गधं संख्या। 185।।

उद्गलितम्शकत्वं मृणं परित्यक्तं न नान्यः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुख्तयश्नूलीव लता।।12।।

शकुन्तलम् चतुर्थं सर्गं 12 श्लोक

प्रियंवदा - तपोवन के वियोग से केवल तू ही दुःखि न नहीं हैं, अपितु युज्ञसे विदाई का समय उपस्थित होने के कारण तपोवन की भी तेरे समान ही अवस्था दिखाई पड़ रही है।

शकुन्तला - (समृत्वा) तात लताभिगिनीं वनज्योत्सनां तावदामन्त्रित्वते।

शकुन्तल चतुर्थं सर्गं गधं संख्या। 186।।

शकुन्तला - (समरण करके) हे तात् में अपनी लता-बहिं ज्योत्सना से विदाई ले लूँ।

काश्यपः - अस्मिन्ते तत्स्यं सोदयस्नेहम्। इयं तावद् दक्षिणेन।

शकुन्तलम् चतुर्थं सर्गं गधं संख्या। 187।।
कश्यप - मैं जानता हूँ कि तेरा उस पर बहिन का सा प्रेम है। यह दाहिनी ओर है।

शाकुन्तला - (उपेत्यलामालिणिवच) वनज्योत्सने चूतसंगतादिपि मां प्रत्यालिङ्गोतगताभिः।
शाकुन्तलाणुः: अद्यप्रभते दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि।
शाकुन्तलम् चतुर्थं सर्गं गद्ध संख्या ।।88।।

शाकुन्तला - (पास जाकर लता से लिपटकर) हे वनज्योतस्ना अपने पति आम से मिली थी तुम इथर की ओर आई हुई अपनी शाखा रुपी बाहुओ से मुझसे गले मिलो। आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊँगी।

इसी प्रकार चामली की लता को शाकुन्तला सखियों के हाँथ में धरोहर के रूप में देती हैं गर्भ मंथरा मृगी उसके वस्त्र का छोर पकड़कर उसे जाने से रोकती है।

शाकुन्तला - (सख्या प्रति) हला एषा द्योरयुवयोह्स्ते निक्षेपः।
शाकुन्तलम् चतुर्थं सर्गं गद्ध संख्या ।।90।।

शाकुन्तला - (दोनों सखियों से) सखियों, इस (लता) को तुम दोनों के हाँथ में धरोहर के रूप में छोड़ती हैं।

सख्या - अर्थं जनं: कस्य हस्ते समर्पितं: शाकुन्तलम् गद्ध ।।91।।

दोनों सखियों हम दोनों को किसके हाथ छोड़ती हैं?

काश्यप - अनसूपे अलं रूदिता। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरोरकत्वया शाकुन्तला।
शाकुन्तलम् गद्ध संख्या ।।92।।

काश्यप - अनुसूया तुम मत रोओ, क्योंकि तुम दोनों को ही चाहिए कि शाकुन्तला को धैर्य बंधाओ।
शकुन्तला - तात एषोट्जपर्यंतचारिवी गर्भ मध्यरा मृगवधूर्धासनधण्डासवा भवति
तदा महं कमपि प्रियनिवे दायितुकं विसंजयिष्ठथा।

शकुन्तलाम् चतुर्थ सर्ग गध संख्या ॥९३॥

शकुन्तला - हे तात् कुटी के पास विचरण करने वाली गर्भ के कारण शिथिलगति
इस मृगी के जब सुख से संतानोत्पत्ति हो जाये, तब इस शुभ समाचार की सूचना देने
वाले किसी व्यक्ति को मेरे पास भेजियेगा।

शकुन्तला - (गतिभव्रुः स्पर्धितवा) को न खलवेष निवसने में सजयते।

शकुन्तला चतुर्थ सर्ग गध संख्या ॥९५॥

शकुन्तला - (गति में अवरोध का अभिनय करे) यह कौन मेरे वस्त्र को खींच
रहा है।

छठे सर्ग के १७ श्लोक में राजा शान्त नीरव पर्यावरण से सम्बन्ध चित्र बनाने
का आदेश देता है।

राजा - श्रूपताम्

कार्य सैकतलीनहंससमिद्धना दोतोतहा मालिनी
पादस्तामभिन्नो निष्णाहरिणा गौरीगुरोः पावना:।

शाखालम्बितवत्कलस्य च तरोरतिमातुमिचछाम्यथः
शृव्हे चृष्णमृगस्य वामनपनं कण्ठयुम्यान्ना मृगीम॥

अभिज्ञान शकुन्तलाम् छठा सर्ग श्लोक ॥१७॥

राजा - सुनो जिसके रेतिले किनारे पर हंसों के जोड़े बैठे हुए हैं ऐसी मालिनी
नदी बनानी है। उसके दोनों ओर हिमालय की पवित्र पहाड़िया बनानी है, जिन पर हिरण
बैठे हुए हैं। जिनकी शाखाओं पर वल्कल लटके हुए हैं ऐसे वृक्ष के नीचे कृष्ण मृग के सींग पर बाँयी आँख खुजाती हुई मृगी को बनाना चाहता हूँ।

राजा-

कृतं न कर्णार्यिनिन्धनं सखे
शिरीषमण्डाविलिबिकेस्तम्।

न वा शटच्यन्त्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रम् रंचि स्तनान्तरे॥१८॥

शाकुन्तल छठें सर्ग श्लोक

राजा - हे मित्र उसके कानों में जिसका इंठल फंसाया हुआ है और जिसका पराग कपोलों तक फैला हुआ है ऐसा शिरीष का फूल नहीं बनाया है और उसके स्तनों के बीच शरतकालीन चन्द्रमा की किरणों के तुल्य कोमल (श्वेत) मृणाल (कमल-ताल) का हार नहीं बनाया है।
पर्यावरण रचन पर्यटन

अच्छत काल से हमारे सच्च और महामा पर्वतों, नदियों की यात्रा और बुझक के उस उद्यान का अनुभव करते रहे हैं, जो प्रकृति के साथ निकट सम्बन्ध से पैदा होता है। इन लोगों ने इस बात को समझ लिया था कि मनुष्य और प्रकृति दो अलग-अलग अस्तित्व, नहीं, बल्कि एक ही कार्यात्मक तत्व, एक ही दैवीय आत्मा के अविभाज्य अंग है। उनका विश्वास था कि प्रकृति का बुनियादी तत्व अन्तर्क्षणीय प्राणी बनाता है। वह प्राणी, पर्वत, जिसकी अस्थियों, धरतीमांस, समुद्रतट बायु सांस और अग्नि उर्जा है, उन्होंने ने प्रचारित किया है कि पृथ्वी हमारी माता है हम उनकी सत्ता है। प्राचीन वैदिक श्रोतों से वह सन्देह निहोत है जिसे आज हम सत्ता विकास के नाम से जानते हैं। धरती के सुजन और वहन क्षमताओं को एक मजबूत आक्षेप भाव गया है। यही कारण है कि बारत शताब्दियों से प्राकृतिक और सांस्कृतिक सम्पत्तियों का भाषाक भरा है।

दुर्भाद्ध से प्रकृति को सम्मान देने और उसके साथ सद्भाव से रहने की यह लगभग परम्परा बाद में अनियमित भौतिकवाद के आक्रमण और अद्वैतवाद के व्यवस्था में बढ़तुल के कारण विकृत होती गयी। यह पर्यावरण का एक दुर्भाद्ध पहलू है। पुराणों में ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय ग्रंथों में पर्यावरण के सभी पहलुओं पर सकारात्मक विचार रखा गया था। प्राचीन कालिन धर्म ग्रंथों में बताया तीर्थयात्रा पर्यटन का एक अध्यात्मिक रूप था। धर्मात्मक पर्यटन के मुख्य स्थल पर्यटन की चोटियाँ तथा नदियाँ होती हैं। वर्तमान उपभोगतावदी सांस्कृतिक में अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान हो गया है। अतः विश्व के सभी प्रमुख
राष्ट्र प्रायः प्राचीनकाल में जिन स्थानों की धार्मिक मान्यताएँ थी अथवा जो स्थान को जन करने हल से दूर प्रकृति की गोद में जो स्थान है वहाँ पर सरकारी प्रयासों द्वारा पर्यटको के पर्यटन हेतु पर्यटक स्थल का विकास किया जा रहा है। इसी से प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र ने 2002 को पर्यावरण पर्यटन एवं पर्यटन वर्ष घोषित किया गया है हमारे धर्म ग्रंथों में प्राचीन काल से ही पर्यावरण की संरक्षण के लिए ही देवी देवताओं का निवास स्थान पर्वतों की चोटियों पर माना गया है। हमारे देश में देवियों के रूप में प्रतिष्ठित 90% नदियों का उदगम स्रोत पर्वत है। आज के सन्दर्भ में पुनः उन धार्मिक मान्यताओं को पर्यटन परिपक्वता में आधुनिक दंग से देखा जाता है। जहाँ प्राचीन काल में नदी, पहाड़, वन, धार्मिक भवनों से जुड़े हुए है वही आज के सन्दर्भ में नदी जंगल पर्यटन स्वस्थ्य मनोरंजन के रूप में देखे जा रहे हैं। जहाँ प्राचीन काल में पर्यटन धार्मिक रूप से होता था, वही आज प्राकृतिक स्थानों का पर्यटन स्वास्थ्य लाभ एवं मनोरंजन के लिए होता है इसीलिए विश्व की तमाम सरकारें इससे प्रभावित होकर इसे उपयोग का दर्जा न दिया गया है। यह ऐसा उपयोग है जो बिना प्रधुषण का है।

पर्यटन भावनाभाव की जिन्दगी में व्यस्त मनुष्य शान्ति की तलाश चाहता है। जब उसे कहीं शान्ति नहीं मिलती तब प्रकृति गोद में पर्वतों जंगल में जा कर शान्ति की तलाश करता है। मेरा विश्वास है कि कोई परिदृश्य तब तक स्वस्थ्य नहीं हो सकता जब तक एक स्वस्थ्य मानसिक दृष्टिकोण मौजूद न हो। मानसिक संस्थान के लिए स्वच्छ वातावरण की निराशा आवश्यक है। अता हन इस समय पर्यावरण पर्यटन का उन लोगों के लिए बहुत कम आरक्षण है जिन्हें मौजूदा भौतिकवाद ने इसा है। जिनका दिमाक सुखवादी दृष्टि से निरंतर है, जो भौतिकवाद की सुख के तलाश में रहते हैं अथव
जिनकी दृष्टि उनकी विश्वास से निर्देशित होती रहती है वे पर्यावरण के प्रति असंवेदनशील है, उनके लिए संसार कुछ नहीं है। उन्हें वैचारिक धारातल पर लाने का काम शुद्ध वातावरण ही कर सकता है। पर्यटन के सबसे उपयुक्त व स्वास्थ्यप्रद स्थान पर्यावरण होते हैं। पहाड़ियाँ पर इसमें का एक शौक बनता जा रहा है। पहाड़ियाँ पर वन्य जीव पर्यटन रमणीय स्थल देखने के साथ-साथ मनोरंजन होता है। वहाँ पर्वतों पर पर्यटन से शारिरिक तथा मानसिक वैमारी से निपटा जा सकता है। अतः इसी पर्यावरणीय सन्तुलन तथा पर्यटन के सम्बंध के लिए हमारी सरकार ने प्राकृतिक दृष्टियों से समाप्त क्षेत्रों के विकास हेतु 572 क्षेत्रों 78 राष्ट्रीय उद्यानों तता 483 वन्य जीव उद्यानों संरक्षित किया है। हमारे पर्यटन के मुख्य स्थान पर्यटन के विकास के लिए व्यक्तियों के अन्दर अब खुद जाप्रित आने लगी है। पर्यटन आज दुनिया का सबसे बड़ा उद्योग है, और पर्यावरण पर्यटन इस उद्योग का सबसे तेजी से बढ़ने वाला हिस्सा है। सामान्य शब्दों में पर्यावरण पर्यटन का अर्थ है पर्यटन और प्राकृति सरंक्षण का सम्बन्ध इस ढंग से करना ही एक तरफ पर्यटन से पारिस्थितिकी सन्तुलन बनता है दुसरी तरफ स्थानीय समुदाय के लिए नये रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं।

पर्यावरण पर्यटन को सब रोगों की औषधि के रूप में देखा जा रहा है। जिससे भारी मात्रा में पर्यटन राजस्व मिलता है और पारिस्थितिकी प्रणाली को कोई छत नहीं पहुँचती क्योंकि उसमें बन संसाधनों का दोहन नहीं किया जा सकता। पर्यावरण पर्यटन प्राकृतिक क्षेत्रों की वह वातिल पूर्ण मात्रा है जिससे स्थानीय लोगों की खुशहाली बढ़ती है।

पर्वतीय क्षेत्रों में पर्यावरण पर्यटन
पर्यावरण-पर्यटन का सार चूँकि प्रकृति की प्रसंशा और बाहरी मनोरंजन है अतः
इसके अन्तर्गत ट्रैकिंग, हाइकिंग पवर्तकर्षण पक्षी पर्यवेक्षण, नौकायन, राफिटिंग जैव वैज्ञानिक
खोज और वन्य अभ्यारणों की यात्रा जैसी गतिविधियाँ शामिल है। भारत विश्व में जैव
विविधता सम्पन्न उन सात देशों में से एक है जिनकी सांस्कृतिक विरासत समृद्धतम् है।
भारत में पर्यावरण पर्यटन की व्यापक संभावना है। जिनका दोहन आर्थिक लाभ, स्वास्थ्य
परिक्षण और प्रकृति संरक्षण पर्यावरण मालायें समस्त प्राकृतिक सौदर्य का प्रारंभ और अन्त
है।

पारिस्थितिक पर्यटन एक सन्तुष्टि प्रदान करने वाला अनुभव है। पारिस्थितिकी-
पर्यटन प्रकृति और उसके वन्य पौधे और जीव जन्तुओं तथा इन क्षेत्रों में विधामान
सांस्कृतिक पहलुओं के अध्ययन प्रशंसा और आनंद उठाने के विशेष लक्ष्य से किया जाने
वाला ऐसा पर्यटन है जिसमें अपेक्षाकृत अवधि प्राकृतिक क्षेत्रों की यात्रा की जा सकती है
क्योंकि पर्यटकों पर स्थित वृक्षों, जड़ी-बूटियों और फूलों की विविधता मनमोह लेती है। ये
हरित क्षेत्र कई मानों में महत्त्वपूर्ण हैं जैसे भू-परिदृश्य का सौन्दर्य बढ़ता है वहाँ (पर्वत)
जीव जन्तुओं और वनस्पतियों का प्राकृतिक वास है और पौधों झाड़ियों और औषधिय
गुणों से समप्त जड़ी बूटियों का खजाना है। पर्यटकों के निवासी इन हरित क्षेत्रों का समान
करते हैं और उन्हें पवित्र उपवन समझकर परंपरा रूप से उनका संरक्षण करते हैं। भारत
में ऐसे हजारों पवित्र उपवन मैदानों और पर्यटकों पर फैले हुए हैं। हिमालय क्षेत्र में ऐसे
अनेक उपवन हैं। जिनका उल्लेख हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में मिलता है।

पर्यटकों पर पशु पक्षियों की अनेक प्रजातियों पायी जाती है।

वैभवशाली हिमालय अपने अपार सौन्दर्य और महत्व के लिए विख्यात है।
लेकिन यह पृथ्वी का सबसे संवेदनशील पारिस्थितिकी है। यह क्षेत्र सिन्धु-गंगा, ब्रह्मपुत्र और हांगहो-यांगसी को उद्गम स्रोत है। यह धर्मशास्त्रों में देवताओं की धरती के रूप में प्रसिद्ध है। हिमालय पर्वत पर कई हिन्दू तीर्थ तथा देवालय हैं जहाँ भारी संख्या में श्रद्धालु दर्शनार्थ पहुँचते हैं। पुराणों में हमेशा ही हिमाच्छादित पर्वतों को आध्यात्मिक शान्ति के साथ जोड़कर देखा गया है।

पर्वतीय क्षेत्र जल, ऊर्जा जैव विविधता के महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। पर्वत प्राचीन ज्ञान और असाधारण आध्यात्मिक परंपराओं के भण्डार है पर्वतों से कई नदियाँ निकलती हैं। जिनका खास पौराणिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व है।

अतः उपरोक्त पर्यटन और पर्यावरण के अध्ययन से स्पष्ट है कि आज पूरे मानव समाज का कर्तव्य है कि पारिस्थितिकी सन्तुलन को बनाये रखने वाले पर्वत नदी आदि को पर्यटन से जोड़कर इनमें अपना सहयोग प्रदान करें तथा पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचायें।
संदर्भ ग्रन्थ

1. पुराण सहिता — चौखम्बा प्रकाशन
2. ब्रह्म वैतर्पुराण — कलकत्ता प्रकाशन
3. मत्स्य — पुराण — गीता प्रेस गोरखपुर
4. कूर्म पुराण — गीता प्रेस गोरखपुर
5. वराह पुराण — गीता प्रेस गोरखपुर
6. नृसिंह पुराण — गीता प्रेस गोरखपुर
7. वराह पुराण— गीता प्रेस गोरखपुर
8. स्कन्द पुराण — गीता प्रेस गोरखपुर
9. विष्णु धर्मोंतर पुराण — बम्बई,
10. नर सिंह पुराण— गीता प्रेस गोरखपुर, श्री कृष्ण संवत 5196 प्रकाशन वर्ष 45
11. दि नरसिंह पुराण — डॉ एस.ओ. जैन (ए जैन इंटरनेशनल स्टडी)
12. अभिन पुराण, गर्गसहिता, नरसिंह पुराण अंक— गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन वर्ष 45
13. नरसिंह पुराण, कल्याण (परिशिष्टक) गीता प्रेस, गोरखपुर
14. ब्रह्म पुराण — डा० हरिदास सिद्धान्त वाराणसी, गुरु मण्डल प्रकाशन, कलकत्ता
15. पुराण विमर्श — पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी — 1987
16. हरिवंश पुराण का संस्कृति विवेचन — श्रीमती वीणा पाणि पाण्डेय, सूचना — विभाग उत्तर प्रदेश
17. पुराण समीक्षा— डा० हरिाणरायण दुबे, वर्ष 1984
18. अभिन पुराण — आनन्ददास्रम संस्कृत ग्रंथावली क्रमांक —41—1900
19. कूर्म पुराण — कलकत्ता 1890
20. गहुड पुराण — बंगाल संभव 1314 कलकत्ता
21. देवी भागवत पुराण — श्री राम शार्मा, मथुरा
22. नायदीय पुराण — वैक्टेश्वर प्रेस, बम्बई
23. पद्म पुराण — आनन्ददास्रम सीरोज, 1893
25. मत्स्य पुराण – आनन्दश्रम पुणा  
26. मार्कण्डेय पुराण – कलकत्ता 1862  
27. ब्रह्म पुराण – आनन्दश्रम 1316  
28. ब्रह्माण्ड पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, 1913  
29. वायु पुराण – हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग  
30. भविष्य – हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग  
31. मार्कण्डेय – हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग  
32. ब्रह्मवीर्यत – हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग  
33. वराह पुराण – कलकत्ता 1893  
34. विष्णु पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस  
35. हरिवंश पुराण – पुणा 1936  
36. अण्डादश पुराण – दर्पण – ज्ञान प्रसाद मिश्र वेंकटेश्वर प्रेस  
37. मार्कण्डेय पुराण – एक सांस्कृतिक अध्ययन वासुदेवशरण अग्रवाल हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद  
38. पुराण विषयानुक्रमणी – राजबली पाण्डेय काशी  
39. पुराण दिग्दर्शन – माधवाचार्य शास्त्री, दिल्ली सं 2014  
40. पुराण तत्त्व मीमांसा – श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी, वाराणसी, 1961  
41. अष्टादश पुराण परिचय – श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी, वाराणसी सं 2013  
42. वामन पुराण – एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा० मालती त्रिपाठी  
43. पुराण अनुशीलन – मो भो गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी पटना 1970  
44. धर्मशास्त्र का इतिहास – गी० वी० काणे  
45. पुराण पर्यालोचनम् – श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी  
46. श्री मदु भगवत गीता – गीता प्रेस, गोरखपुर  
47. पुराण निर्माणाधिकरणम् – मघुबन ओझा  
48. पुराणोत्पत्ति – प्रसंग – जयपुर –2000  
49. पुराण धर्म – कालू राम शास्त्री  
50. संस्कृत वाणिज्य का विवेचनात्मक इतिहास – डा० सूर्यकान्त सन् 1972 ई०
51. संस्कृत साहित्य का इतिहास – कपिलदेव द्विवेदी इलाहाबाद
52. संस्कृत हिंदी कोश – वामन शिवराम आटमे, दिल्ली
53. कालिदास प्रथमली – आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
54. कालिदास के काव्य में पर्यावरणी – डा॰ उमीला श्रीवास्तव
55. कादम्बिनी – हिन्दुस्तान टाइम्स  जून 1995
56. योजना – पर्यावरण पर्यटन और पर्यावरण अगस्त 2002
57. पुराण कथाकृ – गीता प्रेस गोरखपुर कल्याण अंक 71
58. सशक्त गरुड़ पुराणाकृ – गीता प्रेस गोरखपुर 74
59. आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर कल्याण अंक 75
60. श्रीमद भागवत पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
61. पद्म पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
62. भविष्य पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
63. सूर्य देवता – डा॰ शशि तिवारी
64. अभिन पुराण – जीवानन्द, विद्यासागर, कल्यकता सं. 1882
65. कूम महापुराणम् – लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई सं. 1983
66. गरुड़ पुराण – जीवानन्द विद्यासागर कल्यकता
67. पद्म पुराण – चार भाग, आनन्दाश्रम पुणा,
68. पद्म पुराण – कल्यकता, 1957–59
69. मार्कण्डेय पुराणम् – श्री वेंकटेश्वर स्टीम बम्बई
70. लिंग पुराण – जीवानन्द विद्यासागर, नूतन वाल्मीकी यन्त्र कल्यकता 1885
71. वामन पुराणम् – श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई
72. वायु महापुराण – लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम बम्बई
73. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – श्री वेंकटेश्वर यज्ञांलय बम्बई
74. शिव पुराणम् – पंडित पुस्तकालय काशी सं. 2020
75. साम्प्रदय पुराणम् – श्री वेंकटेश्वर मुद्रांलय बम्बई
76. सूर्य पूर्णाम – संस्कृत संस्थान बरेली
77. सौर पुराण – आनन्दाश्रम पुणा.
78. स्कन्द पुराण — वेकेटरवर वंग्रालुय बम्बई 1867
79. पुराण परिशोधन — बिहार राज्य भाषा परिषद्
80. पुराण संदर्भ कोश — मेमन, पद्मिनी कानपुर
81. समुद्रमंडन — प्रो॰ हरिशंकर त्रिपाठी इलाहाबाद विश्व विद्यालय
82. अवेस्ता कालीन ईशान — प्रो॰ हरिशंकर त्रिपाठी इलाहाबाद विश्व विद्यालय
83. पर्यावरण — आज धरती रोती है — डा॰ राजेश्वरी प्रसाद चन्द्रोला
84. पर्यावरण प्रदूषण — गोपीनाथ श्रीवास्तव
85. विष्णु धर्मोंतर पुराण — गीता प्रेस गोरखपुर